

चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा : एक विवेचनात्मक अध्ययन
(योगोपनिषदों के विशेष परिप्रेक्ष्य में)



पीएच.डी. (योग) उपाधि हेतु
शोध—प्रबन्ध

शोध निर्देशक

डॉ. शाम गणपत तिखे

सहायक प्राध्यापक

योग एवं आयुर्वेद विभाग

शोधार्थी

रंजीत सिंह

पीएच. डी. (योग)

नामांकन क्र. En18—00003

योग एवं आयुर्वेद विभाग

सनातन धर्म एवं भारतीय ज्ञान अध्ययन केन्द्र

साँची बौद्ध—भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय

साँची (मध्यप्रदेश) 464661

2022

चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा : एक विवेचनात्मक अध्ययन
(योगोपनिषदों के विशेष परिप्रेक्ष्य में)



पीएच.डी. (योग) उपाधि हेतु
शोध—प्रबन्ध

शोध निर्देशक

डॉ. शाम गणपत तिखे

सहायक प्राध्यापक

योग एवं आयुर्वेद विभाग

शोधार्थी

रंजीत सिंह

पीएच. डी. (योग)

नामांकन क्र. En18—00003

योग एवं आयुर्वेद विभाग

सनातन धर्म एवं भारतीय ज्ञान अध्ययन केन्द्र

साँची बौद्ध—भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय

साँची (मध्यप्रदेश) 464661

2022



शोधार्थी द्वारा घोषणा पत्र

मैं एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि यह शोध-कार्य 'चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा : एक विवेचनात्मक अध्ययन (योगोपनिषदों के विशेष परिप्रेक्ष्य में)' डॉ. शाम गणपत तिखे, (शोध निर्देशक), सहायक प्राध्यापक योग एवं आयुर्वेद विभाग/सनातन धर्म एवं भारतीय ज्ञान अध्ययन केन्द्र के निर्देशन में किया गया मेरा मौलिक शोध-कार्य है जिसे विभागीय शोध समिति द्वारा अनुमोदित किया गया है।

मैं, यह भी घोषणा करता हूँ कि मेरी जानकारी के अनुसार इस शोध-प्रबन्ध में किसी भी प्रकार का ऐसा तथ्य उद्धृत नहीं किया गया जो इस विश्वविद्यालय या किसी अन्य विश्वविद्यालय के समक्ष किसी भी उपाधि हेतु प्रस्तुत किया गया हो।

साथ ही मैं यह भी घोषणा करता हूँ कि—

1. मैंने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 2009 के मापदण्डों के अनुसार कोर्स वर्क सफलता पूर्वक पूर्ण किया है।
2. मैंने शोध-प्रबन्ध अन्तिम रूप से जमा करने के पूर्व विभागीय शोध समिति के समक्ष प्रस्तुति दी है और दिए गए निर्देश एवं सुझाव के आधार पर संशोधन को अपने शोध-कार्य में शामिल किया है।
3. मैंने शोध-प्रबन्ध से सम्बन्धित दो शोध-पत्रों का प्रकाशन ISSN/रेफर्ड जर्नल में कराया है; जिसकी छायाप्रति शोध-प्रबन्ध के अन्त में संलग्न है। मैंने शोध विषय से सम्बन्धित राष्ट्रीय संगोष्ठी में शोध-पत्र भी प्रस्तुत किया है।
4. साथ ही मैं यह घोषणा करता हूँ की प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में कोई भी कंटेंट, किसी अन्य शोध या किसी प्रकाशित सामग्री का हिस्सा नहीं है। यदि साहित्यिक चोरी के अन्तर्गत कोई भी कंटेंट पाया जाता है, तो उसके लिए मैं स्वयं उत्तरदायी रहूँगा।

स्थान
साँची, रायसेन (मध्यप्रदेश)
दिनांक.....

हस्ताक्षर
शोधार्थी
रंजीत सिंह



साहित्यिक प्रतिबद्धता/नकल का प्रमाण-पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध 'चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा : एक विवेचनात्मक अध्ययन (योगोपनिषदों के विशेष परिप्रेक्ष्य में)' की साहित्यिक प्रतिबद्धता की जाँच निम्नलिखित उपकरण से की गई है—

मैं यह घोषणा करता हूँ कि—

1. शोध-प्रबन्ध ज्ञान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कार्य है। यह शोध-प्रबन्ध इस विषय में अब तक किए गए कार्य/प्रकाशित/प्रकाशित होने वाले कार्यों से भिन्न है। किसी भी प्रकार का वाक्य, चित्र, आरेख, अनुच्छेद कहीं से भी नकल नहीं है तथा जहाँ भी किसी पूर्व के कार्यों का उल्लेख शोध-प्रबन्ध में किया गया है उसे उद्धरण चिन्ह के अन्तर्गत रखा गया है।
2. यह शोधार्थी का मौलिक कार्य है (किसी भी कार्य का नकल नहीं है)। शोधार्थी द्वारा किसी अन्य के कार्यों, संकल्पना, प्रक्रिया, परिणाम को अपने शोध-कार्य में दावा नहीं किया गया है।
3. शोध-कार्य के परिणाम एवं विप्लेषण में किसी भी प्रकार की मिथ्या का सहारा नहीं लिया गया है।
4. शोध-कार्य में किसी भी अनुसंधान सामग्री, उपकरण, प्रक्रियाओं या परिणामों की अदला-बदली के माध्यम से गलत परिणाम आते हैं। शोध-कार्य में ऐसा कोई भी प्रयास नहीं है।
5. "विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (उच्चतर शिक्षा संस्थानों में अकादमिक सत्यनिष्ठा एवं साहित्यिक चोरी की रोकथाम को प्रोत्साहन) विनियम, 2018" के दिशा-निर्देश के अनुसार शोध-प्रबन्ध की जाँच **URKUND (Curiginal)** के द्वारा की गई है।

स्थान
साँची, रायसेन (मध्यप्रदेश)
दिनांक.....

हस्ताक्षर
शोधार्थी
रंजीत सिंह

Document Information

Analyzed document	Plagiarism Ph.D file Ranjeet singh.docx (D134537623)
Submitted	2022-04-25T07:54:00.0000000
Submitted by	Prabhakar Pandey
Submitter email	coordinator.inflibnet@subis.edu.in
Similarity	9%
Analysis address	coordinator.inflibnet.subis@analysis.arkund.com

Sources included in the report

	Sanchi University Of Buddhist-Indic Studies / Plagiarism Ph.D. File Akhilesh Vishwakarma .docx		
SA	Document Plagiarism Ph.D. File Akhilesh Vishwakarma .docx (D116385605) Submitted by: coordinator.inflibnet@subis.edu.in Receiver: coordinator.inflibnet.subis@analysis.arkund.com		10
SA	Bharti's final Dissertation 01-08-21 (1) (3) (1).docx Document Bharti's final Dissertation 01-08-21 (1) (3) (1).docx (D118607673)		174
SA	K R R PARASHAR भारतीय वा०००मये म० ाण ♦♦र उसका वै०ािनक िववेचन HIMALAYAN GHARWAL UNIVERSITY.pdf Document K R R PARASHAR भारतीय वा०००मये म० ाण ♦♦र उसका वै०ािनक िववेचन HIMALAYAN GHARWAL U NIVERSITY.pdf (D116252897)		3
W	URL: https://lib.anandiyoga.com/bc/sd/index.html Fetched: 2021-11-24T09:53:57.1130000		3
W	URL: http://www.uou.ac.in/old-papers/june-2019/MY-03-103.pdf Fetched: 2022-04-25T07:16:24.1770000		2
SA	SHASHI.pdf Document SHASHI.pdf (D109883836)		14
SA	Sanchi University Of Buddhist-Indic Studies / Ph.D. thesis Namrata.docx Document Ph.D. thesis Namrata.docx (D120760155) Submitted by: coordinator.inflibnet@subis.edu.in Receiver: coordinator.inflibnet.subis@analysis.arkund.com		34



सर्वाधिकार

मैं **रंजीत सिंह** एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ, कि साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, साँची, रायसेन द्वारा इस शोध-प्रबन्ध '**चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा : एक विवेचनात्मक अध्ययन (योगोपनिषदों के विशेष परिप्रेक्ष्य में)**' को शैक्षणिक/अनुसंधान उद्देश्य से इलेक्ट्रॉनिक या प्रिंट प्रारूप में उपयोग करने के अधिकार होंगे।

नोट— शोधार्थी अथवा अन्य द्वारा शोध-प्रबन्ध के आँकड़ों/निष्कर्ष का प्रयोग व्यक्तिगत रूप से किया जा सकेगा बशर्ते कि विश्वविद्यालय के सर्वाधिकार का उल्लेख किया जाए।

स्थान
साँची, रायसेन (मध्यप्रदेश)
दिनांक.....

हस्ताक्षर
शोधार्थी
रंजीत सिंह



प्रमाण पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है, कि शोध विषय 'चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा : एक विवेचनात्मक अध्ययन (योगोपनिषदों के विशेष परिप्रेक्ष्य में)' रंजीत सिंह द्वारा किया गया शोध-कार्य है, जिसे साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय में पीएच. डी. (योग) उपाधि के लिए मेरे निर्देशन में पूर्ण किया गया है।

मेरी जानकारी के अनुसार—

1. यह शोधार्थी का मौलिक कार्य प्रतीत होता है।
2. यह शोध-कार्य विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के मापदण्डों एवं निर्देशों को पूरा करता है।
3. विश्वविद्यालय की पीएच. डी. (योग) उपाधि से सम्बन्धित अध्यादेश की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

स्थान

साँची, रायसेन (मध्यप्रदेश)

दिनांक.....

हस्ताक्षर

शोध निर्देशक

डॉ. शाम गणपत तिखे

हस्ताक्षर

विभागाध्यक्ष

योग एवं आयुर्वेद विभाग



आभार

सर्वप्रथम मैं परमपिता परमात्मा, ईश्ट एवं गुरु सत्ता की सूक्ष्म एवं दिव्य प्रेरक संवेदनाओं को नमन करता हूँ, जिनकी चेतना से चैतन्य होकर मैं इस शोध-कार्य का वाहक बन पाया हूँ। तत्पश्चात् साँची विश्वविद्यालय परिवार के सभी सदस्यों का आभार प्रकट करता हूँ, जिनके आशीर्वाद, प्रेरणा, प्रोत्साहन, सतत् स्नेह, वात्सल्य एवं प्रयास से मेरा यह शोध-कार्य सम्पन्न हुआ।

यहाँ मैं उन सभी विद्वानों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने इस विषय पर मुझे प्रेरणास्पद सहयोग प्रदान किया।

यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे यह शोध-कार्य **डॉ. शाम गणपत तिखे**, योग विभाग के निर्देशन में पूर्ण करने का अवसर प्राप्त हुआ जो स्वयं ज्ञान से परिपूर्ण एवं योग्य सहायक प्राध्यापक हैं। आपने अमूल्य समय इस शोध-कार्य में देकर मुझे पूर्ण सहयोग प्रदान किया है जिसके लिये मैं हमेशा आपका हृदय से आभारी रहूँगा।

मैं विशेष रूप से संस्थान के सभी शिक्षक गणों **डॉ. उपेन्द्र बाबू खत्री**, **डॉ. संतोष प्रियदर्शी**, **डॉ. राहुल सिद्धार्थ**, **डॉ. विश्वबन्धु**, **डॉ. प्रभाकर पाण्डेय**, **डॉ. प्राची अग्रवाल** आदि के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मुझे सम्पूर्ण शोधकार्य में ऊर्जा स्रोत के रूप में सहयोग प्रदान किया।

मैं हृदय से विशेष आभारी हूँ, 'सेम कॉलेज भोपाल' के 'आयुर्वेदिक साइंस एण्ड हॉस्पिटल' विभाग में 'प्राचार्य' पद पर कार्यरत **डॉ. अखिलेश कुमार सिंह** का जिन्होंने अपने ज्ञान एवं मार्गदर्शन से मेरे शोध-कार्य को सफल बनाने में सहयोग दिया।

मैं **डॉ. सुरेश वर्णवाल** एवं **डॉ. अरुण शाव** के प्रति भी हृदय से विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने इस शोध-कार्य के सम्पूर्ण कालखण्ड में आवश्यकतानुरूप अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

मैं अपने सहयोगी सभी मित्र बन्धुओं का भी आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मेरी आवश्यकता पड़ने पर मुझे पूर्ण सहयोग प्रदान किया। मेरे सहयोगी मित्र धनंजय जैन, उमाशंकर कौशिक, लौकेश चौधरी, रोशन भारती, अखिलेश कुमार विश्वकर्मा, जयराम कुशवाह, नेहा सैनी, नम्रता चौहान, नीलू विश्वकर्मा, ममता चौधरी, विनय कुमार तिवारी, साधना शिंडे, अरविंद अहिरवार, शिवम् कुमार द्विवेदी आदि ने पूरे शोध-कार्य की अवधि में मुझे सहयोग प्रदान किया।

विश्वविद्यालय के पुस्तकालय एवं पुस्तकालय प्रभारी डॉ. अमित ताम्रकर, हरीश असाटी, प्रकाश मुकाति के सहयोग के लिए मैं आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने आवश्यकता पड़ने पर मेरा पूर्ण सहयोग दिया।

अंत में उन सभी ग्रंथ एवं ग्रंथकारों, शोध पत्र एवं शोधार्थियों, कर्मचारियों का मैं आभारी हूँ जिनका इस शोध-कार्य को संपन्न करने में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से यत्किंचित सहयोग प्राप्त हुआ। इस शोध-प्रबन्ध की पूर्णता मेरे स्वयं के प्रयास से संभव नहीं थी। अतः इस शोध-प्रबन्ध के कार्य में जिन महानुभवों का मार्गदर्शन, निर्देशन एवं सहयोग प्राप्त हुआ है, उनके प्रति मैं अपना आभार प्रकट करना परम कर्तव्य एवं सौभाग्य समझता हूँ।

धन्यवाद

शोधार्थी
रंजीत सिंह
पीएच. डी. (योग)



Established as Ministry of Culture Seat, of Madhya Pradesh
Recognized to UGC under section 2(F) & 12(B)

Sanchi University of Buddhist-Indic Studies

साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय

S. No. 783 /A&YD/SUBIS/2022

Sanchi, Date 26/04/2022

CERTIFICATE

TO WHOMSOEVER IT MAY CONCERN

This is to certify that **Mr. Ranjeet Singh** having Enrolment Number Registration No. **En18-00003** has made **Pre-Ph.D. Presentation Seminar** in the Department of Yoga and Ayurveda, School of Santana Dharma and Indic Studies, Sanchi University of Buddhist Indic-Studies, Sanchi, Raisen (M.P.) under the supervision of Dr. Sham Ganpat Tikhe before the faculty members and Research Scholars for feedback and comments according to UGC Regulation 2016 on his Research topic "चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा : एक विवेचनात्मक अध्ययन (योगोपनिषदों के विशेष परिप्रेक्ष्य में)" on 18/02/2022 on Online Google Meet.


Dr. Upendra Babu Khatri
Professor (Yoga)
School of Buddhist Indic Studies
HOD
Department of Yoga and Ayurveda
SUBIS, Sanchi, Raisen

University Campus : Gateway Retreat Campus (MPT), Sanchi, Distt. Raisen (464661), M.P.
Phone: 0755-2773256, Email: vc@subis.edu.in, website: www.sanchiuniv.edu.in
Camp Office : F-1/141, Arera Colony, Bhopal - 462016, M.P. Phone : 0755-2929958

विश्वविद्यालय परिसर : गेटवे रिट्रेट कैंपस (एचपीटी) साँची, जिला रायसेन, 464661, म.प्र.
दूरभाष - 0755-2773256 ई-मेल : vc@subis.edu.in, वेबसाइट : www.sanchiuniv.edu.in
कैंप ऑफिस : ई - 1/141, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016, म.प्र., दूरभाष - 0755-2929958

विषयानुक्रमणिका		
क्रमांक	अध्याय का नाम	पृष्ठ संख्या
	प्रस्तावना	i-xvi
	शोध अध्ययन की आवश्यकता	x
	शोध समस्या का कथन	x
	शोधकार्य का उद्देश्य	xi
	शोधकार्य की परिकल्पना	xi
	शोध अध्ययन की प्रविधि	xi
	साहित्यिक पुनरावलोकन	xii
	शोध अध्ययन की सीमाएँ	xvi
	सुझाव एवं भावी संभावनाएँ	xvi
	प्रथम अध्याय चक्र का सामान्य परिचय	1-45
1.1	चक्र का शाब्दिक अर्थ एवं परिभाषा	2
1.2	चक्र का स्वरूप	4
1.3	हठयोगिक ग्रंथों में चक्र की अवधारणा	31
1.4	चक्र एवं नाड़ियों का संबंध	44

	द्वितीय अध्याय कुण्डलिनी का सामान्य परिचय	46—79
2.1	कुण्डलिनी का शाब्दिक अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप	49
2.2	हठयोगिक ग्रंथों में कुण्डलिनी की अवधारणा	59
2.3	कुण्डलिनी का चक्र और नाड़ियों से संबंध	76
	तृतीय अध्याय योगोपनिषदों में चक्र की अवधारणा	80—125
3.1	ऋग्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों में चक्र संबंधित अवधारणा	81
3.2	कृष्णयजुर्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों में चक्र संबंधित अवधारणा	82
3.3	शुक्लयजुर्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों में चक्र संबंधित अवधारणा	109
3.4	सामवेदीय शाखा के योगोपनिषदों में चक्र संबंधित अवधारणा	117
3.5	अथर्ववेदीय शाखा के योगोपनिषदों में चक्र संबंधित अवधारणा	123
	चतुर्थ अध्याय योगोपनिषदों में कुण्डलिनी की अवधारणा	126—160
4.1	ऋग्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों में कुण्डलिनी संबंधित अवधारणा	127
4.2	कृष्णयजुर्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों में कुण्डलिनी संबंधित अवधारणा	128
4.3	शुक्लयजुर्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों में	147

	कुण्डलिनी संबंधित अवधारणा	
4.4	सामवेदीय शाखा के योगोपनिषदों में कुण्डलिनी संबंधित अवधारणा	153
4.5	अथर्ववेदीय शाखा के योगोपनिषदों में कुण्डलिनी संबंधित अवधारणा	158
	पंचम अध्याय चक्र और कुण्डलिनी की वर्तमान में प्रासांगिकता	161—193
5.1	चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा का विश्लेषण	162
5.2	आध्यत्मिक प्रगति में चक्र और कुण्डलिनी साधना की उपयोगिता	186
	उपसंहार	194—197
	सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	198—199
	आधार ग्रंथ	198
	सहायक ग्रंथ	199
	पत्रिकाएँ	204
	शब्द कोश	204
	प्रकाशित शोध पत्र	

प्रस्तावना

- शोध अध्ययन की आवश्यकता
- शोध समस्या का कथन
- शोधकार्य का उद्देश्य
- शोधकार्य की परिकल्पना
- शोध अध्ययन की प्रविधि
- साहित्यिक पुनरावलोकन

प्रस्तावना

‘शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्’, अर्थात् ‘भौतिक तत्वों के संयोजन से विनिर्मित यह मानवीय शरीर चेतनतत्त्व रूपी जीवात्मा की सहकार्यता से सक्रिय एवं कार्यरत रहकर सभी प्रकार के कर्म एवं धर्म को प्रतिपादित करने का प्रथम एवं प्रमुख साधन है।’¹ योगोपनिषदों के अंतर्गत ध्यानबिन्दुपनिषद् के विशेष संदर्भ में, शरीरत्रयी या त्रिस्थान के रूप में मानवीय शरीर के तीन भेद वर्णित हैं, जिन्हें स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर के नाम से जाना जाता है। तीन शरीरों का समूह विद्यमान होकर विभिन्न आयामों में कार्य करते हैं, जैसे— स्थूल या भौतिक शरीर एवं चेतना जो भौतिक शरीर के साथ मिलकर काम करती है। सूक्ष्म शरीर एवं चेतना जिसे हम मुख्य रूप से मनोभावों एवं भावनाओं के रूप में अनुभव करते हैं। कारण शरीर एवं चेतना जो मुख्य रूप से बुद्धि और ज्ञान के रूप में व्यक्त की जाती है। प्रत्येक शरीर को उस आयाम के लिए आवश्यक और उपयुक्त प्राण ऊर्जा द्वारा बनाए रखा जाता है। ‘प्रत्येक शरीर—मन में प्राण के प्रवाह और ऊर्जा चैनलों की एक प्रणाली को नियंत्रित करने के लिए ऊर्जा केंद्र होते हैं। इन ऊर्जा चैनलों को ‘नाड़ी’ कहा जाता है और उन्हें नियंत्रित करने वाले केंद्रों को ‘चक्र’ के रूप में जाना जाता है।’²

अतएव ‘चक्र’ मानवीय संरचना में निहित प्राणमय केन्द्र हैं, जो मुख्य रूप से मनुष्य के शरीर में सन्निहित प्राणिक प्रवाह का नियमन करते हैं। प्रमुख योगशास्त्रों एवं तंत्रशास्त्र में चक्र को ‘ऊर्जा केंद्र’ के नाम से जाना जाता है। मानव शरीर के विशेष भागों में उपस्थित चक्र भाँति—भाँति की अद्भूत सूक्ष्म शक्तियों तथा प्राण ऊर्जा के केन्द्र हैं। प्राण ऊर्जा की सूक्ष्म संरचनाओं का संगम रीढ़ की हड्डी के चारों ओर विशिष्ट बिंदुओं में होता है। शरीर विज्ञान के अनुसार इन बिंदुओं को तंत्रिका जाल या नर्व प्लेक्सस कहते हैं। शरीर के स्तर पर ये चक्र तंत्रिका जालक एवं अंतःस्त्रावी ग्रंथियों से सम्बद्ध होते हैं।

प्रमुख भारतीय ग्रंथों यथा— योग शास्त्र, तंत्र शास्त्र, दर्शन शास्त्र, वेदों एवं उपनिषदों आदि के अनुसार शक्ति केन्द्र अर्थात् चक्रों की संख्या भिन्न—भिन्न बतायी

¹ पुरुषार्थी, डॉ., योगेन्द्र, (1983), *वेदों में योगविद्या*, यौगिक शोध संस्थान, योगधाम, ज्वालापुर, हरिद्वार, पृष्ठ संख्या— 56.

² मोटोयामा, एच. (2014), *थ्योरिस ऑफ द चक्रस: ब्रीज टू हायर काशियस्नेस*, मोतिलाल बनारसीदास पब्लिकेशन्स, पृष्ठ संख्या— 23.

गयी है। मानवीय व्यक्तित्व के स्थूल से सूक्ष्म तक समस्त स्तरों को अभिव्यक्त करने वाले चक्र प्रत्येक व्यक्ति में असंख्य मात्रा में विद्यमान हैं, परन्तु हठयोग के अनुसार मुख्यतः सात चक्र कहे गये हैं— मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूर चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्धि चक्र, आज्ञा चक्र एवं सहस्रार चक्र। 'सात प्राथमिक ऊर्जा केंद्र' के रूप में चक्र भौतिक शरीर के प्रमुख तंत्रिका जाल के पास स्थित होते हैं। रीढ़ की हड्डी के मध्य में प्रवाहित सुषुम्ना नाड़ी में स्थित समस्त चक्र रीढ़ की हड्डी के मूल भाग से प्रारंभ होकर उसके ऊपरी भाग तक जुड़े हैं। प्रतीक के रूप में चक्रों को कमल के फूल के सदृश बताया जाता है। कमल के फूल के समान प्रत्येक चक्र में पंखुड़ियों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है। प्रत्येक चक्र के दल संख्या में नियत होते हैं और प्रत्येक चक्र एक विशेष रंग का होता है, साथ ही इन प्रत्येक चक्रों से समबद्ध अन्य अतीन्द्रिय पक्षों को चक्र विशेष की पंखुड़ियों की संख्या, प्रतीक चिन्ह, देवता, तत्त्व, बीज मन्त्र, वाहन, मुख्य वायु, गौण वायु, कोश, लोक कमल दल व रंग द्वारा दर्शाया जाता है। सामान्य अवस्था में ये सभी चक्र बगैर खिले हुए कमल के फूल के समान अधोमुख हुए अविकसित रहते हैं। यौगिक विधियों जैसे— ब्रह्मचर्य का पालन, प्राणायाम का अभ्यास, ध्यान की विधियों का अभ्यास इत्यादि द्वारा उत्तेजित होकर चक्र जब विकसित होते हैं, तब उस समय इन चक्रों की अलौकिक व दिव्य शक्तियों का विकास होता है।

इन प्रत्येक चक्रों में कुछ निश्चित शक्तियाँ, प्रभाव तथा अधिकार एक सुप्त शक्ति के भंडार रूप में विद्यमान हैं, जिसे 'कुण्डलिनी शक्ति' कहा जाता है। जिस तरह विद्युत की अविद्यमानता में संबंधित यंत्रों का कोई मूल्य नहीं होता, ठीक उसी तरह से कुण्डलिनी शक्ति भी चक्र के बिना अर्थ हीन है। कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के फलस्वरूप समस्त चक्र सक्रिय हो जाते हैं। चक्रों के क्रमशः जागरण को ही कुण्डलिनी (कुंडली) का उत्थान या जागरण कहते हैं। चक्रों के संबंध में यह पाया गया है कि सुषुम्ना नाड़ी एक सूक्ष्म प्रतीकात्मक पथ के रूप में समस्त प्रमुख चक्रों से संयुक्त है, जिससे होकर कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार से सहस्रार चक्र तक की अपनी आरोहण-यात्रा पूर्ण करती है। कुण्डलिनी को एक 'सर्प' के प्रतीकात्मक रूप में चित्रित किया जाता है। कुण्डलिनी को मेरुदण्ड के सबसे निचले छोर पर उपस्थित

‘मूलाधार चक्र’ में स्थित बताया गया है, आधुनिक शरीर विज्ञान के अनुसार यह स्थान “गुदास्थि” कहलाता है। तंत्रशास्त्र में इस स्थान का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि यह स्थान ‘स्वयंभूलिंग’ है, जिस पर कुण्डलिनी शक्ति साढ़े तीन कुण्डल मारकर स्वयंभूलिंग के सिर पर अपना सिर और अपनी पूँछ को अपने मुख में डाले हुए सुप्त अवस्था में पड़ी हुई है।

सामान्यतः मनुष्य चेतन स्थिति में होता है उस समय वह भौतिक स्तर पर तो जाग्रत होता है किन्तु वह स्वयं के अंदर सूक्ष्म स्तर पर उपस्थित सुप्त शक्तियों के बारे में अनजान रहता है। इस अवस्था में व्यक्ति को अपने मन की शक्ति का अल्प ज्ञान रहता है। जब यौगिक एवं तांत्रिक अभ्यासों के माध्यम से यह शरीरस्थ कुण्डलिनी शक्ति प्रधानतः मूलाधार चक्र पर आघात करते हुए धीरे-धीरे अन्य समस्त चक्रों का क्रमशः भेदन करती हुई विकसित और जागृत होती है। यह कुण्डलिनी क्रमशः चक्रों से होकर आरोहण या उर्ध्वगति करते हुए गुजरती है, तब व्यक्ति में अधिकाधिक सजगता तथा सतर्कता आती है अतएव, कुण्डलिनी के पूर्णतः जाग्रत होने पर व्यक्ति में पूर्ण सजगता का विकास हो जाता है, फलतः वह चेतना के उच्च शिखर पर आसीन हो जाता है। तब यह साधक को आध्यात्मिक मुक्ति की ओर ले जाती है एवं परमात्म सत्ता में विलीन हो, स्वयं परमात्मा स्वरूप हो जाती है। इसे प्राण तथा चेतना के मिलन का केंद्र बिंदु कहा जाता है जिसके परिणामस्वरूप साधक के अहं का नाश होकर वह समाधि अर्थात् आत्मज्ञान की ओर अग्रसर होता है। इस तरह कुण्डलिनी को मनुष्य के अंतर्मन में निहित शक्तियों के उत्थान, जागरण तथा साक्षात्कार का प्रतीक कहा गया है।

हठयोग एवं तंत्रयोग के अतिरिक्त ‘योगोपनिषदों’ में योगपरक विषयों के अधीन योग साधना के मुख्य उद्देश्य के रूप में चक्र एवं कुण्डलिनी की विस्तृत व्याख्या की गयी है। उपनिषद् वेदों के अन्तिम भाग हैं। ‘उपनिषद्’ शब्द की व्युत्पत्ति ‘उप + नि’ इन दो उपसर्गों के साथ ‘सद्’ धातु में ‘क्विप्’ प्रत्यय लगाने से हुई है। इस ‘सद्’ धातु के तीन अर्थ हैं— विशरण (विनाश), गति (ज्ञान और प्राप्ति) एवं अवसादन

(शिथिल करना)³, इस आधार पर उपनिषद् का अर्थ है— जो पाप—ताप का नाश करे, सच्चा ज्ञान प्रदान करे, आत्मा की प्राप्ति कराए और अज्ञान—अविद्या को शिथिल करे, वह उपनिषद् है। स्वामी विवेकानन्द ने उपनिषद् के ज्ञान की आवश्यकता को न केवल ब्रह्म प्राप्ति के लिए, अपितु दैनिक जीवन के लिए भी उपयोगी बतलाया है। उनका कथन है कि 'उपनिषद् वह शक्ति प्रदान करती है, जिसके द्वारा मनुष्य जीवन संग्राम का धैर्य तथा साहस से मुकाबला करता है। अस्तु आशय यह है कि जीवन का प्रत्येक क्षेत्र चाहे वह आध्यात्मिक हो या भौतिक दोनों में उपनिषद् अत्यन्त आवश्यक है।

उपनिषदों का विभाजन उनकी विषयवस्तु पर आधारित है। सामान्यतः मुक्तिकोपनिषद् में गिनाये गए उपनिषदों की संख्या एक सौ आठ है। किन्तु गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई से मुद्रित उपनिषद्—वाक्य—महाकोश में 223 उपनिषदों के नाम दिये गये हैं। मुक्तिकोपनिषद् में जिन एक सौ आठ उपनिषदों के नाम आते हैं, वे सभी 'निर्णय सागर प्रेस' बम्बई से मूल गुटका के रूप में प्रकाशित है। इन एक सौ आठ उपनिषदों में ऋग्वेद के 10, शुक्ल यजुर्वेद के 19, कृष्ण यजुर्वेद के 32, सामवेद के 16 एवं अथर्ववेद के 31 उपनिषद् सम्मिलित हैं। आचार्य शंकर ने मुख्य 10 उपनिषद्, 14 शैव उपनिषद्, 13 वैष्णव उपनिषद्, 23 सन्यास उपनिषद्, 9 शाक्त, 21 सामान्य वेदांत उपनिषद् और 20 योग उपनिषदों पर टीका लिखी है। उपनिषदों के माध्यम से अनुभवी एवं आत्मज्ञानी गुरुओं की वाणी द्वारा अभिव्यक्त विश्वसनीय तथ्यों को प्रस्तुत किया है। इनका सम्बन्ध मुख्यतः समग्रात्मक जीवन—पद्धति, सन्तुलित और सामंजस्यपूर्ण मनोदशा एवं आध्यात्मिक अवधारणाओं से है। इन उपनिषदों में योग से संबंधित उपनिषदों की संख्या बीस है। जिनमें योग से संबंधित ज्ञान आधारित चर्चा है। जिसके अंतर्गत चक्रों को परिभाषित करते हुए, चक्र के प्रकारों, चक्रों के स्थान एवं प्रतिकात्मक स्वरूप का स्पष्ट वर्णन करते हुए चक्रों के भेदन की विधियों की व्याख्या की गई है। कुण्डलिनी, कुण्डलिनी की स्थिति, कुण्डलिनी का प्रतीकात्मक स्वरूप, कुण्डलिनी जागरण की विधियाँ एवं चक्रों के भेदन के माध्यम से कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के फलस्वरूप साधक या योगी की स्थिति के साथ ही प्राप्त

³ आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा (2015), 108 उपनिषद् (सरल हिन्दी भावार्थ सहित), ज्ञानखण्ड, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, पृष्ठ संख्या— 7—8.

फलश्रुतियों का भी विवेचन अत्यंत सरल रूप में किया गया है। अतः योग उपनिषदों में विभिन्न यौगिक अभ्यासों का वर्णन एक निश्चित उद्देश्य से किया गया है जिसका लक्ष्य है— चक्र और कुण्डलिनी का जागरण।

अतएव प्रस्तुत शोधकार्य के उद्देश्यानुसार शोधार्थी द्वारा हठयौगिक ग्रंथों के अतिरिक्त योग से संबंधित उपनिषद् अर्थात् योगोपनिषदों के विशेष संदर्भ में मानव शरीरस्थ चक्र एवं कुण्डलिनी की अवधारणा का विवेचनात्मक अध्ययन किया गया है। जिसके अंतर्गत शोधार्थी द्वारा वेदांत की दृष्टि से वैदिक शाखा से संबंधित कुल बीस योगोपनिषदों का गहन अध्ययन किया गया है। प्रत्येक योगोपनिषद् अपनी संबंधित वैदिक शाखा से सम्बद्ध है। ऋग्वेदीय शाखा के अंतर्गत 'नादबिन्दूपनिषद्', कृष्णयजुर्वेदीय शाखा के अंतर्गत 'अमृतनादोपनिषद्', 'ब्रह्मविद्योपनिषद्', 'ध्यानबिन्दूपनिषद्', 'क्षुरिकोपनिषद्' 'योगकुण्डलिन्युपनिषद्', 'वराहोपनिषद्', 'योगशिखोपनिषद्', एवं 'योगतत्त्वोपनिषद्', शुक्लयजुर्वेदीय शाखा के अंतर्गत 'त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्', 'मण्डलब्राह्मणोपनिषद्', 'अद्वयतारकोपनिषद्' एवं 'हंसोपनिषद्' सामवेदीय शाखा के अंतर्गत 'दर्शनोपनिषद् (जबालदर्शनोपनिषद्)', 'योगचूडामण्युपनिषद्', एवं अथर्ववेदीय शाखा के अंतर्गत एकमात्र 'शाण्डिल्योपनिषद्' में ही चक्रों एवं कुण्डलिनी का वर्णन किया गया है।

लगभग सभी योगोपनिषदों में यह वर्णित है कि यौगिक अभ्यासों जैसे— आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध, प्रत्याहार एवं धारणा, ध्यान व समाधि का चक्र एवं कुण्डलिनी से घनिष्ठ संबंध है जैसे— नादबिन्दूपनिषद् में, तुरीय अवस्था को प्राप्त करने के उपायों के अंतर्गत नादानुसन्धान की विधि में शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास करने के लिए एकाग्रता हेतु सप्तचक्रों एवं कुण्डलिनी की चर्चा की गयी है। इसी प्रकार, अमृतनादोपनिषद् में, प्रतिपादित चित्तशुद्धि उपायों के रूप में वर्णित 'छह योगांगों', 'प्राण' आदि वायुओं के स्थान के अंतर्गत शरीरस्थ प्रमुख चक्रों से संबंधित क्षेत्र तथा इन क्षेत्रों में प्रमुख पंच वायुओं की स्थिति का वर्णन किया गया है। साथ ही योगाभ्यास के उत्कृष्ट फल हेतु शरीरस्थ प्राण वायु को षट्चक्रों का भेदन करते हुए शरीर के शीर्ष प्रदेश में स्थित सहस्रार चक्र तक पहुँचाने पर ज्ञानरूपी प्रसाद की प्राप्ति का विस्तृत वर्णन किया गया है। अमृतनादोपनिषद् के अन्त में षट्चक्र, सुषुम्ना

नाड़ी तथा कुण्डलिनी संबंधित तथ्य एवं विचारों की विस्तृत विवेचना करते हुए इस उपनिषद् का समापन किया गया है।⁴ ब्रह्मविद्योपनिषद् में प्राण के स्थान के रूप में नाभिप्रदेश, ब्रह्मतत्त्व के ध्यान के स्थान रूपी हृदयप्रदेश या अनाहतचक्र, स्वप्रकाशित चिदानन्द के ध्यान के स्थान रूपी आज्ञाचक्र एवं नाभिचक्र तथा विभिन्न चक्रों से संबंधित देवताओं का वर्णन किया गया है। साथ ही कुण्डलिनी के स्थान का वर्णन करते हुए षट्चक्रों के भेदन के संबंध में मुख्य चर्चा गयी है जिसका मुख्य उद्देश्य षट्चक्रमण्डल का भेदन होने पर ज्ञानरूपी दीपक को प्रकाशित करना है।

ध्यानबिन्दुपनिषद् में षडांगयोग, योनिस्थान, मूलाधारादि चक्र, नाड़ीचक्र, प्राणादि दशावयव इत्यादि मुख्य प्रतिपादित विषय है। साथ ही मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी की स्थिति, कुण्डलिनी संबंधी मुख्य अवधारणा, कुण्डलिनी जागरण से मोक्षद्वार को खोलना एवं कुण्डलिनी जागरण के उपायों का वर्णन किया गया है। इस उपनिषद् के अनुसार यौगिक क्रियाओं के द्वारा योगी प्राण को अलग-अलग चक्रों में से क्रमशः सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा ऊपर चढ़ाता है और अन्त में वह योगी ब्रह्म की अनुभूति करता है।

क्षुरिकोपनिषद् में केवल प्रत्याहार के क्रम में योगी द्वारा शरीरस्थ सप्तचक्रों पर अपनी दृष्टि, मन और प्राण को एकाग्र करने के अभ्यास के अंतर्गत चक्रों का संस्थान वर्णन किया गया है। इसी प्रकार योगकुण्डलिन्युपनिषद् में, कुण्डलिनी जागरण, ग्रन्थिभेदन, कुण्डलिनी का सहस्रार चक्र में प्रवेश तथा प्राणादि का विलीनीकरण एवं समाधि योग आदि के बारे में विस्तृत चर्चा की गयी है।⁵ कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत होने से प्रमुख तीनों ग्रन्थियों का भेदन कर तथा चक्रों का जागरण करके यह शक्ति शिव में मिलकर आनन्द प्राप्त करती है।

वराहोपनिषद् में पाँचवे व अन्तिम अध्याय में योग संबंधित विषय एवं नाड़ियों के वर्णन के साथ ही षट्चक्र एवं कुण्डलिनी के प्रतीकात्मक स्वरूप की भी व्याख्या की गयी है। योगशिखोपनिषद् में साधक के शरीर में एक स्तम्भ रूपी रीढ़ की हड्डी, नौ

⁴ शास्त्री, केशलाल वी. (2014), उपनिषत्सञ्चयनम् (ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्), चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 1-39.

⁵ शास्त्री, केशलाल वी. (2014), उपनिषत्सञ्चयनम् (ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्), चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 369.

दरवाजों के रूप में चक्रों, तीन खूंटों के रूप में तीन प्रमुख नाड़ियों की स्थिति का वर्णन है। मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी की स्थिति बतलायी गयी है। साधक जब पापों से मुक्त हो जाता है उस समय योगसाधना के माध्यम से वह संसार के बंधनों को काटता हुआ परब्रह्म की अनुभूति करता है। योगतत्त्वोपनिषद् में योग की चार अवस्थाओं में चौथी अवस्था अर्थात् 'परिचयावस्था' के अंतर्गत मूलाधार चक्र स्थित कुण्डलिनी शक्ति का वर्णन अत्यंत ही संक्षिप्त रूप में किया गया है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में चराचरात्मक विश्वसृष्टि के अंतर्गत सहस्रार चक्र की चर्चा, दक्षिणायन और उत्तरायण मार्ग के अंतर्गत सहस्रार चक्र की चर्चा, नाड़ी चक्र में जीव की गति, एवं कुण्डलिनी के स्थान एवं कार्य के अंतर्गत चक्र संबंधित विचार, कुण्डलिनी शक्ति का पथ, कुण्डलिनी जागरण के उपायों एवं कुण्डलिनी के अन्य नामों का वर्णन किया गया है।

मण्डलब्राह्मणोपनिषद् में पहले ब्राह्मण के द्वितीय खण्ड में मंत्र—छह के अंतर्गत सुषुम्ना नाड़ी, चक्र एवं कुण्डलिनी शक्ति संबंधित अवधारणा दी गयी है। इसी प्रकार, पहले ब्राह्मण के चतुर्थ खण्ड में मंत्र—एक के माध्यम से सहस्रार चक्र एवं चतुर्थ ब्राह्मण के प्रथम खण्ड में मंत्र—पाँच के अंतर्गत नवचक्रों की महिमा की व्याख्या की गयी है। अद्वयतारकोपनिषद् में शरीरस्थ मूलाधार चक्र से ब्रह्मरन्ध्र तक जाती हुई सुषुम्ना नाड़ी में स्थित अत्यन्त सूक्ष्म एवं प्रकाशवान कुण्डलिनी शक्ति की विद्यमान का वर्णन है, उसे मन के माध्यम से देखा जाना चाहिए। ऐसा करने पर मानव मुक्ति को प्राप्त करता है। इस कुण्डलिनी शक्ति का मनोदर्शन मात्र करने पर साधक सभी पापों से मुक्ति प्राप्त कर मोक्षाधिकारी बन जाता है।⁶

हंसोपनिषद् में हंस रूपी जीवात्मा को प्राप्त करने के लिए षट्चक्रों के भेदन की साधना का महत्व वर्णित है। अष्टदल पद्म से आत्मा की वृत्तियों का साम्य बताते हुए शुद्ध स्फटिक मणि के समान ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन किया गया है तथा इसे ही 'हंस' कहा गया है। इस 'हंस' के ध्यान से नाद स्वर की उत्पत्ति होती है, जिसे अनेक रूपों में अनुभव किया जा सकता है। इसी अवस्था को समाधि कहा गया है।

⁶ शास्त्री, केशलाल वी. (2014), उपनिषत्सञ्चयनम् (ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिष), चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 551.

दर्शनोपनिषद् (जबालदर्शनोपनिषद्) के, चतुर्थ खण्ड में नाड़ियों की विस्तृत विवेचना के साथ ही सूत्र संख्या दो से बारह तक चक्रों एवं कुण्डलिनी की अवधारणा को भी वर्णित किया गया है। इसी चतुर्थ खण्ड में चक्रों से संबंधित प्रमुख तीर्थस्थान भी कहे गये हैं तथा खण्ड सात में प्रत्याहार हेतु क्षेत्र विशेष के रूप में चक्रों एवं कुण्डलिनी की चर्चा की गयी है।

योगचूडामण्युपनिषद् में षट्चक्र का वर्णन करते हुए योगियों द्वारा अजपा गायत्री को कुण्डलिनी से संबोधित किया है। इस कुण्डलिनी को योनि स्थान (कुण्डलिनी) में परम ज्योति के दर्शन के रूप में वर्णित किया गया है। जैसे कुंजी के द्वारा मकान का ताला खोलते हैं उसी प्रकार कुण्डलिनी के द्वारा लोग अपने माया रूपी अज्ञान का ज्ञान रूपी शक्ति से मुक्ति का द्वार खोलते हैं। शाण्डिल्योपनिषद् में विशेष रूप से प्रथम अध्याय के खण्ड आठ में मंत्र संख्या—दो में प्रत्याहार के अभ्यास हेतु विषय के रूप में शरीरस्थ अठारह स्थानों का वर्णन किया गया है जिनमें से कुछ स्थान चक्र प्रदेश कहलाते हैं। इसी प्रकार, प्रथम अध्याय के खण्ड चार में मंत्र संख्या आठ से दस में तथा खण्ड सात में मंत्र छत्तीस के 1—3 में कुण्डलिनी के बारे में विशेष चर्चा की गयी है।

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार— ‘सुप्तावस्था में स्थित कुण्डलिनी शक्ति को यौगिक क्रियाओं के माध्यम से जाग्रत कर शीर्ष प्रदेश में स्थित ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाने की प्रक्रिया को ‘कुण्डलिनी योग’ कहते हैं। योगाभ्यासी, शक्तिचालिनी क्रिया के निरन्तर अभ्यास के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर सुषुम्ना मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचता है।’⁷

तदर्थ योगोपनिषदों के अनुसार चक्रों के जागरण के फलस्वरूप कुण्डलिनी शक्ति द्वारा विभिन्न चक्रों का भेदन करते हुए सहस्रार चक्र में पहुँचने पर शिव व शक्ति का मिलन होता है, यह आनन्द की अवस्था कहलाती है। अन्त में योगी परम ज्ञान की प्राप्ति कर जन्म—मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है और यही योग साधना का मुख्य उद्देश्य है। कुण्डलिनी योग नामक ग्रंथ के अनुसार “इस स्थिति में पहुँचने

⁷ शास्त्री, केशलाल वी. (2014), उपनिषत्सञ्चयनम् (ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिष), चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, सूत्र संख्या 62—65, पृष्ठ संख्या 146.

पर द्वैत भाव समाप्त होकर, दृष्टा तथा दृश्य दोनों एकाकार हो जाते हैं तथा एकमात्र चेतना का अस्तित्व बना रहता है और इसी अवस्था को प्रत्येक रहस्यात्मक तथा धार्मिक पद्धतियों में अपने-अपने ढंग से निर्वाण, समाधि, कैवल्य, आत्मज्ञान, ईश्वर के साथ मिलन, स्वर्ग इत्यादि कहा गया है।⁸ इसी संदर्भ में स्वामी शिवानंद सरस्वती ने अपनी पुस्तक 'कुण्डलिनी योग' में कहा है कि "जब कुण्डलिनी एक चक्र के बाद दूसरे चक्र से गुजरती है, जिससे चक्र अपनी सारी महिमा में खिल जाते हैं उस समय, आकांक्षी की मानसिक आँखों के सामने अलौकिक दर्शन प्रकट होते हैं, अवर्णनीय चमत्कार और आकर्षण के साथ नया संसार योगी के सामने प्रकट होता है, अभ्यासी और योगी को दिव्य ज्ञान, शक्ति और आनंद बढ़ती हुई मात्रा में प्राप्त होता है।"⁹

साथ ही प्रस्तुत शोधकार्य में इन योगोपनिषदों में वर्णित चक्रों एवं कुण्डलिनी शक्ति की अवधारणा का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महत्व को भी स्पष्ट किया गया है। जिसके अंतर्गत सारगर्भित रूप में यह वर्णन किया गया है कि, किस प्रकार सूक्ष्म शरीर स्थित प्राण ऊर्जा के केंद्र रूपी चक्रों का अध्ययन एवं चक्र तथा कुण्डलिनी साधना का प्रयोग अनेकों वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों एवं शिक्षण प्रक्रिया के संदर्भ में किया जा रहा है, उदाहरण के लिए— प्राणिक हीलिंग, रेकी, विकिरण चिकित्सा, रंग या प्रकाश चिकित्सा, ध्वनि चिकित्सा, अरोमाथेरेपी, मंत्र और रत्न/मणिभ चिकित्सा, तार्ई-ची, एकयूपंक्चर एवं एकयूप्रेशर, ची-कुंग इत्यादि वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों में मानव शरीरस्थ सूक्ष्म ऊर्जा का पता लगाने एवं ऊर्जा के संतुलन हेतु चक्रों का प्रायोगिक अध्ययन किया जा रहा है। चक्रों एवं कुण्डलिनी से संबंधित यौगिक साधना के नियमित अभ्यासों के माध्यम से इन चक्रों को संतुलित किया जाता है और शरीरस्थ प्रणाली को शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्तर पर संतुलित एवं स्थिर रूप से कार्य करने हेतु सुगम बनाया जाता है। भारतीय योग शिक्षा, सात प्रमुख चक्रों से संबंधित विशेष गुणों, जैसे— चक्रों के रंग, चक्रों से संबंधित मंत्र उच्चारण, चक्रों का पंच तत्वों से संबंध, चक्र एवं दैहिक ज्ञानेन्द्रियाँ एवं चक्रों का अंतःस्रावी ग्रंथियों से संबंध एवं कुण्डलिनी शक्ति के स्वरूप, स्थिति एवं जागरण के

⁸ सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द (2002), कुण्डलिनी योग, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— 195.

⁹ सरस्वती, स्वामी शिवानन्द (2010), कुण्डलिनी योग, हिमालयास, इंडिया: द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी. पृष्ठ संख्या— 27.

फलस्वरूप प्राप्त फलश्रुतियों का निरूपण वर्तमान परिप्रेक्ष्य में करती है, साथ ही इन चक्रों के कार्यों का भी स्पष्ट वर्णन करती है।

अतएव प्रस्तुत शोधकार्य में विभिन्न अध्यायों के माध्यम से हठयौगिक ग्रंथों के संदर्भ में चक्र एवं कुण्डलिनी का सामान्य परिचय देते हुए योगोपनिषदों के विशेष परिप्रेक्ष्य में चक्र एवं कुण्डलिनी की अवधारणा का सविस्तार वर्णन किया गया है एवं साथ ही वर्तमान परिप्रेक्ष्य में चक्र एवं कुण्डलिनी की अवधारणा के महत्व को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

शोध अध्ययन की आवश्यकता

वर्तमान समय में चक्र और कुण्डलिनी जागरण के नाम पर समाज में अनेक विसंगतियाँ दिखाई दे रही हैं। बिना किसी आधार के लोग चक्र और कुण्डलिनी को मात्र कौतुहल के लिए अभ्यास कर रहे हैं। बिना किसी पूर्व तैयारी के लोग विभिन्न प्रकार के अभ्यास कर रहे हैं जो कभी-कभी उनके लिए और योग के अस्तित्व पर विपरीत प्रभाव डालते दिख रहे हैं, जबकि योग की समस्त प्रक्रियाएँ व्यवस्थित, विज्ञान सम्मत एवं आधार सम्मत हैं। चक्र और कुण्डलिनी की साधनाएँ भी कौतुहल या प्रदर्शन के लिए नहीं हैं। चक्र एवं कुण्डलिनी को व्यवस्थित रूप से योगोपनिषदों के आधार पर समझना, चक्र और कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया को समझना, इस मार्ग में ध्यान रखने योग्य सावधानियों आदि का अध्ययन करना एवं इसके समुचित स्वरूप को स्थापित करना आदि वर्तमान की आवश्यकता को ध्यान में रखकर यह शोध-कार्य किया गया है।

शोध समस्या का कथन

योगोपनिषदों के विशेष परिप्रेक्ष्य में चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा का विवेचनात्मक अध्ययन करना।

शोधकार्य के उद्देश्य

1. योगोपनिषदों के आधार पर चक्र की सम्यक् विवेचना करना।
2. योगोपनिषदों के आधार पर कुण्डलिनी की सम्यक् विवेचना करना।
3. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में चक्र और कुण्डलिनी के महत्व पर प्रकाश डालना।

शोधकार्य की परिकल्पना

वर्तमान समय में चक्रों एवं कुण्डलिनी के संबंध में अल्प ज्ञान तथा चक्रों एवं कुण्डलिनी के जागरण विधियों के संबंध में फैली हुई भ्रांति और विषमताओं को दूर करने के लिए तथा वास्तविक ज्ञान को पुनर्स्थापित करने हेतु योगोपनिषदों में बहुत सरल उपायों व सरल मार्ग का विस्तृत विवरण मिलता है। अतः शोधार्थी के मन में चक्रों एवं कुण्डलिनी की अवधारणा को लेकर शोध करने का विचार हुआ। जिसका लाभ साधक व चक्रों एवं कुण्डलिनी की साधना के इच्छुक सामान्यजन के लिए लाभप्रद हो इस भावना से इस शोध कार्य की संकल्पना की गई है। अतः प्रस्तुत शोधकार्य की परिकल्पना निम्नानुसार है—

“योगोपनिषदों के विशेष परिप्रेक्ष्य में चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा का सैद्धांतिक विवेचनात्मक अध्ययन कर चक्रों एवं कुण्डलिनी जागरण के संबंध में फैली भ्रांतियों का निदान करना एवं चक्र तथा कुण्डलिनी जागरण के मार्ग में साधना का सहज मार्ग विकसित करना।”

शोध अध्ययन की प्रविधि

प्रस्तुत शोधकार्य एक विवेचनात्मक अध्ययन है। इस शोध की प्रकृति पूर्णतः गुणात्मक है। अतः इस शोधकार्य हेतु प्रयुक्त प्रविधि ‘विवेचनात्मक शोध पद्धति’ है। इस शोधकार्य की विश्वसनीयता पूर्णतयः द्वितीयक सामग्री के विश्लेषण पर आधारित है। इस शोध-प्रबन्ध में प्रस्तुत विषय की विवेचना करने हेतु शोधकर्ता द्वारा प्रस्तुत शोधकार्य की समस्या के संबंध में वास्तविक जानकारी एवं तथ्यों को एकत्रित करने हेतु विषय से संबंधित पूर्व में किए गए शोधकार्यों के अवलोकनों के एक समूह के साथ इस शोधकार्य को शुरू किया गया। चक्र एवं कुण्डलिनी पर उपलब्ध प्रमुख

हठयोगिक ग्रंथों एवं योगोपनिषदों का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया जिसके अन्तर्गत चक्र और कुण्डलिनी विषय पर यथार्थ सूचनाओं एवं वास्तविक तथ्यों को एकत्रित कर चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा का विस्तृत अध्ययन किया गया है। तत्पश्चात् शोधकर्ता इन शोधकार्यों के पुर्वालोकन से प्राप्त विशेष परिणामों एवं ग्रंथों से प्राप्त वास्तविक तथ्यों के आधार चक्र एवं कुण्डलिनी की अवधारणा का विस्तृत अध्ययन किया गया है।

साहित्यिक पुनरावलोकन

प्रस्तुत शोधकार्य में साहित्यिक पुनरावलोकन के अंतर्गत निम्नलिखित डेटाबेसेस जैसे— स्कोपस, पबमेड, वेब ऑफ साइंस, प्रोक्वेस्ट रिसर्च लाइब्रेरी, मेडलाइन, एल्सेवियर या साइंस डायरेक्ट, स्प्रिंगर, साइकइन्फो और द नेचर डेटाबेस के माध्यम से शोधविषय से संबंधित एक व्यवस्थित साहित्यिक पुनरावलोकन किया गया है। इन डेटाबेसेस के अलावा गुगल स्कॉलर तथा जोटेरोबिब नामक वेब सर्च इंजनों तथा यू.जी. सी. केअर लिस्टेड जर्नल्स को भी सर्च किया गया। यहाँ इन डेटाबेसेस में उपस्थित नवीनतम 2021 तक के शोधकार्यों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। पूर्व अध्ययनों का चयन निम्नलिखित समावेशन/इन्क्लुशन मानदंडों पर आधारित हैं— पीअर-रिव्यू जर्नल के साथ अंग्रेजी व हिन्दी भाषा में प्रकाशन, एक हस्तक्षेप का मूल्यांकन जिसमें चक्र एवं कुण्डलिनी प्राथमिक घटक हो या समीक्षा किए गए सभी अध्ययनों में किसी न किसी प्रकार से चक्र एवं कुण्डलिनी के अभ्यास को शामिल किया गया हो। पूर्व शोधकार्यों की खोज हेतु “चक्र एवं कुण्डलिनी”, “चक्रों एवं कुण्डलिनी का जागरण”, “चक्रों एवं कुण्डलिनी के जागरण हेतु प्रयुक्त यौगिक अभ्यास”, “चक्रों एवं कुण्डलिनी के जागरण हेतु प्रयुक्त ध्यान विधि”, “समग्र स्वास्थ्य (शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य)”, “तंत्रयोग”, “हठयोग”, “योगोपनिषद्” सहित संकेत शब्दों के विभिन्न संयोजनों का उपयोग किया गया। साथ ही चक्रों एवं कुण्डलिनी पर आधारित मुख्य ग्रंथों जैसे— हठयोगिक ग्रंथ एवं योगोपनिषदों एवं अन्य टीकाओं तथा भाष्यों का भी समीक्षात्मक अध्ययन किया गया।

इस प्रकार कुल 67 शोध लेखों, पुस्तकों, शोध-प्रबन्धों तथा पत्र-पत्रिकाओं आदि की व्यवस्थित समीक्षा की गई है।

पूर्व में किये गये इन शोधकार्यों के समीक्षात्मक अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य प्रत्येक चक्र एवं कुण्डलिनी की अवधारणा से संबंधित वैज्ञानिक तथ्यों तथा इसका साधक के सर्वांगीण विकास से संबंधित साक्ष्यों को एकत्रित करना है। इस समीक्षा के निष्कर्षों से तथा साथ ही यह विवरण समीक्षा लेखों में वर्णित साक्ष्यों पर ध्यान केंद्रित करके वर्तमान परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति के समग्र विकास के विभिन्न घटकों पर चक्रों एवं कुण्डलिनी के जागरण के हस्तक्षेप के प्रभावों पर वर्तमान साक्ष्य को सारांशित करती है।^{10,11} सामूहिक रूप से ये समीक्षाएँ ऐसे कई क्षेत्रों का सुझाव देती हैं जहाँ चक्र एवं कुण्डलिनी साधना लाभकारी हो सकती है।

हठयोग में वर्णित प्रमुख सात चक्रों में प्रत्येक चक्र की अपनी चेतना शक्ति है, जो व्यक्ति के भावनात्मक स्वास्थ्य से संबंधित है।¹² यौगिक अभ्यासों के माध्यम से इन चक्रों को मनोदैहिक स्तर पर संतुलित कर व्यक्ति की शारीरिक क्रिया प्रणाली और भावनात्मक दोनों ही पक्षों को स्थिर एवं संतुलित रूप से कार्य करने हेतु सक्षम बनाया जाता है।^{13,14}

इसी संदर्भ में, वर्तमान में किये गये शोध-अध्ययनों में पाया गया कि यौगिक मन-शरीर उपचारों के अंतर्गत चक्र अनुभव, श्वास चिकित्सा, निर्देशित कल्पना और माइंडफुलनेस मेडिटेशन का उपयोग करके जीवन की गुणवत्ता में सुधार सार्थक रूप से संभव है।¹⁵ चक्र पर आधारित पुस्तकों के समीक्षात्मक अध्ययन में भी चक्रों के रहस्यों को उजागर करने के साथ ही चक्रों का स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का

¹⁰ Woollacott, M. H., Kason, Y., & Park, R. D. (2020). Investigation of the phenomenology, physiology and impact of spiritually transformative experiences—kundalini awakening. *EXPLORE*.

¹¹ Selby, J., & Selig, Z. (2009). *Kundalini awakening: a gentle guide to Chakra activation and spiritual growth*. Bantam.

¹² सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द (2002), *कुण्डलिनी योग*, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या-435.

¹³ Paradkar, A., & Chaturvedi, S. K. (2010). Physio-kundalini syndrome with neurocognitive deficits. *International Journal of Culture and Mental Health*, 3(1), 25-33.

¹⁴ PS, J., Gopal, U. B., & Simon, R. K. (2021). Neurological Understanding Of Shad Chakra With Special Reference To Vata Dosha. *International Journal of Ayurveda and Pharma Research*, 93-97.

¹⁵ Fernros, L., Furhoff, A. K., & Wändell, P. E. (2008). Improving quality of life using compound mind-body therapies: evaluation of a course intervention with body movement and breath therapy, guided imagery, chakra experiencing and mindfulness meditation. *Quality of life research*, 17(3), 367-376.

अध्ययन किया गया है।^{16, 17, 18, 19} लिंग, एच. डब्ल्यू. (2020)²⁰ द्वारा किये गये अध्ययन में पाया कि, ओलिगोस्पर्मिया के रोगियों में ऊर्जा परिवर्तन और चक्र ऊर्जा की कमी होती है और अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए ऊर्जा स्तर पर उपचार महत्वपूर्ण है।

इसी से संबंधित एक अध्ययन में पाया गया कि चक्र पर मानसिक एकाग्रता उस चक्र विशेष को इस तरह से सक्रिय करती है कि अंततः उस चक्र पर एकाग्रता के माध्यम से स्वेच्छा से अधिक मात्रा में ऊर्जा का उत्सर्जन करना संभव हो जाता है।²¹ प्रत्येक चक्रों के दलों की निश्चित संख्या एवं इनका विशेष रंग यह दर्शाता है। “आध्यात्मिक जीवन में साधक को तीन अवस्थाओं को पार करना होता है— अविद्या, जिज्ञासा एवं प्रबोधन। यह चेतना की निम्नतम अवस्था से उच्चतम अवस्था तक आध्यात्मिक विकास का चित्रण करता है।”⁵⁸ इसी संदर्भ में, एक अन्य अध्ययन में आधुनिक मनो-विकृति और पारंपरिक योग दोनों ही दृष्टिकोण से कुण्डलिनी संबंधित परिवर्तित मानसिक अनुभवों को प्रदर्शित करने वाले मामलों की एक श्रृंखला पर चर्चा की गयी है और कुण्डलिनी योग का अभ्यास करने के बाद महसूस की जाने वाली उन्नत आध्यात्मिक अवस्था से गंभीर मानसिक बीमारी को अलग करने का प्रयास किया गया है।^{22, 23}

पूर्व में किये गये शोधकार्यों के पुनरावलोकन से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि योगोपनिषदों के विशेष परिप्रेक्ष्य में चक्रों एवं कुण्डलिनी के सैद्धांतिक पक्ष से संबंधित पूर्व में बहुत कम शोधकार्य किये गये हैं। फलस्वरूप समस्या यह है कि चक्र

¹⁶ Muller-Ebeling, C., Ratsch, C., & Shahi, S. B. (2002). *Shamanism and Tantra in the Himalayas*. Thames & Hudson.

¹⁷ Govinda, K. (2002). *A handbook of chakra healing: Spiritual practice for health, harmony, and inner peace*. Konecky Konecky.

¹⁸ Krishnakumar, P. R. (1992). An introduction to the mysticism of The Sri Chakra. *Ancient science of life*, 12(1-2), 289.

¹⁹ Long, J. D. (2016). Tantra: A Much-Misunderstood Path to Liberation. *Prabuddha Bharata*, (January issue), 157-167.

²⁰ Ling, H. W. (2020). Chakras and energy alterations in patients with oligospermia. *Archive of Urological Research*, 4(1), 010-016.

²¹ मोटोयामा, एच. (2014). *थ्योरिस ऑफ द चक्रास: ब्रीज टू हायर काश्चियर्स*, मोतिलाल बनारसीदास पब्लिकेशन्स, पृष्ठ संख्या— 273–274.

²² Hara Suchandra, H., Bojappen, N., Rajmohan, P., Phurailatpan, S., Murali, L. P., Ok, A. S., ... & Thirthalli, J. (2020). Kundalini-like Experience as Psychopathology: A Case Series and Brief Review. *Complementary Therapies in Clinical Practice*, 101285.

²³ Valanciute, A., & Thampy, L. A. (2011). Physio Kundalini syndrome and mental health. *Mental Health, Religion & Culture*, 14(8), 839-842.

एवं कुण्डलिनी साधना का इच्छुक व्यक्ति या साधक किस प्रकार चक्र व कुण्डलिनी के मर्मज्ञ को समझें? व किस आधार पर चक्र एवं कुण्डलिनी साधना के मार्ग पर अग्रसर हो सकें? जिससे कि साधक वास्तविक ज्ञान के आधार पर चक्र एवं कुण्डलिनी जागरण की साधना संपन्न कर संपूर्ण रूप से लाभान्वित हो सकें?

उपरोक्त समस्या के समाधान हेतु शोधकर्ता का विचार है कि योगोपनिषदों के विशेष संदर्भ में चक्रों एवं कुण्डलिनी के वास्तविक स्वरूप को समझने हेतु प्रत्येक चक्रों के नाम, स्थूल स्वरूप, स्थान, तत्त्व, बीज मंत्र, वाहन, प्रतीक, मुख्य वायु, गौण वायु, कोश, लोक कमल दल व रंग एवं कुण्डलिनी शक्ति की स्थिति व स्वरूप इत्यादि का तथ्यात्मक वर्णन किया जाए, साथ ही चक्र एवं कुण्डलिनी शक्ति के जागरण की प्रक्रियाँ व क्रियाविधियों का साक्ष्य के आधार पर वर्णन करना, इस मार्ग में ध्यान रखने योग्य सावधानियों आदि का अध्ययन करना एवं चक्रों व कुण्डलिनी साधना का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महत्व का विवेचनात्मक अध्ययन किया जाये और इस आधार पर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में चक्रों एवं कुण्डलिनी की साधना की उपादेयता पर प्रकाश डाला जायें जिससे कि आज के समय में साधक व चक्रों व कुण्डलिनी की साधना के इच्छुक सामान्यजन मूल्यपरक चक्र एवं कुण्डलिनी साधना के मर्मज्ञ को समझें एवं शिक्षित होने के साथ-साथ अपने व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास हेतु चक्र व कुण्डलिनी साधना को उपयोग में ला सकें। अतः चक्रों एवं कुण्डलिनी की साधना के इच्छुक सामान्यजन व साधक के जीवन में चक्रों एवं कुण्डलिनी शक्ति की उपादेयता से प्रभावित होकर शोधकर्ता ने प्रस्तुत शोध-प्रबंध हेतु इस विषय का चयन अध्ययन के लिए निर्धारित किया है।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी “योगोपनिषदों के विशेष परिप्रेक्ष्य में चक्र एवं कुण्डलिनी की अवधारणा का विवेचनात्मक अध्ययन” करने के लिये प्रवृत्त हुआ है।

प्रथम अध्याय

चक्र का सामान्य परिचय

- 1.1** चक्र का शाब्दिक अर्थ एवं परिभाषा
- 1.2** चक्र का स्वरूप
- 1.3** हठयोगिक ग्रंथों में चक्र की अवधारणा
- 1.4** चक्र एवं नाड़ियों का संबंध

1. चक्र का सामान्य परिचय

आधुनिक विज्ञान ने यह स्पष्ट किया है कि मनुष्य के पास अपार शक्ति का भंडार है, परन्तु अज्ञानता के कारण मनुष्य अपनी संभावित क्षमता का बहुत कम भाग ही उपयोग कर पाता है। मानव शरीर में उपस्थित प्राण ऊर्जा के केन्द्र रूपी चक्र मनुष्य की इन्हीं उच्चतम क्षमताओं का बोध कराते हैं। साथ ही आरोही क्रम में एक के पश्चात् अन्य चक्रों का जागरण वर्तमान मानवीय सीमाओं से परे जाने की ओर संकेत करते हैं। चक्र एक मार्गदर्शक के रूप में व्यक्ति में निहित क्षमता एवं प्रतिभा की अनुभूति कराते हैं। इस प्रकार चक्र मानवीय परिसीमा में उपस्थित चेतन शक्ति का प्रतिनिधित्व एवं विवेक दृष्टि, आत्मसंयम, आत्मनिग्रह, आनन्दावस्था, तादात्म्य और ज्ञान के उच्चतर स्तरों का निरूपण करते हैं।¹ 'वे ब्रह्माण्ड के पिण्ड में निहित होने तथा विराट के सूक्ष्म में व्याप्त होने के द्योतक हैं, जैसा कि इस प्रसिद्ध सूक्ति में कहा गया है— जो यहाँ है सो वहाँ है और जो यहाँ नहीं है सो कहीं नहीं है।'² मनुष्य की तर्क बुद्धि से पूर्णतः परे होने के कारण इस स्तर पर चक्र द्वारा मानव की उच्च चेतना की ओर क्रमिक विकास को प्रकट करना संभव नहीं है। कदाचित् इसी कारणवश चेतना के उच्चतर स्तर की ओर आरोहण करने हेतु प्राचीन मनीषियों, ऋषियों, योगियों, तांत्रिकों एवं दिव्यद्रष्टाओं या आत्मज्ञानियों द्वारा एक विशिष्ट विधि का सूत्रपात किया गया है जो चक्रों के प्रतीकात्मक रूप में हमारे सन्मुख उपस्थित हैं। यद्यपि लक्षणों की तरह प्रयोग में आने वाले चक्रों का यह प्रतीकात्मक स्वरूप सीमित अभिव्यक्तिकरण हैं। फिर भी ये चक्रों के नितांत स्वरूप को शब्दों से बहुत अधिक स्पष्ट करते हैं।

चक्रों के ये प्रतीकात्मक स्वरूप सजगता या चेतनता के मुख्य बिन्दु के रूप में चक्रों के जागरण के समय चेतना के आरोहण हेतु योग साधना में प्रयुक्त होते हैं। प्रमुखतः चक्र मूलाधार स्तर पर अहंभाव के विस्तार को इंगित करते हैं। व्यक्ति की सजगता के विकास व चक्रों के जागरण के परिणामस्वरूप अन्ततः सहस्रार स्तर पर अहंभाव की व्यापकता में पूर्ण विस्तार हो जाता है। अतः यह स्थिति अहं भाव से परे पूर्ण शून्य

¹ सरस्वती, सत्यानन्द स्वामी (1993), तंत्र, क्रिया और योगविद्या, बिहार योग विद्यालय, पृष्ठ संख्या— 496.

² वही, पृष्ठ संख्या— 496.

एवं आनन्द की अवस्था कहलाती है। वास्तव में इसे ही योग का सम्पूर्ण आधार कहा गया है।

चक्रों के क्रमिक जागरण हेतु योग मार्ग एक सीढ़ी की भाँति एक-एक बढ़ता हुआ सोपान है। शिव सूत्र में कहा है— “योग-मार्ग में सफलता के साथ हर कदम पर आश्चर्य भरे पड़े हैं।”^{3,4} वास्तव में चक्रों का जागरण भी एक आश्चर्य जनक प्रक्रिया ही है।

1.1 चक्र का शाब्दिक अर्थ एवं परिभाषा

शाब्दिक अर्थ में चक्र से तात्पर्य ‘पहिया या वृत्त’ से है। योग के संदर्भ में संस्कृत शब्द ‘चक्र’ का सटीक अर्थ ‘भँवर अथवा चक्रवात’ से है, अतः इस आधार पर चक्रों से तात्पर्य ऐसे ‘भँवर’ से है जो शरीर में व्याप्त प्राण के प्रवाह को नियन्त्रित करता है।⁵ योगशास्त्र में चक्र को ‘प्राण अथवा आत्मिक ऊर्जा का केन्द्र’ भी कहा जाता है।⁶ हठ यौगिक ग्रंथ गोरक्षशतकम् में चक्र का अर्थ “चाक या गोलाकार या पहिया” है।⁷ व्यापक रूप से चक्रों को ‘कमल या पद्म’ के नाम से भी जाना जाता है।⁸ शरीर विज्ञान के दृष्टिकोण से चक्रों को स्पाइनल कार्ड या मेरुदण्ड में स्थित न्यूरल प्लेक्सस या नाड़ी जालकों एवं एंडोक्राइन ग्लैंड्स से संबंधित माना गया है।

तंत्रयोग, हठयोग एवं उपनिषदों में चक्रों को ‘नाड़ी युगल स्थानों’ के नाम से भी संबोधित किया गया है, जो अति सूक्ष्म गतिवाहक एवं ज्ञान वाहक के रूप में परिणत होकर चक्र रूप में कार्य करता है। “जब इन नाड़ी गुच्छकों में ध्यान की विद्युतधारा प्रवाहित होती है, तब ध्यानज रश्मियों से भास्कर होकर ये चक्र प्रदीप्ति मान हो जाते हैं। ध्यान की दृष्टि से देखा गया है, कि प्रत्येक चक्र का मूल तथा शक्ति केन्द्र सुषुम्ना में है, जो मेरुदण्ड में स्थित है। हर चक्र की तरंग उससे संबंधित ग्रंथि और अंगों के कार्यों को प्रभावित करती है। कुछ लोग सहस्रार को चक्र नहीं मानते हैं, क्योंकि इस पर इड़ा, पिंगला का प्रभाव नहीं होता है। अनेक योग ग्रंथ

³ जयदेव सिंह, (2012), शिव सूत्रासः द योग ऑफ सुप्रिम आइडेंटिटी, मोतिलाल बनारसीदास पब्लिकेशन्स.

⁴ जॉन ह्यूजेस, (2010), शिव सूत्रः द सुप्रिम अवेकनिंग, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स.

⁵ सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द (2006), आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— 545—546.

⁶ सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द (2012), घेरण्ड संहिता, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— 385.

⁷ स्वामी कुवल्यानन्द (2013), गोरक्षशतकम्, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, पुणे, महाराष्ट्र, पृष्ठ संख्या— 76—77.

⁸ सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द (2005), कुण्डलिनी योग, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गंगादर्शन, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— 17.

मेरुदंड में केवल पाँच चक्रों की स्थिति मानते हैं। मूलाधार चक्र से लेकर विशुद्धि चक्र तक स्थित चक्रों का संबंध पंच तत्त्वों से शुद्ध चेतना माना जाता है, जबकि आज्ञा चक्र का संबंध मन से और सहस्रार का संबंध शुद्ध चेतना से माना गया है।⁹

चक्र की परिभाषाएँ

प्रमुख यौगिक ग्रंथों में चक्र की परिभाषाएँ निम्नवत् हैं—

1. **घेरण्ड संहिता** के अनुसार— ‘योग शास्त्र के अनुसार चक्र उन विशेष स्थानों को कहते हैं, जहाँ से सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त प्राणों को नियन्त्रित किया जाता है।’¹⁰
2. **गोरक्षशतकम्** के अनुसार— ‘चक्रों से तात्पर्य मनुष्य के शरीर के प्रमुख भाग में स्थित ‘आध्यात्मिक क्रिया के केन्द्र’ से है।’¹¹
3. **सिद्धसिद्धांतपद्धति** के अनुसार— “जो योगी शरीर में स्थित नौ चक्रों को भलीभाँति नहीं जानता वह केवल ‘योगी’ नामधारक है, उस व्यक्ति को ‘योगतत्त्ववेत्ता’ नहीं कहा जा सकता है।”¹²
4. **अथर्ववेद** के अनुसार— “देवों की शरीर रूपी यह अयोध्या नगरी जिसमें अष्टचक्र ‘शक्तिकेन्द्र’ और नौ द्वार (दो आँखें, दो नासिका छिद्र, दो कान, मुख, पायु और उपस्थ) हैं। इसी नगरी में एक देदीप्यमान हिरण्मय (स्वर्णमय) कोश ‘सहस्रार चक्र’ है, जो अनन्त, अपरिमित, असीम, सुख—शान्ति, आनन्द एवं दिव्य ज्योति से परिपूर्ण है।”¹³

⁹ शुक्ल, रमेश चन्द्र (2016), *चक्र एवं कुण्डलिनी*, पुस्तक महल, नई दिल्ली.

¹⁰ सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द (2012), *घेरण्ड संहिता: कर्मेंद्रि आनंद योगा टीचिंग ऑफ महर्षि घेरण्ड*, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या—385—391.

¹¹ स्वामी कुवल्यानन्द (2013), *गोरक्षशतकम्*, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, पुणे, महाराष्ट्र, पृष्ठ संख्या—76—77.

¹² “नवचक्रं कलाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।
सम्यगेतन्न जानाति, स योगी नामधारकः॥” सिद्धसिद्धांतपद्धति— 2/31.

¹³ अष्टचक्र नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥ अथर्ववेद 10.2.31.

आचार्य बालकृष्ण (2014), *आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य*, दिव्य योग मंदिर ट्रस्ट पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार (उत्तराखण्ड), पृष्ठ संख्या— 87.

1.2 चक्र का स्वरूप

‘विलक्षण शक्तियों के भण्डारगृह रूपी मानवीय शरीर के विशेष भागों में उपस्थित चक्र भाँति-भाँति की अद्भूत सूक्ष्म शक्तियों तथा प्राण ऊर्जा के केन्द्र कहे जाते हैं।’¹⁴ अर्थात् चक्र मानवीय संरचना में निहित प्राणमय केन्द्र हैं, जो मुख्य रूप से मनुष्य के शरीर में सन्निहित प्राणिक प्रवाह का नियमन करते हैं।¹⁵ मानव शरीर में उपस्थित ये चक्र मानव के व्यक्तित्व के स्थूल से सूक्ष्म तक प्रत्येक स्तरों को प्रकट करते हैं। प्रमुख योगशास्त्रों एवं तंत्रशास्त्र में चक्र को ‘ऊर्जा केंद्र’ के नाम से जाना जाता है। हठप्रदीपिका के तृतीय उपदेश में चक्र को ‘पद्म’ कहा गया है।¹⁶ नाड़ी विज्ञान के अनुसार प्रत्येक नाड़ी का एक निश्चित मार्ग होता है जो प्राण ऊर्जा की अत्यन्त सूक्ष्म संरचना से होकर गुजरती है। प्राण ऊर्जा की सूक्ष्म संरचनाओं का संगम रीढ़ की हड्डी के चारों ओर विशिष्ट बिंदुओं पर होता है। शरीर विज्ञान के अनुसार इन बिंदुओं को तंत्रिका जाल या नर्व प्लेक्सस कहते हैं। शरीर के स्तर पर ये चक्र तंत्रिका जालक एवं अंतःस्त्रावी ग्रंथियों से सम्बद्ध होते हैं। प्राण ऊर्जा के केन्द्र नाड़ियों एवं तंत्रिकाओं के समान किंतु उनसे अधिक सूक्ष्म होते हैं। सात प्राथमिक ऊर्जा केंद्र के रूप में चक्र भौतिक शरीर के प्रमुख तंत्रिका जाल के पास स्थित होते हैं।

रीढ़ की हड्डी के मध्य से गुजरने वाली सुषुम्ना नाड़ी में स्थित ये समस्त चक्र रीढ़ की हड्डी के मूल भाग से प्रारंभ होकर उसके ऊपरी भाग तक जुड़े हैं। इन चक्रों का सम्बद्ध नाड़ियों से होता है, जो तंत्रिकाओं के संगत, किंतु उनसे अधिक सूक्ष्म होती हैं। प्रतीक के रूप में चक्रों को कमल के फूल के सदृश बताया जाता है। कमल के फूल के समान प्रत्येक चक्र में पंखुड़ियों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है। प्रत्येक चक्र के दल संख्या में नियत होते हैं और प्रत्येक चक्र एक विशेष रंग का होता है, साथ ही इन प्रत्येक चक्रों से सम्बद्ध अन्य अतीन्द्रिय पक्षों को चक्र विशेष की पंखुड़ियों की संख्या, रंग, प्रतीक, देवता, तत्व, बीज मन्त्र, वाहन, मुख्य वायु, गौण

¹⁴ स्वामी, रामदेव (2009), *प्राणायाम रहस्य (वैज्ञानिक तथ्यों के साथ)*, दिव्य प्रकाशन दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार, पृष्ठ संख्या- 105-117.

¹⁵ सिंह. आर., (1977), *संत-काव्य में योग का स्वरूप*, अनुपम प्रकाशन, पटना, पृष्ठ संख्या-234-240.

¹⁶ दिगम्बर स्वामी, और. झा, डॉ पीताम्बर, (2001), *स्वात्माराम-कृत: हठप्रदीपिका*, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, पुणे, महाराष्ट्र.

वायु, कोश, लोक कमल दल व रंग द्वारा दर्शाया जाता है। सामान्य अवस्था में ये सभी चक्र बगैर खिले हुए कमल के फूल के समान अधोमुख हुए अविकसित रहते हैं। यौगिक विधियों जैसे— ब्रह्मचर्य का पालन, प्राणायाम का अभ्यास, ध्यान की विधियों का अभ्यास इत्यादि द्वारा उत्तेजित होकर ये चक्र ऊर्ध्वमुख होकर विकसित होते हैं, उस समय इन चक्रों की अलौकिक शक्तियों का विकास होता है।

व्यक्ति विशेष द्वारा यह अनुमानित किया जाना सर्वथा व्यर्थ एवं मिथ्यापूर्ण होगा कि मानव शरीर में उपस्थित इन चक्रों के जागरण हेतु योग की कुछ चयनित सर्वश्रेष्ठ साधनाओं को उपयोग में लाया जाता है, बल्कि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से योग की संपूर्ण शाखाओं तथा पद्धतियों का चक्रों के जागरण से विशिष्ट सम्बन्ध है। उदाहरण के लिए अन्य यौगिक विधियों की अपेक्षा कुण्डलिनी योग, लययोग एवं क्रियायोग प्रत्यक्षरूप से चक्रों के जागरण में सहायक हैं। जबकि योग की अन्य शाखायें जैसे— ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग इत्यादि परोक्ष रूप से चक्रों के जागरण से सम्बद्ध है, इसी कारण इन शाखाओं में चक्रों का प्रसिद्ध विश्लेषण नहीं मिलता। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि योग की इन पद्धतियों के द्वारा चक्रों का जागरण नहीं होता। इन विधियों में सर्वप्रथम सजगता का विकास होता है तत्पश्चात् क्रमशः चक्रों का जागरण होता है। यह प्रक्रिया अत्यंत सरल, सौम्य और सहज होती है। हठयोग के प्रमुख ग्रंथ घेरण्ड संहिता के अनुसार— “योगाभ्यास के समय चक्रों पर एकाग्रता का अभ्यास करने से चक्रों में प्राण का प्रवाह प्रेरित होता है और ये चक्र सक्रिय बनते हैं।”

चक्रों की सक्रियता से मस्तिष्क के सुषुप्त क्षेत्रों में जागृति आती है तथा सूक्ष्म एवं कारण शरीर में संगत शक्तियाँ जाग्रत होती हैं, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति को चेतना के उन उच्च स्तरों का अनुभव होता है, जो सामान्य रूप से व्यक्ति की पहुँच से परे होते हैं।¹⁷ सीधे या प्रत्यक्ष रूप से प्रभावकारी यौगिक पद्धतियों से चक्र—जागरण की प्रक्रिया में चक्र विशेष से संबंधित सजगता का विस्तार होता है एवं अप्रत्यक्ष विधियों द्वारा उच्च सजगता के फलस्वरूप चक्रों का जागरण होता है। अतः

¹⁷ सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द (2012), घेरण्ड संहिता: कमेंट्री आन द योगा टीचिंग ऑफ महर्षि घेरण्ड, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या—385—391.

इस प्रकार प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावी दोनों ही यौगिक पद्धतियाँ एक ही लक्ष्य के दो मार्ग हैं। एक प्रवेश-द्वार है तो अन्य पिछला मार्ग है, किंतु दोनों रास्ते एक ही अंतःपुर (व्यक्ति) में खुलते हैं। इस प्रकार योग के साथ-साथ आध्यात्मिक प्रविधि तथा मनस्-जागरण की विधियों का संबंध चक्रों में छिपी प्राण ऊर्जा को प्रस्फुटित करने से है। जिससे मन की अलौकिक शक्तियों तथा प्रतिभाओं को उद्घाटित किया जा सके। चक्रों का जागरण एवं मनस् जागरण— ये दोनों पृथक् विषय नहीं हैं, वरन् एक ही है। यथार्थ में “चक्रों के जागरण का तात्पर्य मन के एक-एक स्तर का जागरण करना अथवा बन्द पुस्तक में छिपे ज्ञान को प्रकाशित करने जैसा है।”¹⁸ इसी संदर्भ में हठयोग के प्रमुख ग्रंथ ‘सिद्धसिद्धांतपद्धति’ के द्वितीय उपदेश में पिण्ड विचार या व्यष्टि शरीर विचार के अंतर्गत शरीर के नौ चक्रों को क्रमपूर्वक समझाया गया है। सिद्धसिद्धांतपद्धति के अनुसार— “जो योगी शरीर में स्थित नौ चक्रों को भलीभाँति नहीं जानता वह केवल ‘योगी’ नामधारक है, उस व्यक्ति को ‘योगतत्त्ववेत्ता’ नहीं कहा जा सकता है।”¹⁹

योग शास्त्र, तंत्र शास्त्र, दर्शन शास्त्र, वेदों एवं उपनिषदों में चक्रों की संख्या भिन्न-भिन्न बतायी गयी है। मानवीय व्यक्तित्व के स्थूल से सूक्ष्म तक समस्त स्तरों को अभिव्यक्त करने वाले चक्र प्रत्येक व्यक्ति में असंख्य विद्यमान हैं। हठयोग के अनुसार सामान्यतः सात चक्रों का वर्णन मिलता है— 1. मूलाधार चक्र 2. स्वाधिष्ठान चक्र 3. मणिपुर चक्र 4. अनाहत चक्र 5. विशुद्धि चक्र 6. आज्ञा चक्र 7. सहस्रार चक्र। किंतु सभी योगग्रंथों एवं तंत्रशास्त्रों के मत से इन्हीं सात चक्रों को समर्थित नहीं किया गया है, अपितु विभिन्न ग्रंथों में चक्रों की भिन्न-भिन्न संख्या वर्णित है, जैसे— योगस्वरोदय एवं सौभाग्यलक्ष्यूपनिषद् में नौ चक्रों का विवरण मिलता है। महानिर्वाणतंत्र में सबसे भिन्न आकार तथा बीजमंत्र के साथ नौ चक्रों का परिचय दिया गया है। शक्तिसम्मोहनतंत्र में नौ चक्रों का वर्णन मिलता है। वामकेश्वर एवं रुद्रयामलतंत्र में छः चक्रों का विवेचन किया गया है। कुण्डलिनी योग में सात प्रकार के चक्रों का सविस्तार वर्णन किया गया है। लययोग के अंतर्गत भी प्रमुख सात चक्रों

¹⁸ सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द (2014), *कुण्डलिनी योग*, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— 117–195.

¹⁹ “नवचक्रं कलाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।

सम्यगेतत्र जानाति, स योगी नामधारकः॥” सिद्धसिद्धांतपद्धति (2/31)

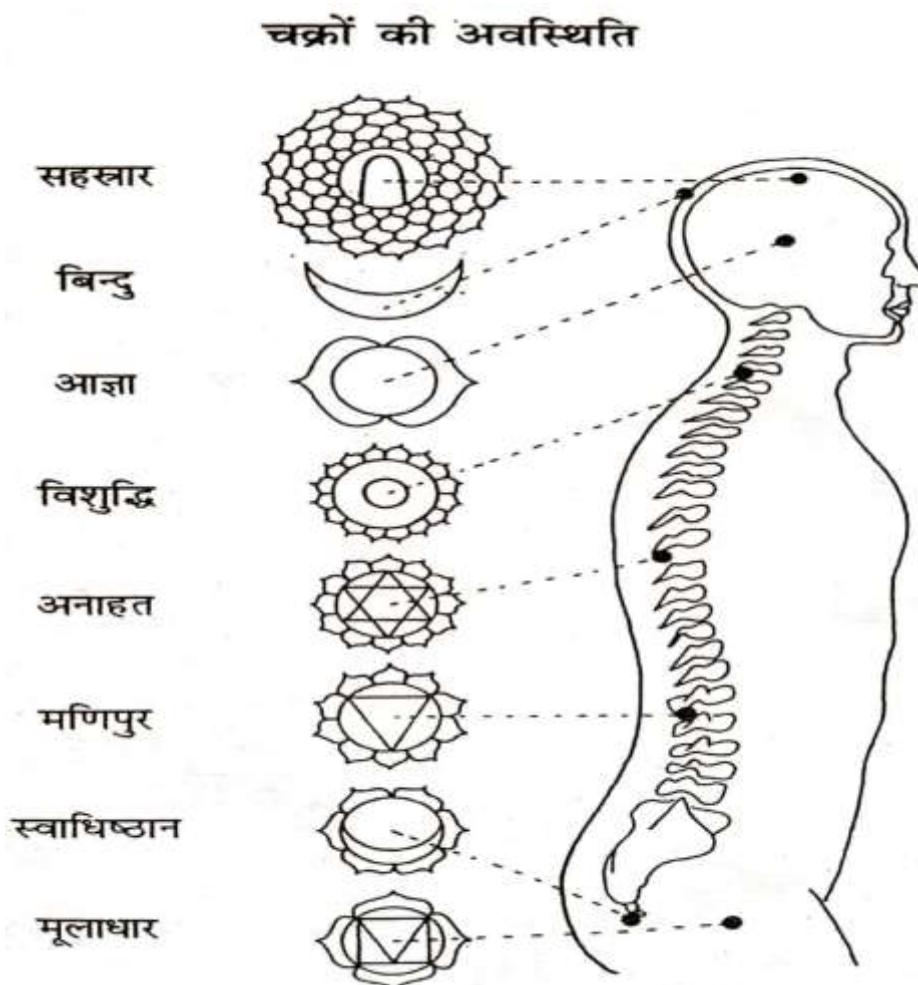
का वर्णन किया गया है। हठयोग में मुख्यतः छः चक्र प्रसिद्ध हैं, साथ ही इन छः चक्रों में आज्ञाचक्र के ऊपर भी नौ-चक्रों का वर्णन किया गया है। मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा प्रचलित चक्रों की संख्या छः है। गोरक्षसंहिता में मुख्यतः चक्रों की संख्या सात बतायी गयी है, जिनमें से विख्यात छः प्रमुख चक्रों के अलावा सहस्रारचक्र का वर्णन सातवें चक्र के रूप में किया गया है। इसी प्रकार प्रमुख हठयौगिक ग्रंथों जैसे घेरण्ड संहिता के अनुसार चक्र मुख्यतः सात होते हैं। सिद्धसिद्धांतपद्धति में नौ चक्रों की विस्तृत व्याख्या की गयी है।

हठरत्नावली नामक हठयोग के ग्रंथ में छः चक्रों का वर्णन किया गया है। शिवसंहिता में पद्म या कमल के रूप में कुल सात चक्रों को बतलाया गया है। गोरक्षशतकम् में षट्चक्रों के भेद से विभिन्नता दिखाई देती है। इसी प्रकार योगवशिष्ट में चक्र को केवल परिभाषित किया गया है।

अतः अखंडनीय रूप से यह स्वीकार किया जा सकता है कि चक्रों की संख्या गुरुओं की शक्ति व साधकों की व्यक्तिगत अनुभूतियों के कारण समान नहीं बतलायी गयी है। अलग-अलग भारतीय ग्रंथों के अनुसार चक्र विज्ञान के विषय में अनेकानेक व्याख्यायें की जाती रही हैं, तथापि इन व्याख्याओं में लगभग समानता ही दिखलायी पड़ती है। इस आधार पर प्रस्तुत शोधकार्य में विख्यात छः चक्रों के अतिरिक्त सातवें चक्र के रूप में सहस्रार चक्र का संक्षिप्त वर्णन चक्रदर्शन तालिकानुसार किया जा रहा है। जहाँ प्रत्येक चक्रों के नाम, स्थूल स्वरूप, स्थान, तत्त्व, बीज मंत्र, वाहन, प्रतीक, मुख्य वायु, गौण वायु, कोश, लोक कमल दल व रंग इत्यादि का वर्णन किया गया है।

चक्रदर्शन तालिका

चक्रों के नाम	स्थूल स्वरूप	स्थान	तत्व	बीज मंत्र	कमल दल व रंग	मुख्य वायु	वाहन	गौण वायु	कोश	लोक	प्रतीक
मूलाधार चक्र	पेल्विक प्लेक्सस	जननेन्द्रिय एवं गुदाद्वार के बीच करीब 1 इंच अंदर	पृथ्वी	लं	4 दल वाला गहरा लाल कमल	अपान	सात सूंडे वाला हाथी	कूर्म	अन्नमय	भू	स्थिरता एवं एकाग्रता
स्वाधिष्ठान चक्र	हाइपोगेस्ट्रीक प्लेक्सस	मूलाधार चक्र के ऊपर 1 से 1.5 इंच पेड़ के पास	जल	वं	6 दल वाला सिंदूरी कमल	व्यान	मगर	धनंजय	प्राणमय	भू	कर्मों की अन्तर्भौमिक गति
मणिपुर चक्र	इपीगेस्ट्रीक प्लेक्सस	नाभि के पास	अग्नि	रं	10 दलों वाला पीला कमल	समान	भेड़	कृकल	मनोमय	स्व	क्रियाशीलता व निश्चयात्मकता
अनाहत चक्र	कार्डियक प्लेक्सस	हृदय	वायु	यं	12 दल वाला नीला कमल	प्राण	काला हिरण	नाग	विज्ञानमय	मह	सहनशीलता व सभी जीवों के प्रति निष्काम प्रेम, भाईचारा
विशुद्धि चक्र	केरोटिड प्लेक्सस	कण्ठ	आकाश	हं	16 दल वाला बैंगनी कमल	उदान	सफेद हाथी	देवदत्त	आनन्दमय	जन	विवेक जाग्रति
आज्ञा चक्र	मेड्यूलरी प्लेक्सस	भ्रूमध्य	मनस्	ऊँ	2 दल वाला चाँदी के रंग का कमल	—	—	—	—	तप	प्रज्ञा और अन्तर्ज्ञान की जाग्रति
सहस्रार चक्र	सेरेब्रल ग्लैंड	सिर के शीर्ष भाग में	महत्त्व	—	1000 दल वाला दीप्त कमल	—	—	—	—	सत्यम्	शुद्ध चेतना का प्रतीक



चक्रों की मानव शरीर में अवस्थिति— (चित्र क्र.— 01)²⁰

ऊपर वर्णित चक्रदर्शन तालिका एवं चित्र-1 के अनुसार जिस प्रकार स्थूल शरीर में मस्तिष्क, हृदय और नाभि का स्थान महत्वपूर्ण है ठीक उसी प्रकार चक्रों का भी विशिष्ट महत्व है। मानव शरीरस्थ चक्र पृथक् शक्ति, प्राण तथा ऊर्जा के सूक्ष्म केंद्र हैं।

प्रत्येक चक्र में कुछ निश्चित शक्तियाँ, प्रभाव तथा अधिकार एक सुप्त शक्ति के भंडार रूप में विद्यमान हैं। जिस तरह विद्युत की अविद्यमानता में संबंधित यंत्रों का कोई मोल नहीं होता, ठीक उसी प्रकार कुण्डलिनी शक्ति ऊर्जा विद्युत के बिना समस्त चक्र भी बेकार पड़े रहते हैं। कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के फलस्वरूप समस्त चक्र सक्रिय हो जाते हैं। कुण्डलिनी शक्ति का जागरण दो उपायों द्वारा संभव

²⁰ सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द (2012), *घेरण्ड सांहिता: कर्मेंद्री आनंद योग टीचिंग ऑफ महर्षि घेरण्ड*, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या-391.

है— पहला ध्यान योग तथा दूसरा मंत्र योग। विद्युत ऊर्जा के समान शरीर रूपी यंत्र में कुण्डलिनी शक्ति का संचार है। कुण्डलिनी जागरण के परिणामतः ऐसा प्रतीत होता है मानो सारे शरीर में विद्युत प्रवाहित कर दी गई हो। कुण्डलिनी शक्ति प्रधानतः मूलाधार चक्र पर आघात करते हुए धीरे-धीरे अन्य समस्त चक्रों का क्रमशः भेदन करती हुई परमात्म सत्ता में विलीन हो कर स्वयं परमात्म स्वरूप हो जाती है। अतः सम्पूर्ण योग प्रणाली का आधार एवं कुण्डलिनी का सुषुम्ना के मूल में स्थित होने के कारण मूलाधार चक्र को आधार चक्र के रूप में भी संबोधित किया जाता है। यह शरीर के विभिन्न विद्युत केंद्रों के रूप में कार्य करता है। कुण्डलिनी एवं योग विद्या के दृष्टिकोण से यह चक्र अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना गया है। कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने पर सर्वप्रथम मूलाधार चक्र पर ही आघात होता है। मूलाधार चक्र के ठीक ऊपर स्वाधिष्ठान चक्र का स्थान है। यह स्थूल शरीर में प्रजनन तथा मूल संस्थान से संबंधित होता है।

स्वाधिष्ठान के ऊपर नाभि क्षेत्र में मणिपुर चक्र स्थित होता है। मणिपुर चक्र से ऊपर हृदय में अनाहत चक्र का स्थान है। हृदय में स्थित होने के कारण इसे 'हृदय चक्र' के नाम से भी जाना जाता है। अनाहत चक्र के ऊपर कण्ठ में विशुद्धि चक्र स्थित होता है जो कि वृत्ताकार होता है। विशुद्धि चक्र के पश्चात् आज्ञा चक्र आता है जो कि योग साधना की दृष्टि से एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण चक्र है। आज्ञा चक्र के ऊपर सहस्रार चक्र स्थित होता है। इस चक्र के विषय में कहा जाता है कि यह चक्र स्वतः ही क्रियाशील होता है।

1. मूलाधार चक्र

संस्कृत शब्द 'मूलाधार' से तात्पर्य 'जड़' से है। अतः चक्र संस्थान की जड़ या मूल में स्थित होने के कारण इसे मूलाधार चक्र कहा जाता है। योगीराज राकेश²¹ के अनुसार— 'सुषुम्ना नाड़ी के मूल भाग में स्थित होने के कारण भी इस चक्र का नाम मूलाधार पड़ा। इसे अन्य नाम 'आधार चक्र' से भी जाना जाता है।' मूलाधार चक्र को योग का आधार माना गया है। इस चक्र के द्वारा मानव व्यक्तित्व के समूचे अस्तित्व का मूल प्रभावित होता है। योग विज्ञान एवं कुण्डलिनी योग के दृष्टिकोण से मूलाधार चक्र को समूचे योग प्रणाली का अवलंब कहा गया है। तंत्र विज्ञान एवं योग शास्त्र में मूलाधार चक्र की महत्ता को स्पष्ट करते हुए इसे कुण्डलिनी शक्ति का मुख्य स्थान बताया गया है। जहाँ श्रेष्ठ आध्यात्मिक अनुभूतियों के प्रगट होने की असीम संभावनाएँ होती हैं। मूलाधार चक्र में ही कुण्डलिनी शक्ति अवस्थित होती है अतः इस हेतु मूलाधार चक्र की अपनी विशिष्ट महत्ता है।

सांख्य दर्शन के अनुसार 'मूलाधार' से तात्पर्य 'मूल प्रकृति' से है। यही से सृष्टि के विकास का क्रम आरंभ होता है। अतः मूल प्रकृति के आधार रूप में मूलाधार ही सृष्टि की संरचना में उत्तरदायी है।

मूलाधार चक्र का स्थान

'मूलाधार चक्र का स्थान पुरुषों में अंडकोश एवं गुदा के बीच पेरीनियम के थोड़े अंदर स्थित होता है तथा महिलाओं में गर्भाशय ग्रीवा के पिछले हिस्से में होता है।' ²² जीवन के प्रारंभिक काल में बालकों की समस्त चेष्टाएँ मूलाधार चक्र के कारण प्रभावित होती हैं। इसके विशेष प्रभाव से व्यक्ति प्रायः रात में पेट के बल दस से बारह घंटे तक सोता है।

²¹ योगीराज राकेश, कुण्डलिनी शक्ति और जागरण, प्रकाशक— दुर्गा वॉकेट बुक्स 428/24, ईश्वरपुरी, नियर ओडियन सिनेमा, जैन मंदिर वाली मेरठ-2.

²² सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द (1993), *तंत्र, क्रिया और योगविद्या*, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत. पृष्ठ संख्या— 505.

परंपरागत प्रतीक

योग एवं तंत्र शास्त्रों में इसे प्रतीक रूप में दर्शाया है। परंपरागत रूप से चार पंखुड़ियों वाले गहरे लाल रंग के कमल को मूलाधार चक्र का प्रतीक बताया गया है। स्वर्णाक्षरों में कमल की इन हर एक पंखुड़ी पर 'वं, शं, षं, सं' अक्षर अंकित हैं।



मूलाधार चक्र (चित्र क्र.- 02)²³

पृथ्वी तत्व के प्रतीक रूप में इस कमल के बीचों-बीच पीले रंग का एक वर्ग है। जो पृथ्वी तत्व का प्रतिनिधित्व करता है। जिसके कारण इस चक्र की तन्मात्रा 'गंध' है तथा ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रिय क्रमशः नासिका और गुदा है। चारों ओर से यह वर्ग सुनहरे रंग के आठ वर्णों (चार वर्ण मूल भूत केन्द्रों में तथा शेष चार वर्ण कोनों में) से घिरा हुआ है। मूलाधार चक्र का बीज अक्षर लं है जो वर्ग के ऊपर स्थित त्रिकोण में अंकित है। इस चक्र के सामने की ओर की बीजगति को दर्शाता हुआ तत्व बीज का वाहन एक सात सूंड वाला ऐरावत हाथी है। यह इस पूरी पृथ्वी पर सबसे बड़ा, मजबूत तथा शक्तिशाली पशु है। जो मूलाधार चक्र में समाई शक्ति की

²³ ध्यान यंत्र, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत. संस्करण 2009, पृष्ठ संख्या- 93.

विशेषता है। जो मूलाधार में पूर्ण रूप से ठोस स्थान में स्थायी एवं शांत पड़ी कुण्डलिनी शक्ति का भी प्रतिनिधित्व करती है। स्थूल शरीर को क्रियाशील बनाए रखने के लिए सात खनिजों के प्रतीक रूप हाथी की सात सूंड हैं। आयुर्वेद शास्त्र में हाथी की इन सात सूंडों की तुलना सप्तसातुओं से की है। इस चक्र के अधिपति देव चार भुजाओं तथा तीन सिरों वाले ब्रह्माजी हैं तथा उनकी शक्ति चतुर्भुज डाकिनी है। इस चक्र के अधिकारी गणेशजी हैं।

संभावनाएँ

मूलाधार चक्र में दो संभावनाएँ निहित हैं— एक कामवासना और दूसरी ब्रह्मचर्य। इनमें से पहली संभावना अर्थात् कामवासना तो प्रकृति प्रदत्त है जबकि दूसरी संभावना अर्थात् ब्रह्मचर्य मूलाधार चक्र की साधना के फलस्वरूप प्राप्त होती है। जब योग साधना के माध्यम से मूलाधार चक्र जागृत हो जाता है उस अवस्था में कामवासना रूपांतरित होकर ब्रह्मचर्य की सिद्धि प्राप्त होती है। इसी चक्र के प्रभाव के अंतर्गत काम, क्रोध, मोह, माया, ईर्ष्या, घृणा, द्वेष आदि आते हैं। ध्यान की अवस्था में जब मूलाधार चक्र के तत्त्व बीज ध्वनि लं को बार-बार उच्चारित किया जाता है। इसके उच्चारण से उत्पन्न तरंग मूलाधार की नाड़ियों को उत्तेजना की अवस्था में पहुँचाती हैं। इसी के साथ ये तरंगें ऊर्ध्व मस्तिष्क को भी प्रभावित करती हैं। इसके परिणामस्वरूप शक्ति के अधोगति में अवरोध उत्पन्न होकर शक्ति को ऊपर की ओर गति करने वाली होती है। जिससे मूलाधार के प्रभावों— असुरक्षा, भय आदि का लोप हो जाता है एवं मनोबल की प्राप्ति होती है। शास्त्रकारों, योगियों एवं आचार्यों ने मूलाधार जागरण की बहुत-सी विधियाँ बताई हैं। सभी का अपना-अपना महत्त्व भी है। मूलाधार चक्र के जागरण की साधना के लिए ब्रह्मचर्य के भाव को प्रगाढ़ करने की आवश्यकता है। यदि ध्यान के नियमित अभ्यास के बाद यह भावानुभूति गहन हो सके कि मूलाधार में स्थिर कोई शक्ति क्रमिक रूप से उठ रही है तभी मूलाधार चक्र का भेदन संभव है।

2. स्वाधिष्ठान चक्र

‘स्वाधिष्ठान’ शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के दो शब्दों ‘स्व’ एवं ‘अधिष्ठान’ से हुई है जिनका क्रमशः तात्पर्य —‘स्वयं’ तथा ‘रहने का स्थान’ है। इस प्रकार दोनों शब्दों के परस्पर मिलने पर निर्मित शब्द ‘स्वाधिष्ठान’ का अर्थ है— ‘अपने या स्वयं के रहने का स्थान’। यह मानव शरीर में उपस्थित दूसरा प्रमुख चक्र होने के साथ ही कुण्डलिनी शक्ति की यात्रा का दूसरा तथा महत्वपूर्ण पड़ाव है।

स्वाधिष्ठान चक्र का स्थान

स्वाधिष्ठान चक्र की स्थिति मूलाधार चक्र के ठीक ऊपर है। स्वाधिष्ठान चक्र का क्षेत्र मानव शरीर में सामने की ओर पेडू हड्डी के पास है। मानव के स्थूल शरीर में यह चक्र मूल तथा प्रजनन संस्थान से संबंधित है तथा शरीर विज्ञान के अनुसार यह प्रोस्टेस्ट ग्रंथियों के अस्थि-मांस संयोजक शिरा या नस अर्थात् स्नायुओं से सम्बंधित है। पुरुषों तथा स्त्रियों दोनों में ही इसकी स्थिति मूलाधार के अत्यंत समीप है। इसकी स्थिति हड्डी के नीचे कोक्सल के स्तर पर अनुभव की गई है। वास्तव में यह गुदाद्वार के ठीक ऊपर स्थित हड्डियों से बने एक छोटे लाइट की तरह है। योग साधना की दृष्टि से व्यक्ति के अस्तित्व का आधार के रूप में स्वाधिष्ठान चक्र को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। अचेतन मन के प्रतिरूप में मस्तिष्क के भीतर यह चक्र की विद्यमानता है। अध्यात्मवेत्ताओं एवं विद्वानों के मतानुसार संस्कारों के भरपूर भंडार के रूप में संगृहीत प्रत्येक कर्म पिछला जीवन, पिछले अनुभव, अचेतन मन ये सभी स्वाधिष्ठान चक्र के प्रतीक हैं।

परंपरागत प्रतीक

स्वाधिष्ठान चक्र प्राणमय कोश का निवास स्थान है। परंपरागत रूप से छः पंखुड़ियों वाले सिंदूरी रंग के कमल को स्वाधिष्ठान चक्र का प्रतीक बताया गया है। चमकीले रंगों में कमल की इन हर एक पंखुड़ी पर ‘बं, भं, मं, यं, रं, लं’ अक्षर अंकित हैं।



स्वाधिष्ठान चक्र (चित्र क्र.— 03)²⁴

स्वाधिष्ठान चक्र पंचमहाभूतों में 'जल' तत्व प्रतिनिधित्व करता है। जिसके कारण इस चक्र की तन्मात्रा 'स्वाद या रस' है एवं प्रधान भौतिक गुण 'कल्पनाशीलता' है। 'व्यान' इस चक्र की मुख्य वायु है तथा ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रिय क्रमशः जिह्वा और लिंग एवं योनि, गुर्दे तथा मूत्र प्रणाली है। जल तत्व का प्रतिनिधित्व करने के कारण कमल के अंदर बना सफेद रंग का एक अर्ध चन्द्र इस चक्र का प्रतीक है। 'श्वेत रंग का मगर' स्वाधिष्ठान चक्र का वाहन है जो कि सुप्त कर्मों का प्रतीक है। इस वाहन के ऊपर 'वं' अक्षर का बीज मंत्र अंकित है। इस चक्र का संबंध 'भुवः' लोक से है एवं यह आध्यात्मिक जागृति का मध्य स्तर है। यह गतिशील प्राण वायु का प्रमुख स्थान है। चार भुजाधारी तथा सुदर्शन चक्रधारी श्री विष्णु स्वाधिष्ठान चक्र के अधिपति देवता हैं तथा जिनकी शक्ति राकिनी है। विद्वानों तथा अध्यात्मवेत्ताओं के

²⁴ ध्यान यंत्र, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत. संस्करण 2009, पृष्ठ संख्या— 95.

अनुसार स्वाधिष्ठान चक्र में पूर्व अनुभूतियाँ एवं कर्मों का संग्रहण रहता है तथा इन सभी का प्रतीक स्वाधिष्ठान चक्र ही है।

संभावनाएँ

यह एक महत्त्वपूर्ण चक्र है जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट हो जाता है। ध्यान की अवस्था में जब इस चक्र के तत्व बीज 'वं' का शुद्ध ध्वनि से बार-बार उच्चारण किया जाता है तो इसके उच्चारण से उत्पन्न आवृत्ति समस्त शरीर में शक्ति के रूप में प्रवाहित होकर शरीर के निम्न भागों से अवरोध हटाती है। परिणामस्वरूप साधक लोभ, मोह, क्रोध तथा काम जैसी अपनी मानसिक कुप्रवृत्तियों से छुटकारा पाता है। स्वाधिष्ठान चक्र की साधना बल, सामर्थ्य, विवेक, धैर्य, दृढता तथा विकास को बढ़ाने वाली है। स्वाधिष्ठान अर्थात् अपना अधिष्ठान करने वाला प्रजनन, कल्पना, मनोरंजन ईर्ष्या, द्वेष, दया शून्यता, उद्विग्नता, बेचैनी आदि गुण तथा अवगुण इसी चक्र द्वारा प्रभावित होते हैं। जल तथा चन्द्र से सम्बंधित होने के कारण हृदय की चंचलता, भावुकता आदि विशिष्ट गुण इसी चक्र के प्रभाव में आते हैं।

3. मणिपुर चक्र

संस्कृत के दो शब्दों 'मणि' और 'पुर' के संयोजन से बना शब्द 'मणिपुर' है, जिसका शाब्दिक अर्थ है—'मणियों का नगर'। तिब्बतीय योग पद्धति में इसे 'मणि पदम्' अर्थात् 'मणियों का कमल' कहा जाता है। नाभि के पीछे मेरुदण्ड में स्थित होने के कारण इसे अन्य नामों जैसे—'नाभि चक्र' या 'सूर्य चक्र' से भी जाना जाता है। यह मानव शरीर में उपस्थित तीसरा प्रमुख चक्र होने के साथ ही कुण्डलिनी शक्ति की यात्रा का तीसरा तथा महत्त्वपूर्ण पड़ाव है।

मणिपुर चक्र का स्थान

इस चक्र का स्थान नाभि के पीछे की ओर मेरुदण्ड में माना जाता है। मणिपुर चक्र का क्षेत्र नाभि में है। शरीर क्रिया विज्ञान के अनुसार यह चक्र सोलर प्लेक्सस से संबंधित है जो आहार प्रणाली तथा दैहिक ऊष्मा का नियंत्रण कर शरीर को समस्त रोगों से मुक्त करता है। नाभि में स्थित होने के कारण यह अध्यात्म का प्रवेश मार्ग

है। यहाँ अमृतकुंड एवं रुद्रग्रंथि का स्थान भी है। अतः इस चक्र से प्रभावित व्यक्ति रात्रि में 6 से 8 घंटे तक सोता है।

परंपरागत प्रतीक

योग शास्त्रों में मणिपुर चक्र के प्रतीकात्मक रहस्य को बड़ी अद्भुत रीति से दिखाया गया है। स्वाधिष्ठान चक्र के साथ-साथ मणिपुर चक्र भी प्राणमय कोश का निवास स्थान है। परंपरागत रूप से दस पंखुड़ियों वाले चमकदार पीले रंग के कमल को मणिपुर चक्र का प्रतीक बताया गया है। तंत्र शास्त्र इस कमल की पंखुड़ियों का रंग भूरे बादल की भांति बताते हैं, परन्तु कुछ स्थानों पर इनका उल्लेख हरे रंग का मिलता है। नील कमल के रंग में कमल की हर एक पंखुड़ी पर 'डं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, वं और फं' अक्षर अंकित है।



मणिपुर चक्र (चित्र क्र.- 04)²⁵

²⁵ ध्यान यंत्र, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत. संस्करण 2009, पृष्ठ संख्या- 97.

इस कमल के बीचों-बीच उगता हुआ सूरज की भाँति गहरे लाल रंग का एक उल्टा त्रिभुज है जो अग्नि का अनुक्षेत्र है। इस त्रिभुज की प्रत्येक भुजा पर 'टी' के आकार के स्वास्तिक चिन्ह हैं तथा त्रिभुज के नीचे अजेय पराक्रम व क्रियाशीलता के प्रतीक रूप में एक भेड़ अवस्थित है, जो इस चक्र का वाहन है। इस वाहन रूपी भेड़ के ऊपर चक्र का बीज मंत्र 'रं' अंकित है। चार भुजाओं वाले रुद्र को इस चक्र का अधिपति देव माना गया है, जिनकी शक्ति देवी लाकिनी है। मणिपुर चक्र में ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय क्रमशः आँख व पैर हैं तथा तन्मात्रा 'दृश्य' है एवं यह रजोगुणी है। इस चक्र का तत्त्व 'अग्नि' तथा मुख्य वायु 'समान' एवं प्रधान गुण 'तेज' है, जो पूरे शरीर में पोषण को प्रेषित करती है। मणिपुर चक्र 'स्वःलोक' से संबंधित है तथा यन्त्र अधोमुखी त्रिकोण है।

संभावनाएँ

मणिपुर चक्र के बीज मंत्र 'रं' का ध्यानावस्था में शुद्धोच्चारण किया जाए तो उसके द्वारा उत्पन्न आवृत्ति के प्रभाव से रस को आत्मसात् करने की शक्ति तथा पाचन शक्ति में वृद्धि होती है। यह सूक्ष्म शरीर के बीज स्थान के रूप में होता है। सूक्ष्म तल पर मणिपुर चक्र की दो संभावनाएँ हैं— प्रथम प्रकृतिप्रदत्त, संदेह तथा विचार व दूसरी साधनाप्रदत्त, श्रद्धा व विवेक। मणिपुर चक्र की साधना से संदेह का रूपांतर श्रद्धा में तथा विचार का रूपांतर विवेक में होता है। मणिपुर चक्र को बल, अभिलाषा, क्रियात्मकता एवं सफलता का केन्द्र बतलाया गया है। अतः इसी कारण कुण्डलिनी जागरण में इस चक्र का अत्यधिक महत्व है। यह शरीर के विभिन्न संस्थानों एवं जीवन की कार्यप्रणाली का नियमन कर संपूर्ण शरीर को प्राणवान व शक्तिसंपन्न बनाता है। अतः योग साधकों के साथ ही आनन्दमय जीवन जीने के इच्छुक सामान्यजनों के लिए भी मणिपुर चक्र की साधना अत्यंत प्रभावकारी है।

मणिपुर चक्र के निस्तेज एवं निष्क्रिय अवस्था में होने पर व्यक्ति शक्तिहीन तथा अकर्मण्य हो जाता जाता है, फलस्वरूप व्यक्ति संदेह के घेरे में आकर अनेकों व्याधियों एवं अवसाद से ग्रसित हो जाता है। वह अपने कर्तव्यों के प्रति लापरवाह, जिम्मेदारियों से भागने वाला होता है तथा उसमें प्रेरणा का अभाव होता है। मणिपुर

चक्र की ध्यान साधना के फलस्वरूप व्यक्ति अपने शरीर के विषय में ज्ञानवान हो जाता है तथा इस चक्र के शुद्धिकरण एवं जागरण के फलस्वरूप साधक व्याधिरहित एवं कांतिवान होता है, साथ ही साधक में आयु व सामर्थ्य की वृद्धि होती है एवं साधक पुनः निम्नगामी नहीं हो पाता। इस चक्र की साधना हेतु साधक को अत्यंत दृढ़प्रतिज्ञ तथा लगनशील होना अतिआवश्यक है। योग सम्प्रदायों तथा शास्त्रों में इस चक्र की साधना हेतु श्वास विज्ञान अथवा प्राणायाम की प्रक्रिया के रूप में स्वर योग का वर्णन मिलता है।

4. अनाहत चक्र

‘अनाहत’ शब्द का शाब्दिक अर्थ है ‘जो आहत न हुआ हो’, अर्थात् अनाहत चक्र का संबंध लगातार आजीवन एकलय रूप में स्पंदित और तरंगित हृदय से होने की वजह से यह ‘अनाहत चक्र’ कहलाता है। यौगिक ग्रंथों में इस अनाहत शब्द को भौतिक नियमों एवं अनुभवों से परे हृदय में धड़कन की भाँति एक नाद के रूप में वर्णित किया गया है, जो निरंतर निःसृत होता रहता है। योग विज्ञान के आधार पर अनाहत चक्र की स्थिति हृदय प्रदेश में होने के कारण इसको ‘हृदय चक्र’, ‘हृदयाकाश’ अर्थात् ‘पवित्रता से परिपूर्ण हृदय के बीच का स्थान’ नाम से भी जाना जाता है। मनुष्य शरीर में स्थित यह चौथा प्रमुख चक्र एवं कुण्डलिनी शक्ति के ऊर्ध्वरोहण मार्ग का चौथा पड़ाव है।

अनाहत चक्र का स्थान

मनुष्य के शरीर में अनाहत चक्र मेरुदण्ड की आंतरिक दीवारों में वक्ष प्रदेश के मध्यबिंदु के पीछे की तरफ स्थित है। अनाहत चक्र का क्षेत्र विशेष हृदय प्रदेश है। शरीर रचना विज्ञान के आधार पर अनाहत चक्र तंत्रिकाओं तथा नसों के जाल से संबंधित है, किन्तु यह सभी स्थूल सीमाओं से पूर्णतः परे है। अतएव इसे केवल हृदय के रूप में जानना पर्याप्त नहीं है।

परंपरागत प्रतीक

तंत्रशास्त्र एवं यौगिक ग्रंथों में अनाहत चक्र की रहस्यमयी शक्तियों के प्रतीकात्मक स्वरूप का वर्णन इन ग्रंथकारों का मनभावन विषय रहा है, जिनके अनुसार— अनाहत चक्र में मनोमय कोश की स्थिति का वर्णन किया गया है। पारंपरिक रूप से अनाहत चक्र को बारह पंखुड़ियों वाला कमल कहा गया है। परंपरागत रूप से यह चक्र चमकीले रंग के बंधूक पुष्प या किरमिजी के समान है। योग ग्रंथ 'कुण्डलिनी योग' के अनुसार अनाहत चक्र नीला रंग लिये हुए कमल के सदृश दिखायी देता है। अनाहत चक्र की प्रत्येक बारह पंखुड़ियों पर नीले रंगों के अक्षरों से 'कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, टं और ठं' बीज अक्षर लिखे गये हैं।



अनाहत चक्र (चित्र क्र.— 05)²⁶

²⁶ ध्यान यंत्र, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत. संस्करण 2009, पृष्ठ संख्या— 99.

अनाहत चक्र के अंदर दो षट्कोण एक दूसरे की विपरित दिशा में त्रिभुजों से निर्मित हैं, जो वायु तत्व को दर्शाता है। इस हेतु इस चक्र का तत्व 'वायु' है। दो अंतर्निहित त्रिभुजों में सीधा त्रिभुज 'शिव या चेतना' का प्रतीक है एवं उल्टा त्रिभुज 'शक्ति' का प्रतीक होने के साथ ही शक्ति व शिव दोनों के मिलन का प्रतीक है। अनाहत चक्र के तत्व से संबंधित तन्मात्रा 'स्पर्श' है। इस चक्र का प्रधान भौतिक गुण 'रजोगुण या तेज' है, जो संपूर्ण शरीर में पोषण को संचरित करता है। अनाहत चक्र का वाहन 'काला हिरण' है, जो चौकस या सतर्कता व चपलता को दर्शाता है। अनाहत चक्र में वाहन के ऊपर इस चक्र का बीज अक्षर 'यं' अंकित है। इस चक्र की मुख्य वायु 'समान' है। यहाँ 'विष्णुग्रंथि' स्थित रहती है। मनुष्य शरीरस्थ इस अनाहत चक्र से संबंधित ज्ञानेन्द्रिय— त्वचा तथा कर्मेन्द्रिय— हाथ है। अनाहत चक्र से संबंधित लोक 'महालोक' है जो अमिट संसार का प्रथम स्तर एवं अन्तःकरण का प्रमुख स्थान कहलाता है। अनाहत चक्र के अधिपति देवता के रूप में सूर्य के समकक्ष आभायुक्त ईशा है तथा हितकारी 'काकिनी' इस देवता की शक्ति है।

संभावनाएँ

भटकाव, चंचलता, चिंता, लोभ, तृष्णा, अनुताप, कपट, अविवेक, आशा—निराशा, भ्रम—विभ्रम, सक्रियता, वितर्क, संवेदनशीलता तथा दृढ़ता इत्यादि अनाहत चक्र की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इन प्रमुख विशेषताओं के अतिरिक्त विशेष रूप से परकाया प्रवेश एवं वायु में गमन करना अनाहत चक्र के जाग्रत होने पर ही संभव है। विष्णु ग्रंथि का निवास स्थान होने की वजह से अनाहत चक्र भावनाओं तथा मन को नियंत्रित करता है। अनाहत चक्र मस्तिष्क के संज्ञानकेन्द्र से संबंधित है, जिसके कारण अनाहत चक्र के जागरण से सृजनशीलता, कविता, वाक्पटुता, चित्रकला, ज्ञान, नृत्य, संगीत इत्यादि गुणों से रहित होकर साधक योगियों में श्रेष्ठ योगी बनता है। ध्यानावस्था में इस अनाहत चक्र के तत्व बीज 'यं' का शुद्ध ध्वनि से पुनः—पुनः उच्चारण करने से सभी प्रकार की बाधाएँ स्वयं ही समाप्त हो जाती हैं एवं निर्बाध रूप से शक्ति का प्रवाह ऊर्ध्वमुखी हो जाता है। फलतः परम सत्ता से साक्षात्कार संभव हो पाता है। सूक्ष्म शरीर से संबंधित इस अनाहत चक्र की साधना के परिणामस्वरूप साधक के

कर्म श्रेष्ठ होने के साथ ही कर्म वश में हो जाते हैं, परिणामतः साधक बिना किसी बाधा के प्रगाढ़ ध्यान लगाने में सक्षम हो पाता है। इस चक्र की साधना सभी चक्रों की साधना से बिल्कुल भिन्न है। क्योंकि इस स्तर पर योग साधक को 'स्व' का पूरी तरह से बोध हो जाता है।

इस प्रकार अनाहत चक्र की साधना के द्वारा साधक की चेतना पूर्णतः योगमय हो जाती है।

5. विशुद्धि चक्र

विशुद्धि चक्र के शाब्दिक अर्थ के आधार पर इस चक्र से तात्पर्य 'शुद्धिकरण केंद्र' से है, इसी कारण विशुद्धि चक्र शरीर की स्वच्छता एवं संतुलनशीलता से संबंधित होता है। यौगिक ग्रंथ कुण्डलिनी योग में इस विशुद्धि चक्र की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि बिंदु से झरने वाले शुद्ध एवं निर्मल अमृत से विष का पृथक्कीकरण होता है। इसलिए यह चक्र 'विष या अमृत केन्द्र' भी कहलाता है।

विशुद्धि चक्र को 'ब्रह्मद्वार' के नाम से भी जाना जाता है। चिकित्सा विज्ञान के आधार पर इस चक्र को शरीर का एक मर्म स्थान बताया गया है जिसके भेदन के फलस्वरूप तत्क्षण मृत्यु हो जाती है। मनुष्य शरीर में स्थित यह पाँचवां प्रमुख चक्र एवं कुण्डलिनी शक्ति के ऊर्ध्वरोहण मार्ग का पाँचवां पड़ाव है।

विशुद्धि चक्र का स्थान

मनुष्य के शरीर में गर्दन के सामने की ओर या अवटुग्रंथी पर एवं ग्रीवा के पीछे की तरफ ग्रीवाजाल में विशुद्धि चक्र स्थित होता है। शरीर विज्ञान के आधार पर यह चक्र ग्रास नली तथा वोकल इंस्ट्रुमेंट से संबंधित नर्व प्लेक्सेस से संबंधित होता है।

परंपरागत प्रतीक

पारंपरिक रूप से विशुद्धि चक्र को सोलह पंखुड़ियों वाला कमल कहा गया है। तंत्रशास्त्र के आधार पर इस चक्र का रंग गहरा— भूरा एवं कुछ साधकों के अनुभव के

अनुसार इसे बैंगनी रंग का माना गया है। विशुद्धि चक्र के कमल की सोलह पंखुड़ियां केंद्र से जुड़ी नाड़ीयों से सम्बद्ध है। विशुद्धि चक्र की प्रत्येक सोलह पंखुड़ियों पर चमकीले सिंदूरी रंग के अक्षरों से 'अं, आं, इं, ईं, उं, ऊं, ऋं, ॠं, लृं, हं, एं, ऐं, ओं, औं, अं तथा अः' बीज अक्षर लिखे गये हैं।



विशुद्धि चक्र (चित्र क्र.- 06)²⁷

विशुद्धि चक्र के अंदर की दीवारों पर एक पूर्ण चन्द्र जैसी उजली एवं विशुद्ध वृत्तीय संरचना है, जो आकाश तत्व को दर्शाती है, इस हेतु इस चक्र का तत्व 'आकाश' है। विशुद्धि चक्र के तत्व 'आकाश' से संबंधित तन्मात्रा 'शब्द' है। इस चक्र का प्रधान भौतिक गुण 'सुनना' है। विशुद्धि चक्र का वाहन 'विशुद्ध श्वेत रंग का

²⁷ यान यंत्र, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत. संस्करण 2009, पृष्ठ संख्या- 101.

हाथी' हैं जो चेतना का वाहक रूप है। विशुद्धि चक्र के वाहन पर इस चक्र का बीज अक्षर 'हं' अंकित है। विशुद्धि चक्र की मुख्य वायु 'उदान' है। सदैव ऊर्ध्व दिशा में प्रवाहरत एवं पोषण को संपूर्ण शरीर में संप्रेषित करने का कार्य इसी वायु का है। मनुष्य शरीरस्थ इस विशुद्धि चक्र से संबंधित ज्ञानेन्द्रिय— आँख तथा कर्मेन्द्रिय— वाणी है।

विशुद्धि चक्र से संबंधित लोक 'जनः' हैं यह विज्ञानमय कोश के आधार को निर्मित कर साधक के अतीन्द्रिय विकास की शुरुआत द्योतक है। विशुद्धि चक्र के अधिपति देवता के रूप में पंचमुखी सदाशिव हैं तथा साकिनी इस चक्र की शक्ति है। वामकेश्वर तंत्र के आधार पर इस चक्र के पास ब्रह्म ग्रंथि है, परन्तु अन्य कुछ स्थानों पर विशुद्धि चक्र के समीप रुद्र ग्रंथि का होना माना गया है।

संभावनाएँ

अर्थ के समान ही यह चक्र विशुद्ध रूप से साधना के दृष्टिकोण से एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण चक्र है। ध्यानावस्था में इस विशुद्धि चक्र के तत्त्व बीज 'हं' का शुद्ध ध्वनि से पुनः—पुनः उच्चारण करने के फलस्वरूप जो आवृत्ति उत्पन्न होती है वह संपूर्ण शरीर में शक्ति रूप में प्रवाहमान होकर साधक को त्रिकालदर्शी बनाती है अर्थात् साधक को भूत, भविष्य एवं वर्तमान काल का ज्ञान हो जाता है। विशुद्धि चक्र के जागरण के फलस्वरूप साधक का मन आकाश के समान विशुद्ध एवं निर्मल तथा पवित्र विचारों से युक्त होकर आध्यात्मिक अनुभूतियों की ओर अग्रसर करता है। विशुद्धि चक्र की साधना के द्वारा साधक जहर जैसी हानिकारक वस्तु को भी शरीर से बाहर निकालकर अमृत द्वारा शरीर को पोषित कर स्वास्थ्यवर्धन कर लंबी आयु के योग्य बनता है। विशुद्धि चक्र के शुद्धिकरण से साधक ज्ञानी तथा विवेकशील बनता चला जाता है। विशुद्धि चक्र के जागरण से साधक की सोलह प्रकार की योग शक्तियों की साधना स्वतः ही संपन्न हो जाती है। इस चक्र के जागरण से साधक कर्मफल में अनासक्ति का भाव रखते हुए अपने दैनिक क्रियाकलापों को संचालित करता है।

6. आज्ञा चक्र

संस्कृत शब्द 'आज्ञा' से तात्पर्य— 'आदेश या नियंत्रण' एवं चक्र से तात्पर्य 'केन्द्र' से है, अतएव आज्ञा चक्र का सामान्य अर्थ 'नियंत्रण केन्द्र' है। इस प्रकार आज्ञाचक्र साधक के पूरे जीवन को नियंत्रित करने वाला केन्द्र कहलाता है।

ज्योतिष विज्ञान में इस आज्ञा चक्र को देवताओं के गुरु बृहस्पति का केन्द्र माना गया है। इसलिए इस चक्र को 'गुरु चक्र' भी कहते हैं। इस चक्र की साधना द्वारा साधक चेतना के सूक्ष्म एवं अप्रत्यक्ष विस्तार में पहुँचता है जिसके कारण इस चक्र का अन्य नाम 'अंतर्ज्ञान चक्षु' से भी जाना जाता है। यौगिक ग्रंथों में यह चक्र 'दिव्य चक्षु या ज्ञान चक्र' नाम से भी प्रसिद्ध है। इस चक्र को सुप्तावस्था में स्थित मनुष्य का 'तीसरा नेत्र' भी कहा जाता है। आज्ञा चक्र 'शिव नेत्र' भी कहलाता है, क्योंकि यह चक्र शिव के ध्यान का सार है। आज्ञा चक्र कुण्डलिनी शक्ति के ऊर्ध्वरोहण मार्ग का छटवां पड़ाव है।

आज्ञा चक्र का स्थान

मनुष्य के शरीर में आज्ञा चक्र को नासिका क्षेत्र के ऊपर दोनों भृकुटियों के मध्य एवं पीछे में स्थित माना गया है। आज्ञा चक्र की स्थिति मनुष्य शरीर के भ्रूमध्य में स्थित तीन प्रमुख नाड़ियों— इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा के संधि स्थान पर मानी गयी है। शरीर विज्ञान के आधार पर यह चक्र पीनियल ग्रंथि के स्थान पर स्थित माना गया है।

परंपरागत प्रतीक

आज्ञा चक्र में विज्ञानमय कोश की स्थिति का वर्णन किया गया है जो विशुद्धि चक्र के साथ मिलकर विज्ञानमय कोश का निर्माण कर अतीन्द्रिय प्रगति की शुरुआत करने में सहायक है। पारंपरिक रूप से आज्ञा चक्र को दो पंखुड़ियों वाला या द्विदलीय कमल कहा गया है। इस चक्र का रंग हल्का भूरा, पीला तथा स्लेटी रंग है। कुछ योगियों के अनुभवानुसार ध्यान की प्रगाढ़ अवस्था में इस चक्र को चंद्रमा के समान धवल बतलाया गया है।

आज्ञा चक्र की प्रत्येक दो पंखुड़ियों पर चमकीले सफेद रंग के अक्षरों से 'हं' तथा 'क्षं' बीज अक्षर लिखे गये हैं जिन्हें क्रमशः शिव और शक्ति के बीजमंत्र तथा इड़ा और पिंगला नाड़ी के प्रतीकात्मक रूप कहा जाता है।



आज्ञा चक्र (चित्र क्र.- 07)²⁸

आज्ञा चक्र के अंदर एक वृत्त के आकार की संरचना है जो शून्य का प्रतीक रूप है तथा इस वृत्ताकार संरचना के अंदर शक्ति की सृजनशीलता एवं अभिव्यक्ति होती है। यह एक त्रिकोणीय संरचना से निर्मित है। आज्ञा चक्र के नीचे बायीं ओर इड़ा नाड़ी, मध्य में सुषुम्ना नाड़ी एवं दायीं ओर पिंगला नाड़ी का संगम रूप में स्थित हैं। आज्ञा चक्र का यंत्र 'लिंगाकार' है। इस चक्र का प्रतीक एवं तत्त्वबीज 'ओंम्' है।

²⁸ यान यंत्र, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत. संस्करण 2009, पृष्ठ संख्या- 103.

इस चक्र का बीजमंत्र 'ओमकार' है। इस चक्र का तत्व 'मह' तत्व है, जो कि पंचमहाभूतों से परे एवं आध्यात्मिकता का द्योतक है।

आज्ञा चक्र से संबंधित तन्मात्रा, ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय तीनों ही एकमात्र 'मन' हैं। यह मन रूपी इन्द्रिय ही यहाँ सूक्ष्म माध्यमों से ज्ञान तथा संकेतों को प्राप्त करती है। आज्ञा चक्र से संबंधित 'तपः' लोक है, यह साधक के कर्मों का ह्रास तथा शुद्धि का द्योतक है। आज्ञा चक्र के अधिपति देवता 'शिव' हैं तथा 'हाकिनी' इस देवता की शक्ति हैं, जिनका स्वरूप छः मुख तथा चार भुजाओं वाला है।

संभावनाएँ

आज्ञा चक्र को योग साधना का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पड़ाव माना जाता है। 'ओमकार' ही इस चक्र की महत्ता है, जो कि परमात्मा का प्रणव मंत्र है। इस बीज मंत्र को तीनों शक्तियों— अकार, उकार तथा मकार का संगम कहा जाता है तथा ये तीनों शक्ति ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। ये ही ज्ञानशक्ति, कर्मशक्ति तथा इच्छाशक्ति हैं। आज्ञा चक्र पर ध्यान की प्रगाढ़ता के परिणामतः व्यक्तिगत चेतना विस्तारित होकर साधक के अहं में रूपांतरित हो जाती है। साधक स्वयं के अस्तित्व के ज्ञान से परे की अवस्था में पहुँचकर परमात्म चेतना के साथ एकाकार हो जाता है। ध्यानावस्था में इस आज्ञा चक्र के बीज मंत्र 'ओम्' का शुद्ध ध्वनि से पुनः—पुनः उच्चारण करने के फलस्वरूप स्थिर अवस्था में साधक का मन बिना प्रकाश का हो जाता है एवं चेतना सक्रिय हो जाती है और अहं का भाव नष्ट हो जाता है। आज्ञा चक्र में ध्यान लगाने के फलस्वरूप अनेकों सिद्धियाँ जैसे— त्रिकालदर्शिता, सर्वज्ञता, स्थिर प्रज्ञता, सर्वदर्शिता तथा परकाया प्रवेश आदि की प्राप्ति होती है। आज्ञा चक्र के जाग्रत होने से मनुष्य अपने छोटे शरीर अर्थात् ब्रह्म शरीर में प्रवेश कर सदैव के लिए परब्रह्म से एकाकार हो जाता है। योगियों के मतानुसार निरन्तर प्रयास, कठोर साधना, अटल विश्वास तथा स्व-अनुशासन की साधना से आज्ञा चक्र तक पहुँचा हुआ योगी पुनः अवनति को प्राप्त नहीं होता।

7. सहस्रार चक्र

‘सहस्रार’ शब्द का शाब्दिक अर्थ है— ‘एक हजार’। चूंकि सहस्रार चक्र रूपी कमल में पंखुड़ियों की संख्या हजार होती है, इसी कारण इसे ‘सहस्रार चक्र’ कहा जाता है। सहस्रार चक्र की महत्ता को स्पष्ट करते हुए इस चक्र में विद्यमान अनन्त अदृश्य शक्तियों की दृष्टि से अपरिमेय कहा गया है। योग की चरम सीमा ही सहस्रार चक्र है। सहस्रार चक्र और निर्विकल्प समाधि को एकरूप बताया गया है। घेरण्ड संहिता²⁹ के अनुसार सहस्रार चक्र को चक्र न कहकर इसे उच्च चेतना का निवास स्थान कहा गया है। तंत्र शास्त्र में ज्ञान के उच्चतम स्तर के रूप में सहस्रार चक्र को परिभाषित किया गया है।

सहस्रार चक्र का स्थान

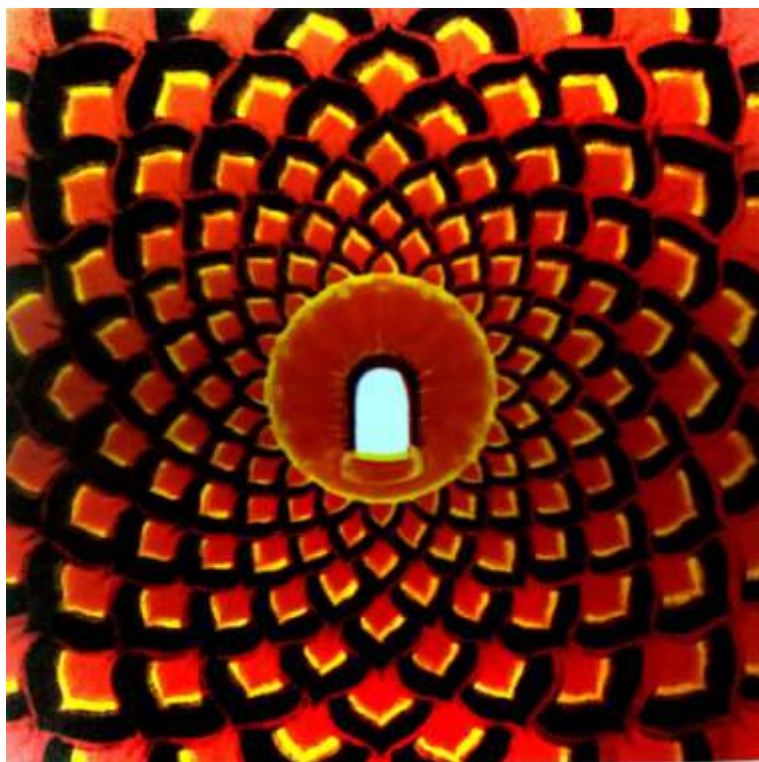
सहस्रार चक्र विकसित एवं उत्कृष्ट चेतना का आवास स्थान कहलाता है। घेरण्ड संहिता में सहस्रार चक्र को सिर के शीर्ष प्रदेश में स्थित बताया गया है।³⁷ शरीर विज्ञान के आधार पर सहस्रार चक्र को पीयूष ग्रंथि से संबंधित बताया गया है।

परंपरागत प्रतीक

सहस्रार चक्र में आनन्दमय कोश की स्थिति का वर्णन किया गया है। पारंपरिक रूप से सहस्रार चक्र को अनन्त पंखुड़ियों वाला दीप्त कमल कहा गया है। इस चक्र का रंग लाल या इसे अनेक रंगों से युक्त माना गया है। दीप्त कमल रूपी सहस्रार चक्र पर बीस बार संस्कृत वर्ण के बावन बीज अक्षर लिखे गये हैं। सहस्रार चक्र के बीच में शब्द चेतना के प्रतीक रूप में एक चमकदार ज्योर्तिलिंग जैसी संरचना है। जिसे आत्मा एवं परमात्मा, शिव-शक्ति, पदार्थ एवं ऊर्जा के साथ चेतना का योग स्थल माना गया है। सहस्रार चक्र अनुभवातीत एवं अति उत्तम होने के फलस्वरूप साकार, अविकारी तथा निराकार भी है।

²⁹ सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द (2012), घेरण्ड संहिता: कमेंट्री आन द योगा टीचिंग ऑफ महर्षि घेरण्ड, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या—392, 391.

सहस्रार



सहस्रार चक्र (चित्र क्र.— 08)³⁰

सहस्रार चक्र का स्वयं में पूर्ण होने की वजह से इस चक्र को दर्शाने हेतु किसी भी प्रकार के प्रतीक से तुलना करना असंभव है।

संभावनाएँ

सहस्रार चक्र को प्राण और चेतना के संयोग का केंद्र बिंदु कहा गया है। सहस्रार चक्र के जागरण के फलस्वरूप साधक के अहं का नाश हो जाता है और ऐसा साधक समाधि अर्थात् आत्मज्ञान की ओर अग्रसर होता है।

चक्रों के जागरण के फलस्वरूप कुण्डलिनी शक्ति द्वारा विभिन्न चक्रों का भेदन करते हुए सहस्रार चक्र में पहुँचने पर शिव व शक्ति का मिलन होता है। यह आनन्द की अवस्था कहलाती है, यही योग साधना का मुख्य उद्देश्य है। अन्त में योगी परम ज्ञान की प्राप्ति कर जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। कुण्डलिनी योग नामक

³⁰ Saraswati, Swami Satyanand. (2013) A Systematic Course in the Ancient Tantrik Techniques of Yoga and Kriya, Yoga Publication Trust, Munger, Bihar, India. Page No- 722.

ग्रंथ के अनुसार “इस स्थिति में पहुंचने पर द्वैत भाव समाप्त होकर दृष्टा तथा दृश्य दोनों एकाकार हो जाते हैं तथा एकमात्र चेतना का अस्तित्व बना रहता है और इसी अवस्था को प्रत्येक रहस्यात्मक तथा धार्मिक पद्धतियों में अपने-अपने ढंग से निर्वाण, समाधि, कैवल्य, आत्मज्ञान, ईश्वर के साथ मिलन, स्वर्ग इत्यादि कहा गया है।”³¹

अतः इस प्रकार प्रस्तुत शोधकार्य में सहस्रार का उल्लेख उपरोक्त सूची में अन्य षट्चक्रों के साथ सप्त चक्र के रूप में किया है, परन्तु वस्तुतः इसे चक्रों में नहीं गिना जाता है, यह सभी चक्रों से परे है। अतएव सहस्रार सहित सभी सात चक्रों को मनस्-जागरण के आधारभूत केन्द्र-बिन्दु कहा गया है। इन सप्त चक्रों का प्रयोग मनस्-जागरण के उद्देश्य से संचालित योग सहित विश्व की अन्य अनेकों प्रणालियों में किया जाता है। इन सातों चक्रों के अलावा “बिन्दु-विसर्ग या चक्र” के नाम से एक अन्य महत्वपूर्ण केन्द्र का वर्णन मिलता है। बिन्दु चक्र सहित यह समस्त सातों चक्र आधारभूत केन्द्र के रूप में क्रियायोग साधना में प्रयुक्त किये जाते हैं। मनस् विकास की अन्य प्रणालियों में इस शोधकार्य में वर्णित सामान्यतः विख्यात सात चक्रों के अतिरिक्त अन्य चक्रों जैसे— नाभि के ऊपर स्थित सूर्य और चन्द्र चक्रों का भी वर्णन मिलता है जो पूर्णतः स्वीकार्य हैं, परन्तु योग और तंत्र विज्ञान में इनका वर्णन एवं प्रयोग नहीं है।

उपरोक्त वर्णित चक्र वास्तविक व प्रतीकात्मक दोनों ही हैं। इनमें दो मुख्य बातें सन्निहित हैं— प्रथम: ये मानव के प्राणिक शरीर (प्राणमय कोश) में निहित सूक्ष्म शक्ति (प्राण) केन्द्रों का विकास करते हैं एवं द्वितीय: ये चक्र सजगता की अवस्थाओं के क्रमिक विकास का प्रतिनिधित्व करते हैं।

1. मानव के प्राणिक शरीर (प्राणमय कोश) में निहित सूक्ष्म शक्ति (प्राण) केन्द्रों के विकास का प्रतिनिधित्व— उपरोक्त वर्णित प्रत्येक चक्र प्राणशक्ति के विशिष्ट आवृत्ति-स्तरों तथा सूक्ष्मता से संबंधित होते हैं। प्रत्येक चक्र उस स्विच की तरह है जिसको ऑन करने पर मन के विलक्षण स्तर सक्रिय अथवा जाग्रत् हो जाते हैं।

³¹ सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द (2002), *कुण्डलिनी योग*, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— 195.

2. सजगता की अवस्थाओं के क्रमिक विकास का प्रतिनिधित्व— सहज प्रवृत्तियों से संबंधित मूलाधार चक्र अंतर्प्रज्ञा से संबंध रखने वाले आज्ञा चक्र तक का प्रतिनिधित्व करता है। ये चक्र मानव-चेतना के विभिन्न स्तरों के प्रतीक तथा आध्यात्मिक पथ के द्योतक हैं। उपरोक्त दोनों कथन एक ही तथ्य को अभिव्यक्त करने के दो तरीके हैं, क्योंकि इन चक्रों में से किसी एक पर प्राण के परिचालन और नियंत्रण द्वारा उससे संबंधित सजगता के स्तरों को प्राप्त किया जा सकता है। इसके विपरीत सजगता का एक विशिष्ट स्तर उससे संबंधित चक्र को सक्रिय बना देता है और उसमें प्राण-प्रवाह को प्रभावी करता है। अतः ये प्रत्यक्ष रूप से परस्पर संबद्ध हैं।

सजगता अंतर्मुखीय पक्ष इड़ा का प्रतीक है और प्राण-पक्ष पिंगला नाड़ी का प्रतीक है। ये दोनों नाड़ियाँ प्रमुख षट्चक्रों पर परस्पर मिलती हैं अर्थात् प्रत्येक चक्र का जागरण प्राण और चेतना दोनों से अपरिहार्य रूप से संबंधित है। इन चक्रों के जागरण से चेतना के परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त होता है। परिणामस्वरूप सूक्ष्म शक्तियों का जागरण होता है, जो व्यक्ति को उसके अस्तित्व की अधिक व्यापक और गहन पक्षों की अनुभूति कराती है। क्रियायोग का भी यही उद्देश्य है।

1.3 हठयोगिक ग्रंथों में चक्र की अवधारणा

प्रस्तुत शोधकार्य के इस चरण के अंतर्गत मुख्य हठयोगिक ग्रंथों के संदर्भ में सामान्यतः हठयोग में वर्णित सप्त चक्रों का वर्णन किया गया है। हठयोग में मुख्यतः सात चक्र प्रसिद्ध हैं— 1. मूलाधार चक्र, 2. स्वाधिष्ठान चक्र, 3. मणिपुर चक्र, 4. अनाहत चक्र, 5. विशुद्धि चक्र, 6. आज्ञा चक्र एवं 7. सहस्रार चक्र। संत-काव्य में योग का स्वरूप के चतुर्थ अध्याय: 'योग की व्याख्या एवं विभिन्न योग-पद्धतियाँ' में वर्णित लययोग के अनुसार भी चक्र मुख्यतः छः कहे जाते हैं। साथ ही इन छः चक्रों में आज्ञाचक्र के ऊपर भी आठ-चक्रों का वर्णन किया गया है— 1. त्रिकुट, 2. त्रिहट, 3. गोल्लाट, 4. शिखर, 5. वज्र, 6. ओंकार, 7. ऊर्ध्वनास, 8. भ्रुवोर्मुख।³² हठयोग के प्रमुख ग्रंथों के अनुसार चक्रों की अवधारणा—

³² सिंह. आर. (1977), *संत-काव्य में योग का स्वरूप*, अनुपम प्रकाशन, पटना, पृष्ठ संख्या 231-240.

1.3.1 सिद्धसिद्धान्तपद्धति में चक्र का स्वरूप

प्रमुख हठयोगिक ग्रंथ 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति'³³ के द्वितीय उपदेश में पिण्ड विचार या व्यष्टि शरीर विचार के अंतर्गत सर्वप्रथम शरीर अर्थात् पिण्ड में स्थित नौ चक्र संबंधी विचार क्रमपूर्वक समझाया गया है जिसके अनुसार— 'जो योगी शरीर में स्थित नौ चक्रों, तीन लक्ष्य, सोलह आधार, पाँच आकाश वाले सूक्ष्म शरीर को भलीभाँति नहीं जानता वह केवल 'योगी' नामधारक है, उस व्यक्ति को 'योगतत्त्ववेत्ता' नहीं कहा जा सकता है। अतः जो योगी सूक्ष्म शरीर के इन विलक्षणों को जानता है, वही योगी सिद्धि का पात्र हो सकता है।'³⁴ तत्पश्चात् द्वितीय उपदेश में पिण्ड पर विचार करते हुए यह कहा गया है— शरीरस्थ नवचक्र ध्यान—साधना की पृथक्—पृथक् अवस्था में उपयोगी होते हैं। सिद्धसिद्धान्तपद्धति में मानव शरीर स्थित कुल नौ चक्रों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। जिनका नामकरण शरीरस्थ स्थानों के आधार पर किया गया है—

क्र.	चक्र	स्थान	ध्यान
1.	ब्रह्मचक्र	मूलाधार	अग्नि
2.	स्वाधिष्ठान चक्र	लिंग के समीप	लिंग
3.	नाभिचक्र (मणिपुर चक्र)	नाभि	कुण्डलिनी शक्ति
4.	अनाहतचक्र (हृदय चक्र)	हृदय	ज्योति
5.	कण्ठ चक्र (विशुद्ध चक्र)	कण्ठ	सुषुम्णा
6.	तालुचक्र	तालू	शून्य
7.	भ्रूचक्र (आज्ञा चक्र)	भ्रूचक्र	दीपक की शिखा
8.	निर्वाणचक्र (ब्रह्मरन्ध्र)	ब्रह्मरन्ध्र	धुँए की शिखा
9.	आकाश चक्र	सहस्रार	उर्ध्वगति

³³ शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, (2014). महायोगिश्रीगोरक्षनाथविरचिता: सिद्धसिद्धान्तपद्धति, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, श्लोक संख्या— 2/31, 1-9.

³⁴ “नवचक्रं कलाधारं त्रिलक्ष्यं वयोमपंचकम्।
सम्यगेतन्न जानति स योगी नामधारकः।।” सिद्धसिद्धपद्धति 2/31.

प्रथम चक्र— 'ब्रह्मचक्र' का स्थान मूलाधार बताया गया है— 'ब्रह्मचक्र का प्रतीकात्मक वर्णन करते हुए इसे तीन फेरे लिए स्त्री के योनिमण्डल के समान कामरूपपीठ बताया गया है तथा यह निर्देश दिया गया है कि इस स्थान पर साधक को अग्नि का ध्यान करना चाहिए, जिससे साधक की सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती है।'³⁵

द्वितीय चक्र— 'स्वाधिष्ठान चक्र' है। 'स्वाधिष्ठानचक्र का प्रतीकात्मक वर्णन करते हुए इस चक्र के बीच में मूँगे के अंकुर के समान पीछे की ओर मुंह किये हुए लिंग है, साधक को चाहिए कि वह उसका ध्यान करे। इसी स्थान पर उड्डियानपीठ है जो साधक इसका ध्यान करता है, उसकी ओर संसार के प्राणी आकर्षित होते हैं।'³⁶

तृतीय चक्र— 'नाभिचक्र' या इसे मणिपुरक भी कहा गया है। 'प्रतीकात्मक रूप से यह नाड़ियों से पाँच बार कुण्डली मारकर सर्प के समान लपेट लिए हुए है। साधक को इसके मध्य में प्रकाशित होने वाली करोड़ों सूर्य के समान कान्ति युक्त सब प्रकार की विभूतियों को देने वाली कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान करना चाहिए, जिससे साधक को सभी प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है।'³⁷

चतुर्थ चक्र— 'अनाहतचक्र' का निवास स्थान हृदय है, इसलिए इसे हृदयचक्र कहते हैं। प्रतीकात्मक रूप से आठ पंखुड़ियों वाले कमल के समान इस चक्र का मुख नीचे की ओर है। साधक को इसके बीच में स्थित कर्णिका में लिंग के आकार की ज्योति पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। इस लिंग के आकार की ज्योति को हंसकलाशक्ति कहते हैं। इस पर ध्यान करने से साधक की सभी इन्द्रियाँ वश में हो जाती है, जिसे योग की शब्दवाली में प्रत्याहार कहते हैं।'³⁸

पंचम चक्र— 'कण्ठचक्र' या विशुद्धचक्र कहलाता है। 'प्रतीकात्मक रूप से इसका विस्तार चार अंगुल है। इस चक्र के बायीं और चन्द्रनाड़ी इड़ा और दाहिनी ओर

35 ".....आधारे ब्रह्मचक्रं त्रिधावर्त भगमण्डलाकारम्। तत्र मूलकन्दः।
तत्र शक्तिं पावकाकारं ध्यायेत्। तत्रैव कामरूपं पीठं सर्वकामप्रदं भवति।।" सिद्धसिद्धपद्धति 2/1

36 "द्वितीयं स्वाधिष्ठानचक्रम्। तन्मध्ये पश्चिमाभिमुखलिङ्गं। प्रवालाङ्कुरसदृशं ध्यायेत्।
तत्रैवोड्डियानपीठं जगदाकर्षणं भवति।।" सिद्धसिद्धपद्धति 2/2.

37 "तृतीयं नाभिचक्रम्। पञ्चावर्तं सर्पवत् कुण्डलाकारम्।
तन्मध्ये कुण्डलिनीशक्तिं बालार्ककोटिसदृशीं ध्यायेत्।
सा मध्यमा शक्तिः सर्वसिद्धिदा भवति।।" सिद्धसिद्धपद्धति 2/3.

38 "चतुर्थम् अनाहतचक्रं हृदयाधारम् अष्टदलकमलम् अधोमुखम्।
तन्मध्ये कर्णिकायां लिंगाकारं ज्योतिरूपां ध्यायेत्। सैव हंसकला।
सर्वेन्द्रियाणि वश्यानि भवन्ति।।" सिद्धसिद्धपद्धति 2/4.

सूर्यनाड़ी पिंगला है। उन दोनों के बीच में सफेद वर्ण युक्त नाडी सुषुम्ना है। इसे अनाहतकला कहते हैं। साधक को चाहिए कि उस अनाहतकला रूप सुषुम्ना का ध्यान करे जिसके फलस्वरूप अनाहतसिद्धि अर्थात् साधक दृढ़ संकल्पवान को प्राप्त करता है।³⁹

षष्ठ चक्र— 'तालुचक्र' 'प्रतीकात्मक रूप से यह स्थान हजारों दल स्थित चन्द्रमण्डल सदृश वर्णित है। इस चक्र स्थान से अमृत की धारा प्रवाहित होती है। खेचरी मुद्रा द्वारा इस अमृत के पान का ही प्रयत्न किया जाता है। तालु के मूल में लटकता हुआ पतला मांस पिण्ड है उसे संस्कृत में घंटिका एवं हिन्दी में घंटी कहते हैं। उसके मूल में एक बिल है, जिसे राजदन्त कहते हैं। यह छिद्र लिंगमुख से ब्रह्मरन्ध्र तक जाने वाली शंखिनीनाड़ी का विवर है। इसे दशम द्वार कहा जाता है, यहाँ शून्य का अर्थात् आलम्बन के बिना ध्यान करना चाहिए इसके फलस्वरूप चित्त का 'लय' समाधि को प्राप्त करता है।⁴⁰

सप्तम चक्र— 'भ्रूचक्र' कहलाता है। इसे 'आज्ञाचक्र' एवं भौहों के बीच में स्थित होने के कारण 'मध्यचक्र' नाम से भी जाना जाता है। 'प्रतीकात्मक रूप से यह चक्र दो दल वाले कमल के समान एक अंगुठे के आकार का है। ज्ञाननेत्र यहाँ पर है, यहाँ दीपक की शिखा का ध्यान करना चाहिए। इस केन्द्र में ध्यान करने से वाक् सिद्धि मिल जाती है, इसकी सिद्धि से व्यक्ति को वरदान और शाप देने में सामर्थ्य प्राप्त हो जाता है।⁴¹

अष्टम चक्र— 'निर्वाण चक्र' इसे ही ब्रह्मरन्ध्र के नाम से जाना जाता है। 'यह अत्यन्त सूक्ष्मरन्ध्र है सूई की नोक ही इसमें प्रवेश कर सकती है, ध्रुव की शिखा के रूप में

39 "पञ्चमं कण्ठचक्रं चतुरङ्गुलम्। तत्र वामे इडा चन्द्रनाडी दक्षिणे पिंगला सूर्यनाडी। तन्मध्ये सुषुम्नां ध्यायेत्। सैव अनाहतकला अनाहतसिद्धिर्भवति॥" सिद्धसिद्धपद्धति 2/5.

40 "षष्ठं तालुचक्रम्। तत्र अमृधाराप्रवाहः। घण्टिकालिंगमूलरन्ध्रं राजदन्तं शंखिनीविवरम्, दशमद्वारे। तत्र शून्यं ध्यायेत्। चित्तलयो भवति॥" सिद्धसिद्धपद्धति 2/6.

41 "सप्तमं भ्रूचक्रं मध्यमम्। अङ्गुष्ठमात्रं ज्ञाननेत्रम्। दीपशिखाकारं ध्यायेत्। वाचां सिद्धिर्भवति॥" सिद्धसिद्धपद्धति 2/7

इसका ध्यान करना चाहिए। जालन्धरपीठ यहाँ पर है इसका ध्यान करके साधक को मोक्ष की प्राप्ति होती है।⁴²

नवम् चक्र— ‘आकाशचक्र’ ‘प्रतीकात्मक रूप से इस चक्र का स्थान सहस्रार के ऊपर बताया गया है। यह सोलह पंखड़ियों वाले कमल के रूपवाला है जिसका मुख ऊपर की ओर है। इस के बीच में कर्णिका में त्रिकूट के आकार की ऊर्ध्वशक्ति है जो पूर्णतः आकार रहित है। इसे पूर्णगिरीपीठ कहा गया है। इस चक्र में ध्यान करने से साधक की सभी इच्छाओं की पूर्ति हो जाती है।⁴³

इस प्रकार सिद्धसिद्धान्तपद्धति में नौ चक्रों से संबंधित विचारों को व्यवस्थित रूप से समझाया गया है।

1.3.2 घेरण्ड संहिता में चक्र का स्वरूप

घेरण्ड संहिता में ‘योग का अतीन्द्रिय शरीर विज्ञान’ के अंतर्गत सप्त चक्रों का वर्णन मिलता है।⁴⁴ इन सप्त चक्रों को यौगिक अभ्यास के समय एकाग्रता के केन्द्र बिंदु के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। इन चक्रों की स्थिति, नाम, स्वरूप, स्थान, तत्त्व, बीज मंत्र, मुख्य वायु, गौण वायु, कोश, लोक कमल दल व रंग, वाहन एवं प्रतीक इत्यादि के साथ प्रत्येक चक्र की विस्तृत व्याख्या की गयी है।

⁴² “अष्टमं ब्रह्मरन्ध्रं निर्वाणचक्रम्, सूचिकाग्रभेद्यम्।

धूमशिखाकारं ध्यायेत्। तत्र जालन्धर पीठम्। मोक्षप्रदं भवति।।” सिद्धसिद्धपद्धति 2/8

⁴³ “नवमम् आकाशचक्रम्, षोडशदलकमलम्, ऊर्ध्वमुखम्।

तन्मध्ये कर्णिकायां त्रिकूटाकारां तदूर्ध्वशक्तिं तां परमशून्यां ध्यायेत्।

तत्रैव पूर्णगिरिपीठम्। सर्वेच्छासिद्धिर्भवति।।” सिद्धसिद्धपद्धति 2/9

⁴⁴ सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द (2012), घेरण्ड संहिता: कमेंटी आन द योगा टीचिंग ऑफ महर्षि घेरण्ड, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या—385—391.

घेरण्ड संहिता के अनुसार सप्त चक्र का वर्णन निम्नानुसार है—

सप्त चक्र	मूलाधारचक्र	स्वाधिष्ठानचक्र	मणिपुरचक्र	अनाहतचक्र	विशुद्धिचक्र	आज्ञाचक्र	सहस्रारचक्र
शाब्दिक अर्थ	मूल+आधार अर्थात् मूल केंद्र या कुण्डलिनी का निवास स्थान	स्व+अधिष्ठानार्थात् अपना निवास स्थान	मणियों का नगर	जो आहत न हुआ हो	शुद्धि का केंद्र	तीसरा नेत्र, त्रिवेणी, शिव का नेत्र, ज्ञान चक्र, गुरु चक्र	हजार दल उच्च चेतना का निवास स्थान
स्थान	पुरुष में मूलाधार पिण्ड, स्त्री में गर्भाशय ग्रीवा	मेरुदण्ड में, मूलाधार के दो अंगुल ऊपर, जननेन्द्रिय के पीछे	मेरुदण्ड में, नाभि के ठीक पीछे	मेरुदण्ड में, वक्ष के केंद्र के पीछे	गर्दन के पिछे भाग में, कण्ठ कूप के पीछे	मेरुदण्ड के शीर्ष पर मध्य मस्तिष्क में, भ्रूमध्य के पीछे	सिर के शीर्ष भाग में स्थित
प्रतीक	चार दलीय कमल	षट्दल वाला कमल	दस दलीय कमल	बारह दलीय कमल	सेलह दलीय कमल	दो दलीय कमल	हजार दलीय कमल
रंग	गहरा लाल	सिंदूरी	पीला	पीला	बैंगनी	चौदी के समान	—
तत्त्व	पृथ्वी	—	अग्नि	वायु	आकाश	मानस	—
यन्त्र	पीला वर्ग	अर्द्धचन्द्र	गहरा लाल त्रिभुज		केंद्र में सफेद वृत्त		केंद्र में एक दलीय ज्योतिर्ग
बीज मंत्र	लं	वं	रं	यं	हं	ऊँ	—
वाहन	सात सँड़ वाला हाथी	मार	भेड़	काला हिरण	सफेद हाथी		
ध्यान हेतु प्रतीकात्मक वर्णन	वर्ग केंद्र में अधोमुखी लाल रंग त्रिभुज के अंदर धूम वर्णयुक्त स्वयंभू लिंग के चारों ओर साढ़े तीन लपेटे खायी हुई कुण्डलिनी सुप्त	इस चक्र पर एकाग्रता के अभ्यास के लिए एक गहरे विशाल समुद्र में उठती हुई लहरों पर मानसिक रूप से एकाग्र होने का अभ्यास करना चाहिए।	इस चक्र पर एकाग्रता के अभ्यास के लिए छकते हुए सूर्य या अग्नि गोलक का ध्यान करना चाहिए।	इस चक्र पर एकाग्रता के अभ्यास के लिए नीले कमल या दो आपस में जुड़े हुए त्रिकोणों से निर्मित षट्कोण के केंद्र में स्थिर ज्योति का मानसिक ध्यान करें।	इस चक्र पर एकाग्रता के अभ्यास के लिए कण्ठ प्रदेश में गिरती हुई एक बड़ी अमृत बूँद का ध्यान करें।	इस चक्र पर एकाग्रता के अभ्यास के लिए भ्रूमध्य के केंद्र पर एक छोटी सी ज्योति का ध्यान करते हुए आन्तरिक गुरु पर मन को केंद्रित करना चाहिए।	इस चक्र पर एकाग्रता के अभ्यास के लिए कमल के केंद्र में स्थित दीप्तमान ज्योतिर्ग का ध्यान करना चाहिए।
गुण	भौतिक सुस्था, आन्तरिक स्थिरता, संतुलन,	इन्द्रिय सुख की अभिलाषा, पाशविक वृत्तियों में अनिच्छा	क्रियाशीलता, आत्म निश्चय, प्रभुत्व, महत्वाकांक्षा, शासन इच्छाशक्ति, क्षमता	निःस्वार्थ प्रेम, सहनशीलता, भाईचारा,	विवेकशील,	गुरु मार्गदर्शन, मन स्थिर व शक्तिशाली, अतिन्द्रिय दृष्टि—श्रवण, विकसित बुद्धि	शुद्ध चेतना, आत्मा और परमात्मा का योग, शिव व शक्ति का मिलन, पदार्थ व ऊर्जा के साथ चेतना का एकीकरण

घेरण्ड संहिता के अनुसार साधक द्वारा यौगिक अभ्यासों को करते समय इन सात प्रकार के चक्रों पर एकाग्र होने का प्रयास करने के फलस्वरूप चक्रों में सक्रियता आती है तथा प्राण प्रवाहित होता है, परिणामतः दिमाग के सोये हुए क्षेत्र भी जागृत होते हैं, जिससे व्यक्ति को उसकी पहुँच से ऊपर उच्च चेतना के स्तरों की अनुभूति होती है।

1.3.3 हठरत्नावली में चक्र का स्वरूप

‘हठरत्नावली— अ ट्रीटाइज ऑन हठयोगा ऑफ श्रीनिवासयोगी’⁴⁵, नामक हठयौगिक ग्रंथ के प्रथम अध्याय में शुद्धि क्रियाओं का वर्णन है। इसके अनुसार अष्टकर्म का उद्देश्य मात्र कफ या श्लेष्मा की अधिकता को दूर करना ही नहीं है, बल्कि छः चक्रों को शुद्ध करने के लिए और शरीर को स्वस्थ बनाए रखने के लिए है जो मुक्ति के मार्ग पर एक साधन है।

साथ ही हठरत्नावली में यह भी वर्णन किया गया है कि विभिन्न अष्टकर्म के द्वारा विशिष्ट चक्रों को कैसे शुद्ध किया जाता है। अतः इस हेतु हठरत्नावली नामक ग्रंथ के प्रथम अध्याय में छः चक्रों तथा प्रत्येक चक्र के शोधन हेतु उपयुक्त अष्टकर्म विधियों का विस्तृत वर्णन किया गया है। छः चक्रों की योजना प्रत्येक व्यक्ति को अवश्य जानना चाहिए। निरंजन—पूर्ण अवस्था इन चक्रों की सीमा से परे है।

⁴⁵ घरोटे, एम. एल., देवनाथ, पी., और झा, वी. के., (2014), *हठरत्नावली अ ट्रीटाइज ऑन हठयोगा ऑफ श्रीनिवासयोगी*, द लोनावला योग इन्स्टीट्यूट, लोनावला, पुणे, महाराष्ट्र, श्लोक संख्या— 1/62–65, पृष्ठ संख्या— 13–29.

“स्यादाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतम्। विशुद्धं कण्ठचक्रस्थमाज्ञाचक्रं भ्रुवोर्मुखे॥

चक्रभेदमिति ज्ञात्वा चक्रातीतं निरञ्जनम्॥” हठरत्नावली 1/65

“आधारशोधनं चक्रया लिंगं वज्रोक्तिकर्मणा॥” हठरत्नावली 1/62

“मणिपूरं नाभिगतं नौल्याख्येन तु कर्मणा॥” हठरत्नावली 1/63

“हृदयं कण्ठचक्रं च धौत्याख्येन तु कर्मणा॥” हठरत्नावली 1/63

“शोधने कार्यमाज्ञायां नेत्राटककर्मणा॥” हठरत्नावली 1/64

क्र	चक्र का नाम	शरीरस्थ स्थान	शुद्धिकरण हेतु संबंधित अष्टकर्म
1.	आधार चक्र	शरीर के अधर भाग में स्थित	काकारी कर्म
2.	स्वाधिष्ठान चक्र	प्रजनन अंग	वज्रोलि कर्म ⁴³
3.	मणिपुर चक्र	नाभि	नौलि कर्म
4.	अनाहत चक्र	हृदय	धौति कर्म
5.	विशुद्धि चक्र	कण्ठ	धौति कर्म ⁴⁵
6.	आज्ञा चक्र	भौहों का केंद्र	नेति एवं त्राटक कर्म

1.3.4 शिव संहिता में चक्र का स्वरूप

‘शिवसंहिता’ नामक हठयौगिक ग्रंथ के पंचम पटल में पद्म या कमल के रूप में कुल सात चक्रों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। साथ ही इन चक्रों पर ध्यान करने के फलस्वरूप प्राप्त फलों की विस्तृत विवेचना भी की गयी है। साथ ही इस ग्रंथ में आज्ञापद्म के साथ प्रमुख तीन नाड़ियों का संबंध एवं महात्म्य भी बताया गया है। इसी प्रकार सहस्रारपद्म के साथ चित्रा नाड़ी एवं ब्रह्मरन्ध्र का स्थान तथा चित्रा नाड़ी पर ध्यान करने से प्राप्त होने वाले फलों की भी जानकारी दी गयी है। अतः शिव संहिता में वर्णित सप्त चक्र—

1. आधारपद्म
2. स्वाधिष्ठानपद्म
3. मणिपुरकपद्म
4. अनाहतपद्म
5. विशुद्धपद्म
6. आज्ञापद्म
7. सहस्रारपद्म

1. आधारपद्म (मूलाधार चक्र)

प्रतीकात्मक वर्णन— ‘योनि में स्थित चार दलों से युक्त आधार कमल को ही मूलाधार चक्र कहा जाता है, इन प्रत्येक दलों पर ‘व, श, ष, स’ वर्ण अंकित है, यह सोने के समान चमकीला चक्र ‘स्वयम्भूलिंग’ नाम से भी जाना जाता है, इस चक्र की अधिष्ठातृ

देवी 'डाकिनी' तथा 'द्विरण्ड' नामक सिद्ध है, तथ्यात्मक रूप से इस चक्र के मध्य में योनिस्थान पर लगातार प्रकाशमान कुण्डलिनी शक्ति विराजमान है।⁴⁶

प्राप्त सिद्धियाँ— 'मूलाधार चक्र पर ध्यान की गहनता के फलस्वरूप दार्दुरी सिद्धि (आकाश में प्रस्थान करना), कान्तियुक्त शरीर, तीव्र जठराग्नि, आरोग्यता, प्रवीणता, सर्व-ज्ञानी, त्रिकालज्ञ, अश्रवित शास्त्रों के रहस्य का ज्ञान, सरस्वती कृपा, पापों से मुक्ति, मनोकामना की पूर्ति एवं मोक्षप्रदायक परमात्मा के साक्षात् दर्शन इत्यादि सिद्धियों की प्राप्ति होती हैं।'⁴⁷

2. स्वाधिष्ठानपदम् (स्वाधिष्ठान चक्र)

प्रतीकात्मक वर्णन— लिंगमूल स्थित छः दलों से युक्त रक्तवर्ण रूपी स्वाधिष्ठान कमल को ही स्वाधिष्ठान चक्र कहा जाता है, यह दूसरा कमल है, इन प्रत्येक दलों पर 'ब, भ, म्, य, र, ल्' चमकते हुए वर्ण अंकित हैं, इस चक्र की अधिष्ठातृ देवी 'राकिणी' तथा 'बाल' नामक सिद्ध है।⁴⁸

प्राप्त सिद्धियाँ— स्वाधिष्ठान चक्र पर ध्यान की गहनता के फलस्वरूप साधक के प्रति कामवासना से मोहित सुन्दर स्त्रियों का आकर्षण, अश्रवित शास्त्रों के रहस्य का ज्ञान, रोगमुक्त, निर्भयता, मृत्यु का नाश, उत्कृष्ट सिद्धियों की प्राप्ति, सुषुम्णा नाड़ी में वायु की गति का प्रवाहित होना, शरीरस्थ रसों में वृद्धि, इत्यादि सिद्धियों की प्राप्ति होती हैं।⁴⁹

46 "आधारदममेतद्धि योनिर्यस्यास्ति कन्दतः।
परिस्फुरद् वादिसान्तं चतुर्वर्णं चतुर्दलम्।।" शिवसंहिता 5/87.
"कुलाभिधं सुवर्णाभं स्वयभूलिंगं संज्ञितम्।
द्विरण्डो यत्र सिद्धोऽस्ति डाकिनी यत्र देवता।।" शिवसंहिता 5/88.
"तत्पदमध्यगा योनिस्तत्र कुण्डलिनी स्थिता।
तस्या ऊर्ध्वे स्फुरत् तेजः कामबीजं भ्रमन् मतम्।।" शिवसंहिता 5/89.

47 "यः करोति सदाध्यानं मूलाधारे विचक्षणः।
तस्य स्याद् दार्दुरसिद्धिर्भूमित्याग क्रमेण वै।।" शिवसंहिता 5/90.
"वपुषः कान्तिरुत्कृष्टा जठराग्नि विवर्धनम्।
आरोग्यञ्च पटुत्वञ्च सर्वज्ञत्वञ्च जायते।।" शिवसंहिता 5/91.
"भूतं भव्यं भविष्यञ्च वेत्ति सर्वं सकारणम्।
अश्रुतान्यपि शास्त्राणि सरहस्यं भवेद् ध्रुवम्।।" शिवसंहिता 5/92.

48 "द्वितीयञ्च सरोजञ्च लिंगमूले व्यवस्थितम्।
बादिलान्तं च षड्वर्णं परिभास्वर षड्दलम्।।" शिवसंहिता 5/102.
"स्वाधिष्ठानाभिधं तनु पंकजं शोणरूपकम्।
बालाख्यो यत्र सिद्धोऽस्ति देवी यत्रास्ति राकिणी।।" शिवसंहिता 5/103.

49 "यो ध्यायति सदा नित्यं स्वाधिष्ठानारविन्दकम्।
तस्य कामाङ्गनाः सर्वा भजन्ते काममोहिताः।।" शिवसंहिता 5/104.
"विविधं चाश्रुतं शास्त्रं निःशङ्को विविदे ध्रुवम्।

3. मणिपूरकपदम (मणिपुर चक्र)

प्रतीकात्मक वर्णन— नाभिक्षेत्र में स्थित दस दलों से युक्त मणिपुरक कमल को ही मणिपुर चक्र कहा जाता है। जो तीसरा चक्र है। इन प्रत्येक दलों पर क्रमशः 'ङ, ढ, ण, त्, थ्, द्, ध्, न्, प्, फ्' स्वर्ण वर्ण अंकित है। इस चक्र की अधिष्ठातृ देवी 'लाकिनी' तथा सब का मंगल करने वाला 'रुद्र नामक सिद्ध' है।⁵⁰

प्राप्त सिद्धियाँ— मणिपुर चक्र पर ध्यान की गहनता के फलस्वरूप साधक को सदा सुख प्रदान करने वाली पाताल सिद्धि, मनोरथ सिद्धि, रोगों एवं दुःखों से छुटकारा, मृत्यु का टलना, परकाया प्रवेश, स्वर्ण आदि धातुओं के निर्माण की योग्यता, सिद्ध दर्शन लाभ, दिव्य आकर्षक औषधियों तथा खजाने का बोध इत्यादि सिद्धियों की प्राप्ति होती है।⁵¹

4. अनाहतपदम (अनाहत चक्र)

प्रतीकात्मक वर्णन— प्रसन्नता के मूल स्थान हृदय में बाहर दलों से युक्त गहरे रक्तवर्ण रूपी आनहत कमल को ही आनहत चक्र कहा जाता है। यह चौथा कमल है। इन प्रत्येक दलों पर 'क्, ख्, ग्, घ्, ङ्, च्, छ्, ज्, झ्, ञ्, ट्, ठ्' वर्ण अंकित है। इस चक्र में बाणलिंग नामक परम उत्कृष्ट तेज है। इस चक्र की अधिष्ठातृ देवी 'काकिनी' तथा 'पिनाकी' नामक सिद्ध है।⁵²

सर्वरोग विनिर्मुक्तो लोके ।। "शिवसंहिता 5/105

"मरणं खाद्यते तेन स केनापि न खाद्यते ।

तस्य स्यात् परमा सिद्धि रणिमादिगुणप्रदा ।।" शिव संहिता 5/106.

"वायुः सञ्चरते देहे रसवृद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।

आकाशपंक जगलत्पीयूषमपि वर्द्धते ।।" शिव संहिता 5/107.

50 "तृतीयं पंकजं नाभौ मणिपुरकसंज्ञकम् ।

दशारण्डादिफान्तरैः स्वर्णवर्णसुशोभितम् ।।" शिवसंहिता 5/108.

"रुद्राख्यो यत्र सिद्धोऽस्ति सर्वमंगलदायकः ।

तत्रस्था लाकिनीनाम्नी देवी परमधार्मिका ।।" शिवसंहिता 5/109.

51 "तस्मिन् ध्यानं सदा योगी करोति मणिपूरके ।

तस्य पातालसिद्धिः स्यात् निरन्तरसुख्यरति निर्भयः ।।" शिव संहिता 5/110.

"ईप्सितञ्च भवेत्लोकं दुःखरोगविनाशनम् ।

कालस्य वञ्चनञ्चापि परदेहप्रवेशनम् ।।" शिवसंहिता 5/111.

"जाम्बूनदादिकरणं सिद्धानां दर्शनं भवेत् ।

औषधी दर्शनञ्चापि निधीनां दर्शनं भवेत् ।।" शिवसंहिता 5/112.

52 "हृदयेऽनाहतं नाम चतुर्थं पंकजं भवेत् ।

कादिठान्तार्णसंस्थानं द्वादशार समन्वितम् ।।" शिवसंहिता 5/113.

"अतिशोणं वायुबीजं प्रसाद स्थानमीरितम् ।

पदमस्थं तत्परं तेजो बाणलिंगं प्रकीर्तितम् ।।" शिवसंहिता 5/114.

प्राप्त सिद्धियाँ— आनहत चक्र पर ध्यान की गहनता के फलस्वरूप निःसंदेह साधक पृथ्वीलोक तथा परलोक गमन, काम वासना युक्त स्त्री का साधक के प्रति मोहित होना, अपूर्व त्रिकालज्ञ, दूरश्रवण, दूरदृष्टि, इच्छावान नभचारी जीवों से विजय सामर्थ्य, सिद्ध एवं योगियों के दर्शन, खेचरी और भूचरी मुद्रा सिद्धि इत्यादि सिद्धियों को प्राप्त करता है।⁵³

5. विशुद्धपद्म (विशुद्धि चक्र)

प्रतीकात्मक वर्णन— कण्ठ स्थान में उपस्थित सोलह दलों से युक्त स्वर्ण जैसे कान्तिमय विशुद्ध कमल को ही विशुद्ध चक्र कहा जाता है। इन प्रत्येक दलों पर 'अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः' षोडश स्वर वर्ण अंकित है। यह पाँचवा कमल है। इस चक्र में देवता स्थित है। इस चक्र की अधिष्ठाता देवी 'शाकिनी' तथा 'छागलाण्ड' नामक सिद्ध है।⁵⁴

प्राप्त सिद्धियाँ— विशुद्धि चक्र पर ध्यान की गहनता के फलस्वरूप निःसंदेह साधक योगी हो जाता है, चारों वेदों का रहस्य ज्ञाता, क्रोधाग्नि से तीनों लोकों के सभी प्राणियों को भयभीत करने की क्षमता, अन्तर्मन में रमण करना, वज्र जैसा शरीर इत्यादि सिद्धियों को प्राप्त करता है।⁵⁵

53 "यस्य स्मरणमात्रेण दृष्टादृष्टफलं लभेत्।
सिद्धः पिनाकी यत्रास्ते काकिनी यत्र देवता।।" शिवसंहिता 5/115.
"एतस्मिन् सततं ध्यानं हृत्पाथोजे करोति यः।
क्षुभ्यन्ते तस्य कान्त्या वै कामार्ता दिव्ययोषितः।।" शिवसंहिता 5/116.
"ज्ञानञ्चाप्रतिमं तस्य त्रिकालविषयं भवेत्।
दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिः स्वेच्छया खगतां ब्रजेत्।।" शिवसंहिता 5/117.
"सिद्धानां दर्शनं चापि योगिनी दर्शनं तथा।
भवेत्खेचरसिद्धिश्च खेचराणां जये क्षमः।।" शिवसंहिता 5/118.
"यो ध्यायति परं नित्यं बाणलिंगं द्वितीयकम्।
खेचरी भूचरी सिद्धिर्भवेत्तस्य न संशयः।।" शिवसंहिता 5/119.
54 "कण्ठस्थानस्थितं पद्मं विशुद्धं नाम पञ्चमम्।
सुहेमाभं सुरोपेतं षोडशस्वर शोभितम्।।" शिवसंहिता 5/121.
"छागलाण्डोऽस्ति सिद्धोऽत्र शाकिनी चाधिदेवता।
ध्यानं करोति यो नित्यं स योगीश्वरपण्डितः।।" शिवसंहिता 5/122.
"किन्तेषां योगिनां तत्र विशुद्धाख्यो सरोरुहे।
चतुर्वेदा विभासन्ते सरहस्या निधेरिव।।" शिवसंहिता 5/123.
55 "इहस्थाने स्थितो योगी यदा क्रोधवशो भवेत्।
तदा समस्तं त्रैलोक्यं कम्पते नात्र संशयः।।" शिवसंहिता 5/124.

6. आज्ञापदम (आज्ञा चक्र)

प्रतीकात्मक वर्णन— भ्रूमध्य में उपस्थित दो दलों से युक्त श्वेत रंग के आज्ञा कमल को ही आज्ञा चक्र कहा जाता है। इन प्रत्येक दलों पर 'ह एवं क्ष' वर्ण अंकित है। यह छट्वाँ कमल है। इस चक्र की अधिष्ठातृ देवी 'हाकिनी' तथा 'महाकाल नामक सिद्ध' है। इस चक्र में शरद् काल के चाँद की उज्ज्वल आभा की भाँति अक्षर बीज उपस्थित है।⁵⁶

प्राप्त सिद्धियाँ— आज्ञा चक्र पर ध्यान की गहनता के फलस्वरूप योगी को निःसन्देह परमसिद्धि की प्राप्ति होती है। योगेश्वर की भाँति हो जाना, इस चक्र पर मन के आधे क्षण भर स्थिर होने पर सभी पापों का नष्ट होना, उपरोक्त पाँचों चक्रों की सिद्धियों का प्राप्त होना, तेजस्वी, आनन्दमय अवस्था, राजयोग का अधिकारी होना इत्यादि सिद्धियों को प्राप्त करता है।⁵⁷

7. सहस्रारपदम (सहस्रार चक्र)

प्रतीकात्मक वर्णन— आज्ञाचक्र एवं तालु के मूल के ऊपर हजार दलों वाला सहस्रार कमल विद्यमान है। इस स्थान पर सुषुम्ना नाड़ी अधोमुखी अवस्था में स्थित है। इस चक्र के कन्द में पश्चिममुखी योनि है जिसके केंद्र में सुषुम्ना नाड़ी का अप्रत्यक्ष मूल अवस्थित है जिसे ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं तथा इसी स्थान पर सोयी हुई कुण्डलिनी शक्ति रहती है।⁵⁸

⁵⁶ "आज्ञापदमं भ्रुवोर्मध्ये हंक्षोपेतं द्विपत्रकम्।
शुक्लामं तन्महाकालः सिद्धो देव्यत्र हाकिनी॥" शिवसंहिता 5/127.
"शरच्चन्द्रनिभं तत्राक्षरबीजं विजृम्भितम्।

पुमान् परमहंसोऽयं यज्ज्ञात्वा नावसीदति॥" शिवसंहिता 5/129.

⁵⁷ "एतदेव परन्तेजः सर्वतन्त्रेषु मन्त्रितम्।

चिन्तयित्वा परां सिद्धिं लभते नाऽत्र संशयः॥" शिवसंहिता 5/130.

"तुरीयं त्रितयं लिंगं तदाहं मुक्तिदायकः।

ध्यानमात्रेण योगीन्द्रो मत्समो भवति ध्रुवम्॥" शिवसंहिता 5/131.

"अस्मिन् स्थाने मनो यस्य क्षणार्थं वर्ततेऽचलम्।

तस्य सर्वाणि पापानि संक्षयं यान्ति तत्क्षणात्॥" 5/149.

"यानि यानि हि प्रोक्तानि पंचपदमे फलानि वै।

तानि सर्वाणि सुतरामेत ज्ञानात् भवन्ति हि॥" शिवसंहिता 5/150.

"यः करोति सदाभ्यासमाज्ञापदमे विचक्षणः।

वासनाया महाबन्धं तिरस्कृत्य प्रमोदते॥" शिवसंहिता 5/151.

"राजयोगाधिकारी स्यादेतच्चिन्तनतो ध्रुवम्।

योगी बन्धाद्विनिर्मुक्तः स्वीयया प्रभया स्वयम्॥" शिवसंहिता 5/154.

⁵⁸ "अत ऊर्ध्वं तालुमूले सहस्रारं सरोरुहम्।

अस्ति यत्र सुषुम्णाया मूलं सविवरं स्थितम्॥" शिवसंहिता 5/155.

प्राप्त सिद्धियाँ— सहस्रार चक्र पर सुषुम्ना में अवस्थित चित्रा नाड़ी का केवल स्मरण करने से ही ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है तथा जीवात्मा भव-बन्धनों से मुक्त हो जाती है।⁵⁹

1.3.5 वशिष्टसंहिता में चक्र का स्वरूप

वशिष्टसंहिता⁶⁰ के अनुसार— बारह आरों से युक्त चक्र के कारण ही मनुष्य देह की स्थिति है। इसी चक्र में पुण्य-पाप से प्रेरित जीव घुमता रहता है।

1.3.6 गोरक्षशतकम् में चक्र का स्वरूप

गोरक्षशतकम्⁶¹ के तालिका-1 'चक्र व्यवस्था' में चक्रों का वर्णन उनकी विशिष्टताओं जैसे— देवता, दल और अक्षरों के साथ किया गया है। गोरक्षशतकम् में दी गई तालिका के अनुसार चक्र मुख्यतः सात प्रकार के हैं—

क्र.	चक्रों के नाम	चक्रों का स्थान	चक्रों की दल संख्या	चक्रों के देवता	चक्रों के वर्ण
1.	मूलाधार चक्र	गुदा	चतुर्दल	ब्रह्मा	व, श, ष, स
2.	स्वाधिष्ठान चक्र	पेडू	षडदल	विष्णु	ब, भ, म, य, र, ल
3.	मणिपुर चक्र	नाभि	दशदल	रुद्र	ए, ङ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ
4.	अनाहत चक्र	हृदय	द्वादशदल	ईश	क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, म, ठ, ट
5.	विशुद्धि चक्र	कण्ठ	षोडशदल	सदाशिव	अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, लृ, ए, ऐ,

⁵⁹ "तालुमूले सुषुम्णा सा अधोवक्त्रा प्रवर्तते।" शिवसंहिता 5/157.

⁶⁰ "तालुमूले च यत्पदमं सहस्रारं पुरोदितम्।

तत्कन्दे योनिरेकास्ति पश्चिमाभिमुखी मता।।" शिवसंहिता 5/158.

⁵⁹ "तस्या मध्ये सुषुम्ण्या मूलं सविवरं स्थितम्।

ब्रह्मरन्ध्रं तदेवोक्तमामूलाधारं पंकजम्।

ततस्तदरन्ध्रे तच्छक्तिः प्रसुप्ता कुण्डली सदा।।" शिवसंहिता 5/159.

"यस्याः स्मरणमात्रेण ब्रह्मज्ञत्वं प्रजायते।

पापक्षयश्च भवति न भूयः पुरुषो भवेत्।।" शिवसंहिता 5/161.

⁶⁰ "द्वादशारयुतं चक्रं देहस्तेन प्रतिष्ठितः।

चक्रेऽस्मिन् भ्रमते जीवः पुण्यपापप्रचोदितः।।" वशिष्ट संहिता 2/13.

⁶¹ स्वामी कुवल्यानन्द (2013), गोरक्षशतकम्, तालिका-1: चक्र व्यवस्था, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, पुणे, महाराष्ट्र, पृष्ठ संख्या-109.

					ओ, औ, अं, अः
6.	आज्ञा चक्र	भूमध्य	द्विदल	परमशिव	ह, क्ष
7.	सहस्रार चक्र	शंखिनी का शिखर	सहस्रार दल	परमशिव	लकाराद्या वर्णाः

1.4 चक्र एवं नाड़ियों का संबंध

नाड़ी का शाब्दिक अर्थ होता है 'प्रवाह या धारा'। अतीन्द्रिय दृष्टि को प्राप्त व्यक्ति प्रकाश की तरंगों के रूप में इन नाड़ियों की व्याख्या करता है। यद्यपि शारीरिक स्तर पर ये नाड़ियाँ शरीरस्थ तंत्रिकाओं से संबंधित होती हैं, किन्तु चक्रों की भाँति ये नाड़ियाँ भी भौतिक शरीर का अंग न होकर वे सूक्ष्म वाहिकायें हैं जिनसे प्राण शक्ति प्रवाहित होती है। शास्त्रों के अनुसार अतीन्द्रिय शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियों का वर्णन मिलता है, इनमें से दस प्रमुख हैं एवं इन दस नाड़ियों में भी तीन नाड़ियाँ— इडा, पिंगला एवं सुषुम्ना अत्यन्त महत्व रखती हैं। इन तीन प्रमुख नाड़ियों में भी सबसे अधिक महत्वपूर्ण नाड़ी— सुषुम्ना है जिसके अधीन अन्य दोनों नाड़ियाँ— इडा तथा पिंगला रहती हैं। इडा और पिंगला नाड़ी अस्तित्व के अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी पक्षों को दर्शाती हैं। इडा नाड़ी मूलाधार के बायें भाग में स्थित है जहाँ से एक वक्राकार मार्ग निर्मित कर यह प्रत्येक चक्र को पार करते हुए मेरुदण्ड में सर्पिल गति से ऊपर चढ़ती हुई अन्त में आज्ञा चक्र के बायें भाग में जा मिलती है। पिंगला नाड़ी मूलाधार के दायें भाग में स्थित हैं। इडा नाड़ी की विपरीत दिशा में पिंगला नाड़ी का अन्त आज्ञा चक्र के दाहिने भाग में होता है। सुषुम्ना नाड़ी एक केन्द्रीय आध्यात्मिक-मार्ग के रूप में इडा-पिंगला के मध्य रीढ़ की हड्डी के केंद्र में स्थित है जिसका आरम्भ व अंतः क्रमशः मूलाधार व सहस्रार चक्र में होता है। सुषुम्ना नाड़ी इडा-पिंगला के मध्य संतुलन का पर्याय है।

चक्रों के संबंध में यह पाया गया है कि सुषुम्ना नाड़ी एक सूक्ष्म प्रतीकात्मक पथ के रूप में समस्त प्रमुख चक्रों से संयुक्त है, जिससे होकर कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार से सहस्रार चक्र तक की अपनी आरोहण-यात्रा पूर्ण करती है। वृहद संस्कृत शब्द कोश का संदर्भ देते हुए स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ने सुषुम्ना नाड़ी के संदर्भ में एक विशिष्ट तथ्य दिया है, जिसके अनुसार "वास्तव में सुषुम्ना अत्यधिक दयालु है

क्योंकि कुण्डलिनी के आरोहण में सहायता करके आनन्द और ज्ञान के प्रकाशन में मदद करती है।⁶² शाण्डिल्योपनिषद्⁶³ में “सुषुम्ना को राजपथ कहा गया है। इस प्रकार इसका अर्थ राजपथ है। इसका उद्देश्य भी राजपथ पर गमन करना है। यह सुषुम्ना आनन्द और ज्ञान का पथ है।” यद्यपि स्थूल शरीर की तुलना में सुषुम्ना सूक्ष्मातीत है, तथापि योग साधना के उद्देश्य से इसको मेरुदंड के मध्य में ऊपर से नीचे तक फैली हुई माना गया है। तंत्र शास्त्र में इसका और भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है। सम्मोहन तंत्र (अध्याय 6:5,6) में कहा गया है कि— “सुषुम्ना मूलाधार से ब्रह्म के निवास स्थान (सहस्रार) तक फैली हुई है। यह मेरुदण्ड के अन्दर स्थित है तथा सभी प्रकार की ज्ञान—प्राप्ति का साधन है।”

⁶² सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द, (1993), तंत्र, क्रिया और योगविद्या, श्री गोपी कृष्ण केजरीवाल मानद सचिव बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— 521.

⁶³ आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा (2015), 108 उपनिषद् (सरल हिन्दी भावार्थ सहित), ब्रह्मविद्याखण्ड, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, पृष्ठ संख्या— 279. 6.

द्वितीय अध्याय

कुण्डलिनी का सामान्य परिचय

- 2.1 कुण्डलिनी का शाब्दिक अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप
- 2.2 हठयोगिक ग्रंथों में कुण्डलिनी की अवधारणा
- 2.3 कुण्डलिनी का चक्र और नाड़ियों से संबंध

2. कुण्डलिनी का सामान्य परिचय

मानव शरीर एक दिव्य मंदिर की भाँति है जिसमें इष्टदेवता निवास करते हैं। मानव द्वारा अपनी क्रिया-शक्ति के माध्यम से शरीर में स्थित इष्टदेवता की असीम शक्ति जो कि सुषुप्ति अवस्था में है उसे पहचाने और उस सुप्त शक्ति को चैतन्य बनाकर आत्मकल्याण करने हेतु भारतीय ऋषियों द्वारा अनेकों मार्ग प्रशस्त किये गये हैं। इन्हीं में एक मार्ग 'कुण्डलिनी शक्ति' की साधना भी है।

कुण्डलिनी शक्ति को अन्य नामों जैसे— कुल कुण्डलिनी, भुजंगिनी, सर्पिणी, वलयाकार सर्पिणी, प्रचण्ड शक्ति, मूलाधार निवासिनी, विद्युत, अग्निमय, मुक्तशक्ति, महादेव, सप्तचक्र भेदनी, विश्व-शक्ति, विद्युत प्रवाह रूपिणी, सर्व-सौंदर्यशालिनी, अधोमुख सर्पिणी, अपराजिता, विशतंतुस्वरूपा, मूलविद्या, कुटिलरूपिणी, नव-शक्ति समन्विता, शक्ति चालिता और कुण्डलिनी आदि नामों से संबोधित किया गया है।

कुण्डलिनी को मेरुदण्ड के सबसे निचले छोर पर उपस्थित 'मूलाधार चक्र' में स्थित बताया गया है, आधुनिक शरीर विज्ञान के अनुसार यह स्थान "गुदास्थि" कहलाता है। तंत्रशास्त्र में इस स्थान का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि यह स्थान 'स्वयंभूलिंग' है, जिस पर कुण्डलिनी शक्ति साढ़े तीन कुण्डल मारकर स्वयंभूलिंग के सिर पर अपना सिर और अपनी पूँछ को अपने मुख में डाले हुए सुप्त अवस्था में पड़ी हुई है। हठयोगिक ग्रंथ— हठयोग प्रदीपिका में भी कुण्डलिनी शक्ति को 'योनिस्थान' में स्थित बताया गया है। अन्य शास्त्रकारों के मतानुसार, कुण्डलिनी शक्ति का निवास-स्थान गुदास्थि और त्रिकास्थि के बीच के त्रिकोण में है। इस प्रकार, कुण्डलिनी शक्ति की स्थिति के संबंध में निश्चित और सर्वसामान्य मत यह है कि यह मूलाधार चक्र में आसीन है। 'प्रत्येक व्यक्ति में अपने अंगुल से 48 वें अंगुल पर मूलाधार चक्र की स्थिति है तथा व्यक्ति का पूरा शरीर उसके अंगुल से 96 वें अंगुल माप का होता है।'¹

¹ "शरीरं तावदेवं हि षण्णवत्यङ्गुलात्मकम् ।
विदध्येत सर्वजन्तुनां स्वाङ्गुलीभिरिति द्विज ।।" वशिष्टसंहिता 2/5

कुण्डलिनी, 'शैवतंत्र' में एक महत्वपूर्ण अवधारणा है, शैवतंत्र में कुण्डलिनी को दिव्य स्त्री या देवी के निराकार पहलु से जुड़ी शक्ति माना जाता है। 'तंत्र शास्त्र' में परंपरागत रूप से कुण्डलिनी को शक्तिवाद में सर्वोच्च आदि-पराशक्ति या पार्वती और देवी भैरवी तथा कुब्जिका के साथ जुड़ी हुई माना जाता है।^{2, 3} नौवीं शताब्दी के हठयोगिक ग्रंथों में कुण्डलिनी शब्द को इससे जुड़ी प्रथाओं के साथ स्वीकारा गया था।⁴ तभी से कुण्डलिनी को हिंदू धर्म के अन्य रूपों के साथ-साथ आधुनिक आध्यात्मिकता और नए युग के विचारों में अपनाया गया है। योग विज्ञान में वर्णित कुण्डलिनी योग हिंदू धर्म के शक्तिवाद और तांत्रिक संप्रदायों से प्रभावित है। कुण्डलिनी योग नाम मंत्र, तंत्र, यंत्र, आसन तथा ध्यान के नियमित अभ्यास के माध्यम से कुण्डलिनी ऊर्जा के जागरण पर केंद्रित होने के कारण पड़ा है।

योगिक एवं तांत्रिक अभ्यासों के माध्यम से जब यह शरीरस्थ कुण्डलिनी ऊर्जा सप्तचक्रों का भेदन करते हुए विकसित और जागृत होती है, तब यह साधक को आध्यात्मिक मुक्ति की ओर ले जाती है। कुण्डलिनी जागरण हेतु अनेकों विधियाँ उपयोग में लायी जाती हैं। योग शास्त्र में वर्णित कई प्रणालियाँ कुण्डलिनी जागरण पर ध्यान केंद्रित करती हैं जैसे— चयनित आसनों का अभ्यास, प्राणायाम, ध्यान और मंत्र जप इत्यादि।⁵ गोरक्षशतकम् नामक हठयोगिक ग्रंथ के अनुसार हठयोग अभ्यास जैसे मुद्रा, मूलबंध, उड्डियान बंध, जालंधर बंध और कुम्भक प्राणायाम का अभ्यास कुण्डलिनी को जगाने हेतु उपयोगी है।⁶ एक अन्य हठयोगिक ग्रंथ के अनुसार खेचरी मुद्रा कुण्डलिनी को ऊपर की ओर बढ़ाने तथा सिर में अमृत के भंडार तक पहुँचने में सक्षम बनाती है।⁷

² फॉवले डेविड. (2009). *इनर तांत्रिक योग: वर्किंग विथ द यूनियर्सल शक्ति: सिक्रेट्स ऑफ मंत्रास्, डीइटीस एंड मेडिटेशन*. लोटस प्रेस, पृष्ठ संख्या— 163–164.

³ डाइक्जकोवस्की, मार्क, एस. जी. (1989). *द केनॉन ऑफ द शैवागम एंड द कुब्जिका तंत्रास् ऑफ द वेस्टर्न कौला ट्रेडिशन*. मोतिलाल बनारसीदास पब्लिकेशन, पृष्ठ संख्या— 60, 89.

⁴ मेलिन्सन, जे. (2016) "शक्तिस्म एंड हठयोगा" *इन: गॉडिस ट्रेडिशनस इन तांत्रिक हिन्दुइजम: हिस्ट्री, प्रेक्टिस एंड डॉक्टराइन*. ऐडिटेड बाइ बर्जने वर्निक-ओलेसन लंदन: राउटलेज, पृष्ठ संख्या— 109–140.

⁵ "स्पॉटलाइट ऑन कुण्डलिनी योगा". योगा जर्नल. रिटाइड ऑन 8 अक्टूबर 2013.

⁶ क्वाइट, क्वाइट, डी. जी. (2012). *योगा इन प्रेक्टिस*. प्रिंसटन, न्यू जर्सी: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस. पृष्ठ संख्या—2, 268–270.

⁷ मेलिन्सन, जे. (2007). "द खेचरीविद्याया ऑफ आदिनाथ: अ क्रिटिकल ऐडिशन एंड ऐनोटेटेड ट्रांसलेशन ऑफ एन अल्टी टेक्स्ट ऑफ हठयोगा. लंदन: राउटलेज, पृष्ठ संख्या— 29.

विशेषज्ञों के अनुसार कुण्डलिनी के विकसित एवं जाग्रत होने का अनुभव सामान्यतया रीढ़ की हड्डी के साथ चलने वाले विद्युत प्रवाह के रूप में सूचित किया जाता है।^{8, 9,}
¹⁰ जाग्रत होने पर, कुण्डलिनी को केंद्रीय नाड़ी सुषुम्ना के साथ सिर के शीर्ष प्रदेश तक पहुँचने के लिए मूलाधार से ऊपर उठने के रूप में वर्णित किया जाता है। कुण्डलिनी की प्रगति को विभिन्न चक्रों के माध्यम से जागृति करना एक रहस्यमय अनुभव माना जाता है। इसी संदर्भ में स्वामी शिवानंद सरस्वती ने अपनी पुस्तक 'कुण्डलिनी योग' में कहा है कि 'जब कुण्डलिनी एक चक्र के बाद दूसरे चक्र से गुजरती है, जिससे चक्र अपनी सारी महिमा में खिल जाते हैं उस समय, आकांक्षी की मानसिक आँखों के सामने अलौकिक दृश्य प्रकट होते हैं, अवर्णनीय चमत्कार और आकर्षण के साथ नया संसार योगी के सामने प्रकट होता है, अभ्यासी और योगी को दिव्य ज्ञान, शक्ति और आनंद बढ़ती हुई मात्रा में प्राप्त होता है।'¹¹

⁸ सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द (1984), *कुण्डलिनी तंत्र*, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— 34–36. आ: *वर्किंग विथ द यूनिवर्सल शक्ति: सिक्रेट्स ऑफ मंत्रास्, डीइटीस एंड मेडिटेशन*. लोटस प्रेस, पृष्ठ संख्या— 163–164.

⁸ डाइक्जकोवस्की, मार्क, एस. जी. (1989). *द केनॉन ऑफ द शैवागम एंड द कुब्जिका तंत्रास् ऑफ द वेस्टर्न कौला ट्रेडिशन*. मोतिलाल बनारसीदास पब्लिकेशन, पृष्ठ संख्या— 60, 89.

⁸ मेलिन्सन, जे., (2016). *"शक्तिस्म एंड हठयोगा" इन: गॉडिस ट्रेडिशन इन तांत्रिक हिन्दुइज़म: हिस्ट्री, प्रेक्टिस एंड डॉक्टराइन*. ऐडिटेड बाइ बर्जने वर्निक—ओलेसन लंदन: राउटलेज, पृष्ठ संख्या— 109–140.

⁸ राधा, एस. एस., (2016). पृष्ठ संख्या— 13, 15.

⁸ "स्पॉटलाइट ऑन कुण्डलिनी योगा". योगा जर्नल. रिट्राइव्ड ऑन 8 अक्टूबर 2013.

⁸ क्वाइट, क्वाइट, डी. जी., (2012). *योगा इन प्रेक्टिस*. प्रिंसटन, न्यू जर्सी: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस. पृष्ठ संख्या— 268–270.

⁸ मेलिन्सन, जे., (2007), *"द खेचरीविद्यया ऑफ आदिनाथ: अ क्रिटिकल ऐडिशन एंड ऐनोटेटेड ट्रांसलेशन ऑफ एन अर्ली टेक्स्ट ऑफ हठयोगा*. लंदन: राउटलेज, पृष्ठ संख्या— 29.

⁹ जुडिथ, एनोडिया (2004), *ईस्टर्न बॉडी, वेस्टर्न माइंड: सायकोलॉजी एंड द चक्रा सिस्टम एस ए पाथ टू द सेल्फ (रिवाइज्ड ऐडिशन)*. बर्कले, कैलिफोर्निया: सेलेस्टियल आर्ट्स. पृष्ठ संख्या— 451–454.

¹⁰ पॉलसन, जे. ले., (1998), *कुण्डलिनी एंड द चक्रास: ए प्रेक्टिकल मैन्युअल— ईवोल्यूशन इन दिस लाईफटाइम (I ऐडिशन)*. सेंट, पॉल, मिनेसोटा: लेवेलिन पब्लिकेशन. पृष्ठ संख्या— 7–10.

¹¹ सरस्वती, स्वामी शिवानन्द (2010), *कुण्डलिनी योग*, हिमालयास, इंडिया: द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी. पृष्ठ संख्या— 27.

2.1 कुण्डलिनी का शाब्दिक अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

कुण्डलिनी के बारे में प्रत्येक व्यक्ति को जानना चाहिये, क्योंकि कुण्डलिनी के शाब्दिक अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप के बारे में अलग अलग मत दिये गये हैं—

2.1.1 कुण्डलिनी का शाब्दिक अर्थ एवं व्युत्पत्ति

कुण्डलिनी शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के दो मूल शब्दों से हुई है¹²—

- (i). **कुण्डल**— ‘कुण्डल’ से तात्पर्य वलय, पाश, गोला, फंदा या घेरा बनाए हुए होता है। यह मूलाधार चक्र में सर्प के रूप में कुंडली मारे बैठी हुई कुंडलिनी शक्ति को इंगित करता है।
- (ii). **कुण्ड**— ‘कुण्ड’ से तात्पर्य गड्ढा, गर्त या नितल स्थान है। यह अधिकांश लोगों में सुप्त और निष्क्रिय स्थिति में कुण्डलिनी के अधिकतम गहन स्थान मूलाधार चक्र में निवास करने की ओर इंगित करता है।

अतः इस प्रकार ‘कुण्डलिनी’ शब्द का तात्पर्य एक ऐसी शक्ति या ऊर्जा से है जो सामान्यतः सोई हुई अवस्था में है। यद्यपि कि इस शक्ति के जागरण के फलस्वरूप इसे हिंदु धर्म में वर्णित देवी शक्ति के अनेकों नामों से जाना जाता है। कुण्डलिनी शब्द की उत्पत्ति के संदर्भ में यह भी वर्णन मिलता है कि इस शब्द की उत्पत्ति संस्कृत विशेषण ‘कुण्डलिन’ से हुई हैं जिसका अर्थ है “गोलाकार, कुंडलाकार”। संस्कृत शब्द ‘कुंडली शक्ति’ से तात्पर्य ‘सर्प शक्ति या सर्पेन्ट पॉवर’ से है। इसे प्रतीकात्मक रूप से रीढ़ के आधार पर एक कुंडलित नाग के रूप में दर्शाया गया है।¹³

हिन्दू धर्म में कुण्डलिनी को ‘कुंडलित साँप’ की संज्ञा दी गई है। यौगिक एवं तांत्रिक ग्रंथों के अनुसार यह माना जाता है कि प्रत्येक मनुष्य में कुण्डलिनी मूलाधार में रीढ़ की हड्डी के आधार पर स्थित दिव्य ऊर्जा या शक्ति का एक रूप है।

¹² सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द (2005), कुण्डलिनी योग, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— 10.

¹³ टेलर, के. (2001). सर जॉन वुडरोफ, तंत्रा एंड बेन्गॉल; राउटलेज.

ऋग्वेद में कुण्डलिनी शक्ति को 'वाक्' कहा जाता है। ऋग्वेद के एक मंत्र में कुण्डलिनी शक्ति ने स्वयं का परिचय देते हुए कहा है कि 'मैं रुद्रों, वसुओं और आदित्यों के साथ बिहार करती हूँ। वरुण, मित्र, इंद्र, अग्नि आदि को मैं ही उठाए हुए हूँ।'¹⁴

शैव तंत्र में केंद्रीय विमर्श 'कुण्डलिनी' की अवधारणा है। के रूप में उभरी। इन तांत्रिक परंपराओं के अनुसार, कुण्डलिनी 'समाविष्ट चेतना की सहज बुद्धि' है।¹⁴ कुण्डलिनी की अवधारणा का उल्लेख सातवीं से नौवीं शताब्दी ईसा पूर्व उपनिषदों में किया गया है।¹⁵ आठवीं सदी के तंत्रसद्भाव तंत्र में सर्वप्रथम 'कुण्डली' शब्द का प्रयोग किया गया है। जिसे डेविड गॉर्डन व्हाइट ने 'वह जो अंगुठी के आकार की है' के रूप में अभिव्यक्त किया है¹⁶, जो शिव की रचनात्मक गतिविधि और देवी के साथ परम मिलन का आनंद है।¹⁷ तंत्र में इसे 'वागेश्वरी' भी कहा गया है। ग्यारहवीं शताब्दी के आरंभ से ही तंत्रवाद और शक्तिवाद के अंतर्गत शारदातिलक तंत्र में देवी दुर्गा (शक्ति का एक रूप) के लिए एक नाम के रूप में 'कुण्डलि' शब्द का प्रयोग मिलता है।¹⁸ बारहवीं शताब्दी के राजतरंगिणी क्रानिकल (I.2) में कुण्डलिनी का उल्लेख 'साँप' ('कुंडलित' के अर्थ में) के लिए एक संज्ञा के रूप में किया गया है। इसे पन्द्रहवीं शताब्दी के दौरान हठयोग में एक तकनीकी शब्द के रूप में अपनाया गया था और सोलहवीं शताब्दी तक योग उपनिषदों में कुण्डलिनी का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाने लगा।

¹⁴ वालिस, के., (2017). *रेकग्निशन सूत्रासः इलूमनेटिंग अ 1,000— ईअर-ओल्ड स्पिरिचुअल मैस्टर्पीस मट्टामायुरा प्रेस. इन्द्रोडक्शन.*

¹⁵ डाले, एस., (2011). *कुण्डलिनी: डिवाइन ऐनर्जी, डिवाइन लाईफ, वुडबरी, मिनेसोटा: लेवेलिन पब्लिकेशन्स.*

¹⁶ व्हाइट, डी. जी., (2004). *किस ऑफ द योगिनि: 'तांत्रिक सेक्स' इन इट्स साउथ ऐशियन कन्टेक्स्ट (पेपरबैक एडिशन).* द यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस. पृष्ठ संख्या— 230.

¹⁷ *द अलकेमिकल बॉडी: सिद्धा ट्रेडिशन इन मीडिईवल इंडिया.* द यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस. पृष्ठ संख्या—219–220.

¹⁸ सैविज्ज, के. एस., (1990). *वाकः द कन्सेप्ट ऑफ द वर्ड इन सेलेक्टेड हिन्दू तंत्रास.* श्री सद्गुरु पब्लिकेशन्स. पृष्ठ संख्या— 124–136.

2.1.2 कुण्डलिनी की विविध परिभाषाएँ

समसमायिक काल के कई प्रसिद्ध विज्ञानों ने कुण्डलिनी की परिभाषा निम्न प्रकार से दी है—

1. **स्वामी दिगम्बरजी एवं डा. पीताम्बर झा (2008)** के अनुसार— ‘जिस प्रकार सर्पों के स्वामी शेषनाग पर्वत वन सहित संपूर्ण पृथ्वी के आधार हैं, उसी प्रकार संपूर्ण योग-तन्त्रों का आधार कुण्डली है।’¹⁹
2. **स्वामी सत्यानंद सरस्वती (2006)** के अनुसार— ‘कुण्डलिनी को मानव जीव में उपस्थित एक सुप्त संभावित शक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है, यह सूक्ष्म शरीर के एक गूढ़ विवरण के घटकों में से एक है, जिसमें नाड़ियाँ, चक्र, प्राण और बिंदु शामिल हैं।’²⁰
3. **योग वाशिष्ठ (2009)** के अनुसार— ‘अकार से क्षकार’ तक बीज वर्णों से युक्त, आठ प्रकार की प्रकृति वाली एवं आठ ही बार कुण्डलित होने के कारण कुण्डली कहलाती है।’²¹
4. **व्हाइट, डेविड गॉर्डन (2004)** के अनुसार— ‘कुण्डलिनी को रीढ़ के आधार पर कुण्डलित होने के रूप में वर्णित किया गया है। यहाँ कुण्डलिनी के स्थान का विवरण मलाशय से लेकर नाभि तक थोड़ा भिन्न हो सकता है।’²²
5. **विलियम एफ. विलियम्स (2000)** के अनुसार— ‘कुण्डलिनी हिंदु परंपरा के अन्तर्गत एक प्रकार का धार्मिक अनुभव है, जिसके अन्दर इसे एक प्रकार की ‘ब्रह्माण्डीय ऊर्जा’ मानी जाती है जो रीढ़ की हड्डी के आधार पर जमा होती है।’²³

¹⁹ दिगम्बरजी, एस. और झा, डी. पी., (2008), हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति लोनावला, पुणे, भारत, पृष्ठ संख्या— 71, श्लोक सं. 3/1.

²⁰ सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द (1984) *कुण्डलिनी तंत्र*, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत: बिहार स्कूल ऑफ योग, पृष्ठ संख्या— 34–36.

²¹ अष्टप्रकृतिरूपा सावष्टधा कुण्डलीकृता।

अकारादिक्षकारान्ता कुण्डलीत्यभिधीयते।

यथावद्वायुचारं च निरुध्यैषा सदा स्थिता॥ वशिष्ठ संहिता 2/16.

²² व्हाइट, डी., जी., (2004). *किस ऑफ द योगिनि: “तांत्रिक सेक्स” इन इट्स साउथ ऐशियन कन्टेक्स्ट (पेपरबैक एडिशन)*. द यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस. पृष्ठ संख्या— 230.

²³ विलियम्स, डब्ल्यू. एफ. (2000). ‘कुण्डलिनी’. *इन्साइक्लोपीडीआ ऑफ स्यूडोसाइंस: फ्रॉम ऐलीअन एब्दक्शन्स टू जोन थेरेपी*. राउटलेज. पृष्ठ संख्या— 211..

6. **स्वामी विवेकानंद (1995)** के अनुसार— स्वामी विवेकानंद ने अपनी पुस्तक 'राजयोग' में कुण्डलिनी का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार किया है— "योगियों के अनुसार मेरुदंड में दो तंत्रिका धाराएँ होती हैं, जिन्हें पिंगला और इडा कहते हैं तथा सुषुम्ना नामक एक खोखली नलिका रीढ़ की हड्डी से गुजरती है। इसी खोखली नलिका के निचले सिरे को योगी 'कुण्डलिनी का कमल' कहते हैं। वे इसे एक ऐसे रूप में त्रिकोणीय बताते हैं, जिसमें योगियों की प्रतीकात्मक भाषा में 'कुण्डलिनी' नामक एक शक्ति होती है, जो कुण्डलित होती है।"²⁴
7. **कार्ल जुंग के अनुसार**— 'कुण्डलिनी प्रणाली को प्रतीकात्मक रूप से चेतन और अचेतन प्रक्रियाओं के बीच गति को समझने के साधन के रूप में बताया गया है। कुण्डलिनी की अवधारणा का हमारे लिए केवल एक ही उपयोग है अर्थात् अचेतन के साथ अपने स्वयं के अनुभवों का वर्णन करना।'²⁵
8. **एकनाथ ईश्वरन के अनुसार**— "कुण्डलिनी शब्द को 'कुण्डलित शक्ति या द कॉर्ड्ड पावर' के रूप में परिभाषित किया है, यह कुण्डलित शक्ति एक बल की तरह है जो आमतौर पर रीढ़ की हड्डी के आधार पर रहता है, जिसे 'सर्प की तरह वहाँ कुण्डलित' कहा जाता है।"²⁶ कुण्डलिनी शक्ति को प्राण उर्जा, के रूप में विद्ववानों ने स्वीकार किया है। वह कुण्डलिनी शक्ति जीवनादायनी एवं मोक्षप्रदायनी है।

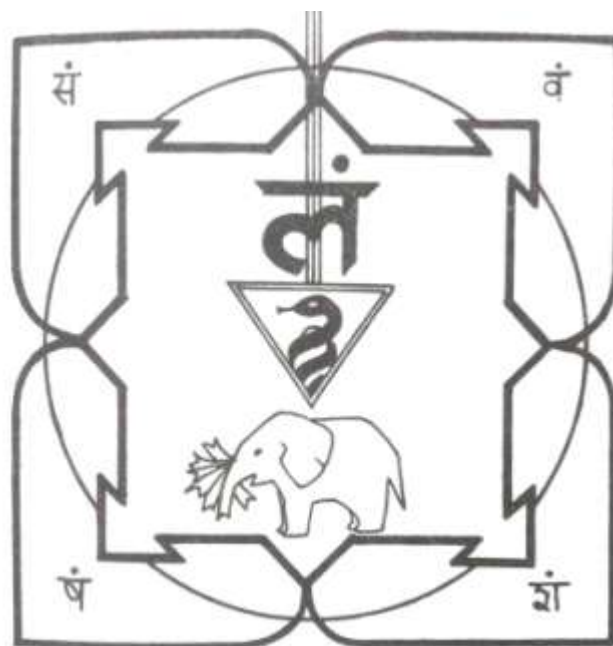
²⁴ स्वामी विवेकानंद (1998), *राज योगा: कन्वेंसिंग द इन्टर्नल नेचर*. कलकत्ता: अद्वैत आश्रम. पृष्ठ संख्या— 48–49.

²⁵ शमदासानी, एस., (2012). *द सायकोलॉजी ऑफ कुण्डलिनी योगा: नोट्स ऑफ द सेमिनार गिवन इन 1932 बाइ सी. जी. जुंग (न्यू ऐडिशन)*. प्रिंसटन, एन.जे.: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस.

²⁶ मॉरिसन, डी., (1977). *अ ग्लोसरी ऑफ संस्कृत फ्राम द स्पिरिटुअल ट्रेडिशन ऑफ इंडिया*. नीलगिरी प्रेस. पृष्ठ संख्या— 5.

2.1.3 कुण्डलिनी का स्वरूप

कुण्डलिनी मनुष्य की उच्च चेतना का प्रतीक है अतः प्रत्येक व्यक्ति को कुण्डलिनी के स्वरूप की जानकारी होना आवश्यक है। सामान्य रूप से कुण्डलिनी मानव शरीर में मेरुदण्ड के सबसे निचले हिस्से में (पुरुष शरीर में मूत्राशय और मलाशय के बीच पेरीनियम में एवं स्त्रियों के शरीर में गर्भाशय-ग्रीवा में स्थित) सुप्तावस्था में पड़ी हुई एक गुप्त शक्ति है, इसी स्थान पर मूलाधार चक्र स्थित है।²⁷ चक्रों के क्रमशः जागरण को ही कुण्डलिनी (कुण्डली) का उत्थान या जागरण कहते हैं। कौल और त्रिकावंश के स्वामी महान तांत्रिक विद्वान अभिनवगुप्त के अनुसार— कुण्डलिनी के दो मुख्य रूप हैं— एक ऊपर की ओर बढ़ने वाली कुण्डलिनी (उर्ध्वमुखी) जो विस्तार से जुड़ी हैं और एक नीचे की ओर बढ़ने वाली कुण्डलिनी (अधोमुखी) जो संकुचन से जुड़ी है।²⁸



मूलाधार स्थित कुण्डलिनी (चित्र क्र.— 09)²⁹

²⁷ सरस्वती, एस., एस., (2005). कुण्डलिनी योग, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— 8.

²⁸ फ्लड, जी., (2006). द तांत्रिक बॉडी: द सिक्रेट ट्रेडिशन ऑफ हिन्दू रिलिजन. आई. बी. टॉरिस. पृष्ठ संख्या— 160–161.

²⁹

कुण्डलिनी को एक 'सर्प' के प्रतीकात्मक रूप में चित्रित किया जाता है। मेरुदण्ड के सबसे निचले छोर पर उपस्थित 'मूलाधार चक्र' या तंत्रशास्त्र के अनुसार 'स्वयंभूलिंग' पर यह कुण्डलिनी शक्ति सर्प की भाँति साढ़े तीन कुण्डल मारकर स्वयंभूलिंग के सिर पर अपना सिर और अपनी पूँछ को अपने मुख में डाले हुए सुप्त अवस्था में पड़ी हुई है। "यहाँ 'सर्प की भाँति साढ़े तीन कुण्डली' में से 'तीन कुण्डली' का तात्पर्य— 'ऊँ' की तीन मात्राओं से है जो तीनों कालों (भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल), तीनों प्रकार के अनुभव (अनुभवरहित, इंद्रिय अनुभव एवं स्व-अनुभूति), तीन गुणों (सत, रज और तमोगुण) तथा चेतना की तीन अवस्थाओं (जागृतावस्था, स्वप्नावस्था तथा सुषुप्तिवस्था) का प्रतीक है तथा शेष 'आधी कुण्डली' उस अवस्था का प्रतीक है, जहाँ न सुषुप्तावस्था है न स्वप्नावस्था और न ही जागृतावस्था है। इस प्रकार यह साढ़े तीन कुण्डली विश्व के समस्त अनुभवों को इंगित करती हैं।"³⁰

सामान्यतः मनुष्य चेतन स्थिति में होता है उस समय वह भौतिक स्तर पर तो जाग्रत होता है किन्तु वह स्वयं के अंदर सूक्ष्म स्तर पर उपस्थित सुप्त शक्तियों से अनभिज्ञ रहता है। इस अवस्था में व्यक्ति को अपने मन की शक्ति का अल्प ज्ञान रहता है। जब विभिन्न माध्यमों से कुण्डलिनी शक्ति का उत्थान आरंभ होता है और यह कुण्डलिनी क्रमशः चक्रों का आरोहण करते हुए गुजरती है, तब व्यक्ति में अधिकाधिक सजगता तथा सतर्कता आती है, अतएव कुण्डलिनी के पूर्णतः जाग्रत होने पर व्यक्ति में पूर्ण सजगता का विकास हो जाता है। फलतः वह चेतना के उच्च शिखर पर आसीन हो जाता है। इस स्थिति में व्यक्ति योगनिद्रा की अवस्था में रहता है। इस तरह कुण्डलिनी को मनुष्य के अंतर्मन में निहित शक्तियों के उत्थान, जागरण तथा साक्षात्कार का प्रतीक कहा गया है।

³⁰ सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द (2005), *कुण्डलिनी योग*, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— 13.

2.1.4 कुण्डलिनी का तात्पर्य

कुण्डलिनी की अस्पष्ट और अतिशयोक्तिपूर्ण व्याख्या के जंजाल में उलझना अत्यंत सुगम है, जबकि यथार्थता के स्तर पर कुण्डलिनी अवचनी या अवर्णनीय है। तंत्र एवं योग विज्ञान में कुण्डलिनी को 'स्त्रैण (स्त्रियोनित)' की संज्ञा दी गयी है एवं इसे शक्ति के नाम से भी संबोधित किया गया है। यहाँ कुण्डलिनी को उच्च सजगता और आनन्द की सूत्रधार के रूप में उन समस्त मंत्रों को व्यक्त करने वाली बताया गया है जिसके माध्यम से व्यक्ति में उसके आन्तरिक एवं शाश्वत स्रोत सहस्रार से आनन्द की वर्षा होती है।

एक लय-कर्म के रूप में कुण्डलिनी को मनुष्य के साथ-साथ सभी जीव-जन्तुओं के अस्तित्व का सृजन (भिन्न-भिन्न चक्रों से अवरोहण द्वारा), पालन (मूलाधार चक्र में निवास करके) और संहार (भिन्न-भिन्न चक्रों से आरोहण द्वारा) का कारण बताया गया है। जिस प्रकार कुण्डलिनी अवरोहण के साथ निम्न चक्रों को जाती है, उसी प्रकार वह मनुष्य एवं अन्य जीव-जन्तुओं को ज्ञान की न्यूनता, संकीर्णता और भ्रान्ति की ओर ले जाती है। कुण्डलिनी के इसी रूप को 'माया' की संज्ञा दी गयी है तथा इसी कारण इसे 'जगमोहिनी' नाम से भी पुकारा जाता है। कुण्डलिनी का यह माया या जगमोहिनी रूप ही मनुष्य को इस नश्वर बाह्य जगत् की जादूगरी में उलझा लेता है। फलतः वह अपनी दिव्यता, शक्ति तथा चेतना के निम्न स्तर पर आ जाता है। भौतिक जगत् के सभी चेतन प्राणी जैसे- पेड़-पौधों, कीड़े-मकोड़ों एवं पशु-पक्षियों में कुण्डलिनी मूलाधार से भिन्न निम्न चक्रों में निवास करती है। तंत्र शास्त्रों में मूलाधार चक्र के निचले स्तर पर सात चक्र हैं- अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल और पाताल चक्र के उपस्थित होने का प्रमाण मिलता है। मूलाधार चक्र के इन निचले स्तरों पर आत्म-सजगता एवं आत्म-जागरूकता की कमी पायी जाती है। यह आत्म-सजगता ही विशेषता के रूप में मनुष्य को अन्य जीव-जन्तुओं एवं जड़ पदार्थों से भिन्न और श्रेष्ठ बनाती है। अतएव

मानवीय उत्थान और योग-साधना के दृष्टिकोण से इन निम्न चक्रों का महात्म्य न होने के कारण प्रस्तुत शोधकार्य में इन चक्रों पर विमर्श किया गया है।

साधारणतः मानव शरीर में स्थित मूलाधार चक्र को कुण्डलिनी का निवास स्थान माना गया है। इस स्तर पर कुण्डलिनी 'स्वप्नवत्' अवस्था में रहती है। कुण्डलिनी की सुप्तावस्था में मनुष्य स्वलीनता से सराबोर तथा व्यक्तिवादी प्रधान होता है। ऐसा व्यक्ति केवल इस भौतिक जगत के प्रति ही सचेतन रहता है तथा स्वयं के अंदर अप्रकट अनुद्घाटित शक्ति के उस व्यापक संचयन तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण से बिल्कुल अनभिज्ञ एवं निद्रित रहता है। इसे व्यक्ति की तामसिक अवस्था कहा जाता है। अतः संक्षेप में मूलाधार चक्र में अवस्थित कुण्डलिनी जब सुप्तावस्था में रहती है उस समय व्यक्ति सामान्य स्तर या मात्र भौतिक जगत के प्रति जाग्रत रहता है, जिसे यथार्थ रूप से गहन निद्रा कहते हैं, इस समय व्यक्ति की चेतना माया के आवरण से घिरी रहती है। इसके विपरीत मूलाधार चक्र से उठकर विभिन्न चक्रों से होते हुए जब कुण्डलिनी सजग एवं जाग्रत होती है उस अवस्था में व्यक्ति अपने आठों प्रहर की जाग्रत तंद्रा से जागता है तथा यही व्यक्ति के उत्थान, आनन्द, आत्मज्ञान और आत्मकल्याण का कारण बनती है। इन चक्रों से होते हुए जैसे-जैसे कुण्डलिनी क्रमशः आरोहण करती जाती है, वैसे-वैसे माया का आवरण हटता जाता है तथा जैसे ही कुण्डलिनी सहस्रार चक्र में प्रवेश करती है उस स्थिति में यह आवरण पूर्णतः समाप्त हो जाता है। उच्चतम स्थित में कुण्डलिनी का सहस्रार के साथ विलय हो जाता है तथा यह शिव या सर्वोच्च चेतना के साथ एकाकार हो जाती है। कुण्डलिनी का यही निराकार रूप चेतना तथा साकार रूप शक्ति है एवं यही दृश्य जगत की जननी है।

सारगर्भित रूप में प्रत्येक व्यक्ति के मूलाधार में चेतना और शक्ति के भंडार के रूप में कुण्डलिनी शक्ति निवास करती है। मूलाधार से निम्न चक्रों में कुण्डलिनी के अवरोहण के परिणामस्वरूप द्वैतभाव में वृद्धि, वियोग और ज्ञान में कमी आती है। ठीक इसके विपरीत मूलाधार से ऊपर के चक्रों में कुण्डलिनी के अवरोहण के परिणामस्वरूप

अद्वैतभाव में वृद्धि, योग और आनंद में भी वृद्धि होती है। ऐसे व्यक्ति का अपने जीवन व अन्य लोगों के प्रति व्यापक दृष्टिकोण हो जाता है। कुण्डलिनी जागरण के उपायों के माध्यम से जब व्यक्ति स्वयं की व्यक्तिगत सीमाओं तथा मन से ऊपर उठता है, तब यही कुण्डलिनी सहस्रार चक्र में जाकर अधिष्ठित होती है। इसके अतिरिक्त सजगता के स्तर और अहं भाव के साथ व्यक्ति की तादात्म्यता के अनुरूप यह कुण्डलिनी अन्य चक्रों में भी निवास करती है।

कुण्डलिनी जागरण एवं उत्थान मनुष्य के उच्च से उच्चतर मानस स्तर का संकेतक है। कुण्डलिनी जिस प्रकार एक के बाद एक चक्रों से होकर सहस्रार की ओर ऊर्ध्वगमन करती है, उसी प्रकार साधक शांत चित्त, सौम्य, अधिकाधिक सजग और एकाग्र तथा उच्च चेतनावान होता चला जाता है, अन्ततः परम आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता है।

2.1.5 कुण्डलिनी की ध्वनि

प्राचीनकाल के विभिन्न रहस्यवादी सम्प्रदायों में इस प्रकार की मान्यता थी कि सर्वोच्च बैकुण्ठ या सहस्रार चक्र के संगीत की ध्वनि ठीक उसी प्रकार है जैसे कि पृथ्वी या मूलाधार चक्र की है। ऐसी मान्यता है कि सरगम के प्रमुख सात स्वरों का संबंध विभिन्न स्तरों के चक्र से है।

तंत्र विज्ञान के आधार पर कुण्डलिनी को एक अन्य विधि द्वारा परिभाषित किया गया है जिसके अनुसार सब कुछ शब्द या सूक्ष्म ध्वनितरंगों की अभिव्यक्ति है। मंत्र के रूप में इन ध्वनितरंगों का उपयोग कुण्डलिनी के जागरण एवं उत्थान हेतु किया जा सकता है। 'ॐ' मंत्र अर्थात् प्रणव रूप मात्र कुण्डलिनी का प्रतीक ही नहीं बल्कि कुण्डलिनी ही है। 'ॐ' सहस्रार क्षेत्र से उत्पन्न होने के कारण सहस्रार चक्र का बीजमंत्र है तथा विभिन्न चक्र-स्तरों से अवरोहरण करते हुए अन्त में भौतिक पदार्थों तथा मनुष्य सहित

समस्त जीव-जन्तुओं को प्रकाशित करता है। योग चूड़ामणि उपनिषद्³¹ के अनुसार— 'सृष्टि की समस्त कृतियों में ओम् अर्थात् कुण्डलिनी का निवास है। साधारणतः यह निम्न स्तर पर ही रहता है और भौतिक जगत् का सुखोपभोग करता है।' मनुष्य में ओम् अथवा कुण्डलिनी मूलाधार में निवास करती है।

तीन वर्णों ('अ', 'उ' और 'म') के मिलने से बने अक्षर 'ओउम्' के विभिन्न तात्पर्य हैं, विशेषतः यह त्रिगुण अर्थात् सतोगुण, रजोगुण व तमोगुण का द्योतक है अर्थात् 'अ' सत्त्व का, 'उ' रजस् का और 'म' तमस् को इंगित करता है। चूंकि तमस् निम्न चक्रों में प्रभावी रहता है। चक्रों के माध्यम से कुण्डलिनी के जागरण का प्रतीक 'ओउम्' है। अपने सम्पूर्ण रूप में 'ओउम्' सहस्रार चक्र का द्योतक है। यह ओम् केवल प्रतीक ही नहीं बल्कि मंत्र भी है जिसे कुण्डलिनी के उत्थान हेतु उपयुक्त किया जा सकता है।

इसी संदर्भ में हठयोगप्रदीपिका नामक हठयोगिक ग्रंथ में सार्थक रूप से नादयोग का वर्णन कुण्डलिनी जागरण हेतु उपयुक्त एक प्रभावशाली व महत्वपूर्ण साधना पद्धति के रूप में किया गया है। उदाहरण स्वरूप— "सुषुम्ना नाड़ी, कुण्डलिनी तथा चन्द्रमा (बिन्दु) से झरने वाले अमृत को नमस्कार, मनोन्मनी अवस्था (पूर्ण ब्रह्म) को नमस्कार, जो चिद्रूप महाशक्ति है।"³² इसी संदर्भ में 'महर्षि गोरखनाथ द्वारा लययोग अर्थात् कुण्डलिनी जागरण की अनगिनत विधियों का उल्लेख किया गया है, उनमें से मैं केवल नादानुसंधान (नाद के मूल स्रोत का पता लगाना) को ही सर्वोत्तम मानता हूँ।' 'इससे ब्रह्म ग्रंथि का भेदन होता है और शून्य से आनन्द का उद्भव होता है। इसके द्वारा अनाहत चक्र से उत्पन्न, उद्भव शब्द ध्वनि सुनाई पड़ सकती है।' 'द्वितीय अवस्था में प्राण सुषुम्ना में प्रवेश करता है और तब दृढ़ आसन में बैठा योगी देवता सदृश हो जाता है।' 'तत्पश्चात् विष्णु ग्रंथि का भेदन होता है और भाव—विह्वल करने वाले परमानन्द का अनुभव होता है। शून्य में भेरी की ध्वनि पड़ती है। अंतिम अवस्था में जब प्राण

³¹ शास्त्री, आचार्य केशव लाल वी., (2014) उपनिषत्सञ्चयनम्: ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 454.

³² दिगम्बरजी, स्वामी (2017), हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति लोनावला, पुणे, भारत, श्लोक सं. 4/64.

आज्ञा-चक्र में प्रवेश करता है तब रुद्र ग्रंथि का भेदन होता है। इस अवस्था में वीणा की ध्वनि सुनाई पड़ती है।'

उपर्युक्त सभी उदाहरण एक प्रभावशाली साधना के रूप में नादयोग ध्वनि का कुण्डलिनी के उत्थान की प्रक्रिया हेतु वर्णन करते हैं।

2.2 हठयोगिक ग्रंथों में कुण्डलिनी की अवधारणा

योग-विवेचन से संबंधित अनेकों ग्रंथों में कुण्डलिनी का विवरण दिया गया है। प्रस्तुत शोधकार्य के इस चरण के अंतर्गत मुख्य हठयोगिक ग्रंथों के संदर्भ में हठयोग में वर्णित 'कुण्डलिनी' की विस्तृत विवेचना की गयी है।

2.2.1 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' के अनुसार कुण्डलिनी की संकल्पना

सिद्धसिद्धान्तपद्धति के चतुर्थ उपदेश- पिण्डाधार के अंतर्गत अत्यंत ही व्यवहारिक रूप से कुण्डलिनी को समझाते हुए इसके प्रकारों की व्याख्या दो आधारों पर की गई है³³—

(i). अवस्था के भेद से कुण्डलिनी के प्रकार (द्विविध कुण्डलिनी)— क्रमशः सचेतन या जागने की अवस्था एवं अचेतन या सोई हुई अवस्था के भेद से कुण्डलिनी को दो प्रकार का बताया है—

(क) प्रबुद्ध या जाग्रत कुण्डलिनी— प्रत्येक मानव शरीर में सामान्यतः कुण्डलिनी स्वभाव से प्रबुद्ध या सचेतन होती है। इस चेतनरूप कुण्डलिनी को सजग एवं जगाने पर यह मूलाधार चक्र से सहस्रार चक्र की ओर ऊपर की ओर गमन करने लगती है, परिणामतः यह साधक एवं योगियों के मानसिक विकारों को नष्ट कर मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करती है।

(ख) अप्रबुद्ध या सुप्त कुण्डलिनी— मानव शरीर में उपस्थित सचेतन कुण्डलिनी को जब तक जगाया नहीं जाता, तब तक यह कुण्डलिनी मूलाधार चक्र में अधोमुख होकर

³³“सा कुण्डलिनी प्रबुद्धाऽप्रबुद्धा चेति द्विधा। अप्रबुद्धेति तत्पिण्डे चेतनारूपा, स्वभावेन नानाचिन्ता-व्यापारोद्यमप्रपञ्चरूपा कुटिल-स्वभावा कुण्डलिनी ख्याता। सिद्धसिद्धान्तपद्धति 4/14

सुप्तावस्था में रहती है। परिणामतः यह व्यक्ति को चिंता, मोहमाया, आकर्षण और विषाद से घेरे रहती है एवं भवबंधन का कारण बनती है।

(ii). स्थान एवं आकार के भेद से कुण्डलिनी के प्रकार—

महाशक्ति के रूप में कुण्डलिनी का स्थान एवं आकार (स्थूल व सूक्ष्म) के अंतर से निम्न तीन प्रकार की कहलाती है— अधः कुण्डलिनी, मध्य कुण्डलिनी और ऊर्ध्व कुण्डलिनी।³⁴

(क) अधः कुण्डलिनी या शक्ति— मूलाधारचक्र पर स्थित होने पर कुण्डलिनी शक्ति 'अधः कुण्डलिनी' कहलाती है। बाह्य इन्द्रियों के द्वारा किये गये कर्मों के कारण अर्थात् कुण्डलिनी के बिना जागरण के मनुष्य भव—बंधन की चिंता से सदैव ग्रसित रहता है एवं यह कुण्डलिनी शक्ति सुप्तावस्था में मूलाधार में स्थित रहती है, अतः यह 'सुप्त कुण्डलिनी' भी कहलाती है। इसी कारण सर्वप्रथम योगाभ्यासी मूलाधार स्थित इस शक्ति को जगाने हेतु मूलाधार बंध के अभ्यास द्वारा मूल भाग का संकुचन और आकुंचन करते हैं, फलतः यह शक्ति जाग्रत होती है और योगी या साधक को परम—आनन्द की अनुभूति कराती है।³⁵

शिवानन्दाचार्य³⁶ के अनुसार— योगी द्वारा इस मूलशक्ति पर ध्यान लगाने से वह संसार की रचना तथा विनाश करने में सक्षम हो पाता है। इसी कारण मूलाधार स्थित इस महाशक्ति को ही मूलशक्ति कहा जाता है एवं यही कारण है कि सिद्ध योगीजन इस मूलशक्ति कुण्डलिनी के जागरण हेतु प्रयत्नरत रहते हैं।

(ख) मध्य कुण्डलिनी या शक्ति— नाभिक्षेत्र में स्थित मणिपुरचक्र स्थान पर यही कुण्डलिनी 'मध्यशक्ति या मध्यकुण्डलिनी' कहलाती है।³⁹ मध्यकुण्डलिनी के चिद्रूप होने के कारण इसे जीवात्मा का वास्तविक स्वरूप कहते हैं। अविद्या के कारण अनुरक्त

³⁴ "मध्यशक्तिप्रबोधन अधःशक्तिनिकुञ्चनात्। ऊर्ध्वशक्तिनिपातेन प्राप्यते परमं पदम्॥" सिद्धसिद्धांतपद्धति 4/16

"एकैव सा मध्योर्ध्वाधःप्रभेदेन त्रिधा भिन्ना शक्तिरभिधीयते॥" सिद्धसिद्धांतपद्धति 4/17

³⁵ "बाह्येन्द्रियपारनानाचिन्तामयी सैवाधः शक्तिरुच्यते। अतएव योगिनः तस्या आकुञ्चने रताः।

यस्या आकुञ्चनं मूलाधारबन्धनात् सिद्धं स्यात्॥" सिद्धसिद्धांतपद्धति 4/18

³⁶ "सर्वशक्तिप्रसरसङ्कोचाभ्यां जगत्सृष्टिः संहतिश्च भवत्येव न सन्देहः।

तस्मात् सा मूलमित्युच्यते। अतः प्रायेण सर्वे सिद्धाः मूलाधाररता भवन्ति॥" सिद्धसिद्धांतपद्धति 4/20

जीवात्मा को यह मध्यशक्ति स्वयं के चिद्रूप प्रकाश में सदा धारण करने हेतु समर्थ होती है। बिना किसी संदेह के इस शक्ति का सम्यक् ज्ञान केवल सिद्धयोगियों को ही हो पाता है। मध्यकुण्डलिनी या मध्यशक्ति के पुनः दो भेद वर्णित है।³⁷

स्थूल/साकार/सृष्टि कुण्डलिनी— मणिपुर चक्र स्थित यह मध्यशक्ति ही शब्दात्मक दृश्य जगत की रचना करने के कारण, साकार या 'स्थूल कुण्डलिनी' कही जाती है। यही विषयों से संबंधों को त्यागकर नाभिस्थित मणिपुर चक्र में स्वकीय विस्तार में निपुणता से साधक एवं योगियों को परम आनंद तथा अखंडनीय आत्मा का बोध प्रदान कराती है।³⁸

सूक्ष्म कुण्डलिनी— तत्त्वसार ग्रंथ के अनुसार मणिपुर चक्र स्थित इस मध्यशक्ति को जब जगाया जाता है, तब यहीं स्थूल कुण्डलिनी ऊर्ध्वमुखी हो कर अखण्डस्वरूप में प्रतिष्ठित होती है, तब यह सर्वत्र वर्तमान सूक्ष्म हो जाती है अतएव 'सूक्ष्म कुण्डलिनी' कहलाती है, तथा यह सूक्ष्म रूप से अनाकार एवं सभी जगह विस्तृत रहती है। इसे केवल योग क्रिया कुशल सिद्धयोगी ही अच्छी तरह से जान पाते हैं।³⁹

(ग) ऊर्ध्व कुण्डलिनी या शक्ति— सहस्रार कमल में स्थित होने पर इसी मध्यशक्ति को 'ऊर्ध्वकुण्डलिनी' कहते हैं।³⁹ सभी प्रकार के विषयरूपी मोहमाया से ऊपर स्थित परमपद को 'ऊर्ध्व' कहते हैं तथा आदिनाथ परमेश्वर ही यह परमपद हैं। इस अखण्ड एवं अनन्त परमात्मा के स्वरूप को अभिव्यक्त करने वाली शक्ति ही 'ऊर्ध्वकुण्डलिनी या ऊर्ध्वशक्ति' कहलाती है। इस ऊर्ध्वशक्ति को ही 'पूर्ण जाग्रत कुण्डलिनी' भी कहते हैं। यह ऊर्ध्वशक्ति मूलाधार चक्र से होते हुए मणिपुर आदि सभी चक्रों का भेदन कर सहस्रार चक्र में स्थित परमपद शिव से ऐक्य होकर द्वैत भाव को नष्ट करते हुए अपने स्वरूप में

³⁷ "तरङ्गितस्वभावं जीवात्मानं वृथा भ्रमन्तमपि स्वप्रकाशमध्ये स्व-स्वरूपतया सर्वदा धारयितुं समर्था या सा मध्या शक्तिः कुण्डलिनी गीयते। स्थूल-सूक्ष्म-रूपेण महासिद्धानां प्रतीयते इति निश्चयः।।" सिद्धसिद्धांतपद्धति 4/21

³⁸ "स्थूलेति निखिलग्राह्याधारविग्राह्यस्वरूपणि पदार्थान्तरे भ्राम्यमाणा चिद्रूपा या वर्तते सा कुण्डलिनी साकारस्थूला। पुनस्त्विदमेव स्व-प्रसार-चातुर्यतया वर्तमाना योगिनां परानन्दतया कुण्डलिनी या निश्चयभूता वर्तते सा सूक्ष्मा निराकारा प्रबुद्धा महासिद्धानां मते प्रसिद्धा।।" सिद्धसिद्धांतपद्धति 4/22

³⁹ "सृष्टिः कुण्डलिनी ख्याता, द्विधा भागवती तु सा।

एकधा स्थूलरूपा च, लोकानां प्रत्यगात्मिका।।

अपरा सर्वगा सूक्ष्मा, व्याप्ति-व्यापकवर्जिता।

तस्या भेदं न जानाति, मोहितः प्रत्येयन तु।।" सिद्धसिद्धांतपद्धति 4/तत्त्वासार ग्रंथ-24

प्रतिष्ठित हो जाती है। फलतः योगी को जीवात्मा तथा परमात्मा के अखण्ड एवं व्यापक स्वरूप का बोध कराती है।

2.2.2 'घेरण्ड संहिता' के अनुसार कुण्डलिनी की संकल्पना

हठयोग के प्रमुख ग्रंथ घेरण्ड संहिता के अध्याय छः ध्यान प्रकरण के अंतर्गत कुण्डलिनी के स्वरूप एवं स्थान की चर्चा करते हुए, सूक्ष्म ध्यान के विषय के रूप में कुण्डलिनी का वर्णन किया गया है एवं अध्याय तीन मुद्रा एवं बन्ध प्रकरण के अंतर्गत कुण्डलिनी जागरण हेतु योनि मुद्रा के महत्व को समझाया गया है तथा प्रमुख रूप से 'योग का अतीन्द्रिय शरीर विज्ञान' के अंतर्गत कुण्डलिनी की अवधारणा⁴⁰ का वर्णन किया गया है। जिसके अनुसार— सामान्यतः कुण्डलिनी मूलाधार चक्र में स्थित है। प्रतीकात्मक रूप से कुण्डलिनी साँप के स्वरूप में गहन निद्रा की अवस्था में मूलाधार स्थित स्वयंभूलिङ्ग के चारों तरफ लिपटी हुई है। इसे इस पूरे ब्रह्मांड तथा मनुष्य की संपूर्ण शक्तियों जैसे— शारीरिक शक्ति, काम शक्ति, मानसिक एवं भावनात्मक शक्ति, इन्द्रियों से परे या आध्यात्मिक शक्ति का स्रोत माना गया है। यद्यपि कुण्डलिनी शक्ति एकमात्र ही है, किंतु सजगता एवं जागरण के साथ यह शक्ति जिस चक्र के द्वारा व्यक्त होती है उसी के अनुरूप भिन्न-भिन्न लक्षणों एवं गुणों को ग्रहण करती है। एकाग्रता एवं आत्मशोधन के माध्यम से सुप्तावस्था में स्थित कुण्डलिनी शक्ति को सचेतन करना तथा इसे भिन्न-भिन्न चक्रों से अवरोहण करते हुए सहस्रत्रार चक्र तक ले जाकर, इस विशुद्ध शक्ति का विशुद्ध चेतना अर्थात् परमशिव के साथ एकाकार होना ही योग का मुख्य उद्देश्य है। इस प्रकार कुण्डलिनी जाग्रत होकर भिन्न-भिन्न चक्रों को पार करते हुए सहस्रार चक्र तक ऊपर चढ़कर अपने उत्पत्ति स्रोत में मिल जाती है। यह अवस्था

⁴⁰ सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द (2012), घेरण्ड संहिता: कमेंट्री आन द योगा टीचिंग ऑफ महर्षि घेरण्ड, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— 386, 391, 341, 355, श्लोक संख्या— 6/1, 16.

“सूक्ष्मं, विन्दुमयं ब्रह्म कुण्डली परदेवता।।” घेरण्ड संहिता 6/1.

“मूलाधारे कुण्डलिनी भुजङ्गाकाररूपिणी।

तत्र तिष्ठति जीवात्मा प्रदीपकलिकाकृतिः।

ध्यायेत्तेजोमयं ब्रह्म तेजोध्यानं परात्परम्।।” घेरण्ड संहिता 6/16.

आनन्द से भरपूर उन्माद की अवस्था होती है, जिसकी प्राप्ति होने पर योगी परम विशुद्ध ज्ञान को प्राप्त कर भव बंधन से मुक्त हो जाता है।

सूक्ष्म ध्यान के विषय के रूप में कुण्डलिनी— घेरण्ड संहिता के श्लोक 6/1 के अनुसार, ध्यान के तीनों प्रकार वर्णित हैं इनमें से सूक्ष्म ध्यान की विधि का वर्णन करते हुए यह बताया गया है कि, ध्यान की प्रक्रिया में 'बिन्दुमय ब्रह्म कुण्डली शक्ति का चिंतन करना सूक्ष्म ध्यान' कहलाता है।

कुण्डलिनी का स्वरूप एवं स्थान— घेरण्ड संहिता के श्लोक 6/16 के अनुसार, कुण्डलिनी को प्रतीकात्मक रूप में सर्प के आकार का बताया गया है, तथा यह 'कुण्डलिनी' सुप्तावस्था में मूलाधार चक्र में स्थित है।

कुण्डलिनी जागरण हेतु योनि मुद्रा— योनि मुद्रा का अभ्यास करते समय 'हूँ' अथवा 'हंस' मंत्र का उच्चारण करते हुए मन में एकरूप यह भाव रखते हुए कि "मैं शिव के साथ शक्ति सम्पन्न होकर सुखपूर्वक विहार कर रहा हूँ, शिव-शक्ति के संगम से ही मैं आनन्दमय स्वयंभू ब्रह्म हो गया हूँ" कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर सहस्रार चक्र में ले जाना चाहिए तथा साथ में जीवात्मा को भी सहस्रार चक्र में ले जाना चाहिए। इस अभ्यास के फलस्वरूप किसी भी प्रकार की हत्या, सुरापान आदि पापों से छुटकारा मिल जाता है।⁴¹

2.2.3 'वशिष्ठसंहिता' के अनुसार कुण्डलिनी की संकल्पना

वशिष्ठसंहिता नामक हठयोगिक ग्रंथ के द्वितीय अध्याय में योग के दृष्टिकोण से मानव शरीर का वर्णन किया गया है जिसके अंतर्गत अन्य विषयों के साथ ही कुण्डलिनी के विषय में भी चर्चा की गई है। वशिष्ठसंहिता 15–18 में कुण्डलिनी के स्थान का वर्णन

⁴¹ सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द (2012), घेरण्ड संहिता: कमेंट्री आन द योगा टीचिंग ऑफ महर्षि घेरण्ड, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या-247, श्लोक संख्या- 3/51.

"चैतन्यमानयेद्देवीं निद्रिता या भुजङ्गिनी।

जीवेन सहितां शक्तिं समुत्थाप्य पराम्बुजे॥" घेरण्ड संहिता 3/51.

करते हुए कुण्डलिनी को परिभाषित किया गया है तथा साथ ही कुण्डलिनी के प्रतीकात्मक स्वरूप को भी समझाया गया है—

कुण्डलिनी का स्थान— महर्षि वशिष्ठ द्वारा मानवीय शरीर में कुण्डलिनी को नाभि चक्र (इसे ही मूलचक्र कहा गया है) के ऊपर स्थित बताया गया है, जो नाभिक्षेत्र के ऊपर तथा नीचे की ओर इधर-उधर फैली हुई है।⁴² यह नाभि चक्र गुदाक्षेत्र से दो अंगुली ऊपर एवं लिंग से दो अंगुली नीचे की ओर है तथा इन दोनों स्थानों के बीच के एक अंगुल स्थान पर 'देहमध्य' है। इस देहमध्य से ऊपर नौ अंगुल, चार अंगुल ऊँचा और फैला हुआ एक 'कन्द' स्थान है जिसके मध्य में 'नाभि' स्थित है।⁴³ इस नाभि स्थान से ही नाभिचक्र की उत्पत्ति होती है जिसे कुण्डलिनी का निवास स्थान माना गया है।

कुण्डलिनी की परिभाषा— वशिष्ठ संहिता के अनुसार, "अक्षर 'अ से क्ष' तक बीज वर्णों से युक्त, आठ प्रकार की प्रकृति वाली एवं आठ ही बार कुण्डलित होने के कारण 'कुण्डली' कहलाती है। यह कुण्डलिनी ही ज्ञान का मूल स्रोत है।"⁴⁴

कुण्डलिनी का प्रतीकात्मक स्वरूप— प्रतीकात्मक रूप से सदा मध्य में या नाभिचक्र में रहने वाली यह कुण्डलिनी 'अकार से क्षकार' तक बीज अक्षरों से युक्त है जो सुप्तावस्था में आठ फेरे खाये हुए अपने मुख के माध्यम से ब्रह्मद्वार को ढके हुए स्थित है। योगाभ्यास के समय जब अपान वायु के माध्यम से इस सुप्तावस्था में स्थित कुण्डलिनी को जाग्रत किया जाता है, तब वह अग्नि तत्व के साथ जागती है। मित्ररूपी अग्नि तत्व की मदद से यह कुण्डलिनी योगियों के हृदयाकाश में घूमती हुई, वायु के समान तेज गति से सुषुम्ना मार्ग में चलती है।⁴⁵

⁴² "तस्योर्ध्वं कुण्डलीस्थानं नाभेस्तिर्यगधोर्ध्वतः।।" वशिष्ठ संहिता 2/15.

⁴³ गुदात्तु द्वयलादूर्ध्वमधो मेढ्रात्तु द्वयगुलात्।
एकांगुलं तु तन्मध्ये देहमध्यमिति रितम्। वशिष्ठ संहिता 2/11.

⁴⁴ "अष्टप्रकृतिरूपाऽसावष्टधा कुण्डलीकृता।

अकारादिक्षकारान्ता कुण्डलीत्यभिधीयते।

यथावद्वायुचारं च निरुध्यैषा सदा स्थिता।।" वशिष्ठ संहिता 2/16.

⁴⁵ "मुखेन सा समावेष्ट्य ब्रह्मरन्ध्रमुखं तथा।

योगकाले त्वपानेन प्रबुद्धा सह वहिनना।।" वशिष्ठ संहिता 2/17.

2.2.4 'गोरक्षशतकम्' के अनुसार कुण्डलिनी की संकल्पना

गोरक्षशतकम् में क्रमशः 'कुण्डलिनी के स्थान की चर्चा', 'सुप्त कुण्डलिनी के प्रबोधन की प्रक्रिया' तथा 'कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के साधनभूत पाँच मुद्राओं का वर्णन' किया गया है। अतः गोरक्षशतकम् के आधार पर कुण्डलिनी का सारगर्भित वर्णन निम्नानुसार है—

कुण्डलिनी के स्थान की चर्चा— मूल रूप से कुण्डलिनी को कन्द स्थान के ऊपर स्थित बताया गया है। इस स्थान पर शक्तिरूपी कुण्डलिनी आठ बार कुण्डलित होकर सदैव सुषुम्ना नाड़ी के प्रवेश कपाट को मुख से दबाकर बंद किये हुए सुप्तावस्था में पड़ी हुई है।⁴⁶

सुप्त कुण्डलिनी के प्रबोध की प्रक्रिया— सुप्त कुण्डलिनी के प्रबोधन हेतु प्रक्रिया के अंतर्गत अग्नि तथा वायु का वर्णन किया गया है। अतः जब सुप्तावस्था में स्थित कुण्डलिनी अग्नि के संपर्क में आती हैं तथा साथ ही मानसिक रूप से श्वास या वायु आदि क्रियाओं के माध्यम से धकाने पर यह कुण्डलिनी जाग्रत होकर अपने साथ में प्रजीव को लेकर एक सूत्र की भाँति सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कर जाती है।

कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के साधनभूत— गोरक्षशतकम् नामक ग्रंथ में कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने हेतु साधन के रूप में निम्न प्रमुख पाँच मुद्राओं का वर्णन किया गया है— 1. महामुद्रा 2. नभोमुद्रा 3. उड्डियान 4. जालन्धर एवं मूल बन्ध। जो योगी इन पाँचों मुद्राओं को भलीभाँति जानता है वह अनेकानेक चमत्कारिक गुणों व शक्तियों का अधिकारी बन जाता है।

⁴⁶“कन्दोर्ध्वे कुण्डलीशक्तिरष्टधा कुण्डलीकृत।

ब्रह्मद्वारमुखं नित्यं मुखेनावृत्य तिष्ठति।।” गोरक्षशतकम्— 30.

“प्रबुद्धा वहिन्योगेन मनसा मारुता हता।

प्रजीव गुणमादाय व्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्णया।।” गोरक्षशतकम्— 31.

“महामुद्रां नभोमुद्रामुड्डियानं जलन्धरम्।

मूलबन्धं च यो वेत्तिस योगी सिद्धिभा जनम्।।” गोरक्षशतकम्— 32.

2.2.5 'शिव संहिता' के अनुसार कुण्डलिनी की संकल्पना

'शिवसंहिता' में कुण्डलिनी का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। साथ ही कुण्डलिनी के स्थान, प्रतीकात्मक स्वरूप, महत्ता तथा कुण्डलिनी जागरण के उपायों की सारगर्भित विवेचना भी की गयी है। अतः शिव संहिता में वर्णित कुण्डलिनी निम्नानुसार हैं—

कुण्डलिनी— शिवसंहिता के अनुसार, सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग में, आधारपद्म की कर्णिका में उपस्थित अत्यंत सुंदर त्रिकोणीय संरचना वाली योनि के समीप, विद्युल्लता की आकृति स्वरूप साढ़े तीन फेरे खायी हुई कुटिल एवं परम देवता रूपी कुण्डलिनी स्थित है। इस कुण्डलिनी को ही समूचे विश्व की कारणरूपा कहा गया है, जो निर्माण कार्य में सदैव अनुरक्त रहती है, स्वर द्वारा अकथनीय है तथा देवताओं द्वारा नित्य प्रणाम करने योग्य एवं वंदनीय है।⁴⁷

कन्दयोनि एवं कुण्डलिनी स्थान— गुदाक्षेत्र से दो अंगुली ऊपर एवं जननेन्द्रिय से एक अंगुली नीचे तथा इन दोनों के मध्य में पीछे की तरफ मुँह किये हुए योनिस्थान हैं, जिसके केंद्र में चार अंगुली घेरावाला समकोण के समान एक कन्द स्थित है, इसी कन्द में कुण्डलिनी शक्ति निवासरत है। यह नाग के सदृश कुण्डलिनी कुटिल अर्थात् टेढ़ी आकृति में हैं, जो सभी नाड़ियों को घेरे हुए साढ़े तीन फेरों में अपनी पूंछ को मुँह में दबाये हुए सुषुम्ना नाड़ी के गर्त में सोई हुई रहती है। यह सुप्तावस्था में कुण्डलिनी स्वयं की प्रभा से प्रकाशित होकर साँप के सदृश कन्दयोनि स्थान में स्थित होकर बीज संज्ञा वाली वाणी की देवता कहलाती है। यह कुण्डलिनी ही त्रिगुण (सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण) जन्मदात्री है।⁴⁸

⁴⁷“तस्मिन्नाधारपद्मे च कर्णिकायां सुशोभना।

त्रिकोणा वर्तते योनिः सर्वतन्त्रेषु गोपिता॥” शिव संहिता 2/22.

“तत्र विद्युल्लता कारा कुण्डली परदेवता।

सार्द्धत्रिकरा कुटिलां सुषुम्नामार्गसंस्थिता॥” शिव संहिता 2/23.

“जगत्संसृष्टि रूपा सा निर्माणे सततोद्यता।

वाचामवाच्या वाग्देवी सदा देवैर्ममस्कृता॥” शिव संहिता 2/24.

⁴⁸“गुदाद्वयंगुलतश्चोर्ध्वं मेढ्रैकांगुलतस्त्वधः।

एकज्वास्ति समं कन्दं समन्ताच्चतुरंगुलम्॥” शिव संहिता 5/77.

कुण्डलिनी जागरण के उपाय हेतु मुद्राभ्यास— शिव संहिता के अनुसार ब्रह्मद्वार के मुँह पर सुप्तावस्था में स्थित कुण्डलिनी को जगाने के अंतर्गत दस प्रकार की श्रेष्ठतम मुद्राएँ— महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, जालन्धर, मूलबन्ध, विपरीतकरणी, उड्डीयान, वज्रोली तथा शक्तिचालिनी वर्णित हैं, इन मुद्राओं का प्रयत्न पूर्वक अभ्यास करने के फलस्वरूप कुण्डली शक्ति जागती हैं जिससे साधक के अन्तःस्थित सभी पद्म अर्थात् चक्रों एवं ग्रंथियों का भेदन हो जाता है।⁴⁹

2.2.6 'हठरत्नावली' के अनुसार कुण्डलिनी की संकल्पना

'हठरत्नावली: अ ट्रीटाइज ऑन हठयोगा ऑफ श्रीनिवासयोगी', नामक हठयोगिक ग्रंथ के द्वितीय अध्याय में वर्णित 'महामुद्रा', 'वज्रोली मुद्रा' एवं 'शक्तिचालन मुद्रा' के अभ्यास का कुण्डलिनी शक्ति पर पड़ने वाले प्रभाव के अंतर्गत कुण्डलिनी की चर्चा की गयी है, यहाँ संक्षिप्त रूप में इन तीनों मुद्राओं के अभ्यास के द्वारा कुण्डलिनी के स्वरूप व जागरण को स्पष्ट रूप से समझाया गया है, यहाँ कुण्डलिनी शक्ति की तुलना सर्प से की गयी है, साथ ही कुण्डलिनी जागरण के फलस्वरूप अलौकिक शक्तियों एवं सिद्धियों की प्राप्ति का वर्णन किया गया है एवं अन्त में कुण्डलिनी के प्रचलित 27 पर्यायवाची नामों का उल्लेख किया गया है जिनमें से 'सरस्वती' व 'शक्ति' नाम से कुण्डलिनी को बार—बार संबोधित किया गया है।

“पश्चिमाभिमुखी योनि गुदमेढानतरालगा।
तत्र कन्दं समाख्यातं तत्रास्ते कुण्डली सदा।।” शिव संहिता 5/78.
“संवेष्ट्य सकलानाडीः सार्धत्रिकुटिलाकृतिः।
मुखे निवेश्य सा पुच्छं सुषुम्णा विवरे स्थिता।।” शिव संहिता 5/79.
“सुप्ता नागोपमा ह्येषा स्फुरन्ती प्रभया स्वया।
अहिवत्सन्धिसंस्थाना वाग्देवी बीजसंज्ञिका।।” शिव संहिता 5/80.
“ज्ञेया शक्तिरियं विष्णोर्निर्भरा स्वर्णभास्वरा।
सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणत्रयप्रसूतिका।।” शिव संहिता 5/81.
⁴⁹“सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि च।।” शिव संहिता 4/21.
“तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुं मीश्वरीम्।
ब्रह्मद्वारमुखे सुप्तां मुद्राभ्यासं समाचरेत्।।” शिव संहिता 4/22.
“महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी।
जालन्धरो मूलबन्धो विपरीत कृतिस्तथा।।” शिव संहिता 4/23.
“उड्डीयानं च वज्रोली दशमं शक्तिचालनम्।
इदं हि मुद्रादशकं मुद्राणामुत्तमोत्तमम्।।” शिव संहिता 4/24.

महामुद्रा द्वारा कुण्डलिनी जागरण— हठरत्नावली के अनुसार— 'बायीं पैर की एड़ी से पेरिनियम पॉइंट को दबाकर एवं दाहिने पैर को फैलाएं रखकर दोनों हाथों से दाहिने पैर को पकड़ते हुए सांस लेकर जालंधर बंध लगाना 'महामुद्रा' कहलाती है। इस महामुद्रा के अभ्यास के परिणामस्वरूप मुख्यतः 'कुण्डलिनी शक्ति' उसी प्रकार सीधी हो जाती है जैसे कि किसी डंडे से मारने पर सर्प एकदम सीधा हो जाता है। अतः अन्य हठयोगिक ग्रंथों के समान ही हठरत्नावली में भी कुण्डलिनी को सर्प की संज्ञा दी गयी है। साथ ही महामुद्रा के अभ्यास से इड़ा तथा पिंगला दोनों नाड़ियों की कल्पना का अंत हो जाता है, ऐसे व्यक्ति के लिए निषिद्ध भोजन जैसा कुछ भी नहीं होता, वह घातक विष भी दूध की भाँति पच जाता है।⁵⁰

वज्रोली मुद्रा द्वारा कुण्डलिनी जागरण— हठरत्नावली में वज्रोली मुद्रा को कुण्डलिनी शक्ति के जागरण में सहायक माना है। हठरत्नावली के अनुसार— 'वज्रोली मुद्रा के अभ्यास के द्वारा योगी अपनी शरीरस्थ नाड़ियों को अच्छी तरह से साफ करता है, और प्रमुख वायु 'प्राण और अपान' को एक करता है।⁵¹

शक्तिचालन मुद्रा द्वारा कुण्डलिनी जागरण— हठरत्नावली⁵² में बताया गया है कि, 'जैसे कोई सोये हुए नाग को पूँछ से पकड़कर ऊपर खींच लेता है, उसी प्रकार कुण्डली को उसकी नींद से जगाना चाहिए, जिससे वह अचानक उठ जाती है।' हठरत्नावली⁵³ के अनुसार, यदि योगी या अभ्यासी निडर होकर छः घण्टे तक शक्तिचालन मुद्रा का अभ्यास करता है, तो कुण्डली थोड़ा ऊपर उठती है और सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करती है। इस

⁵⁰ "यथा दण्डाहतः सर्पो दण्डाकारः प्रजायते।

ऋज्वीभूता तथा शक्तिः कुण्डली सहजा भवेत्॥" हठरत्नावली 2/38.

"तथा सा मरणावस्था जायते द्विपुटीस्थिता॥" हठरत्नावली 2/39.

"न हि पथ्यमपथ्यं वा रसाः सर्वेऽपि नीरसाः।

अपि भुक्तं विषं घोरं पीयूषमिव जीर्यते॥" हठरत्नावली 2/40.

⁵¹ "कुण्डलीबोधनं सम्यक् नाडीनां परिशोधनम्।

अपानप्राणयोरैक्यं कार्यं वज्रोलीकर्मणा॥" हठरत्नावली 2/82.

⁵² "पुच्छे प्रगृह्य भुजर्गी सुप्तामुदबोधयेदभीः।

निद्रां विहायसा ऋज्वी ऊर्ध्वमुत्तिष्ठते हठात्॥" हठरत्नावली 2/118

"मुहुर्तद्वयपर्यन्तं निर्भीतश्चालयेदसौ।

⁵³ ऊर्ध्वमाकृष्यते किञ्चित्सुषुम्णां कुण्डलीगताम्।

षण्मासाच्चालनेनैव शक्तिस्तस्योर्ध्वगा भवेत्॥" हठरत्नावली 2/121.

"सुर्येण पुरयेद्वायुं सरस्वत्यास्तु चालयेत्।

शब्दगर्भाचालनेन योगी रोगैः प्रमुच्यते॥" हठरत्नावली 2/122.

प्रकार केवल छः महीने के अभ्यास से ही शक्ति (कुण्डली) ऊपर की ओर उठती है। शक्तिचालन मुद्रा के अभ्यास के अंतर्गत संक्षिप्त में यह बताया गया है कि दाहिनी नासिका से वायु अंदर लेनी चाहिए और जीभ के हेरफेर से सरस्वती (कुण्डली) को सक्रिय करना चाहिए। इस प्रकार योगी स्वयं को रोगों से मुक्त कर लेता है। हठरत्नावली⁵⁴ के अनुसार, एक योगी, जो शक्ति (कुण्डली) को उत्तेजित करता है वह अलौकिक शक्तियों या सिद्धियों को प्राप्त करता है। वह आसानी से काल या मृत्यु को पार कर जाता है। हठरत्नावली⁵⁵ के अनुसार, जिस प्रकार सर्पों के स्वामी पृथ्वी को उसके समस्त वनों और पर्वतों के साथ सहारा देते हैं, उसी प्रकार कुण्डलिनी, योग के संपूर्ण विज्ञान का आधार है।

कुण्डलिनी के पर्यायवाची नाम— हठरत्नावली⁵⁶ ग्रंथ के अनुसार, “फणी, कुण्डलिनी, नागी, चक्री, वक्री, सरस्वती, ललना, रसना, क्षत्री, ललाटी, शक्ति, शंखिनी, रज्जी, भुजंगी, शेषा, कुण्डली, सर्पिणी, मणि, आधारशक्ति, कुटिला, कराली, प्राणवाहिनी, अष्टवक्रा, षडाधारा, व्यापिनी, कलनाधरा, कुरी” ये सभी 27 नाम कुण्डलिनी के प्रचलित पर्यायवाची शब्द हैं।

2.2.7 ‘हठप्रदीपिका’ के अनुसार कुण्डलिनी की संकल्पना

हठप्रदीपिका⁵⁷ नामक प्रमुख हठयोगिक ग्रंथ के तृतीय उपदेश के अंतर्गत कुण्डली को परिभाषित करते हुए कुण्डलिनी जागरण के उपायों के साथ इनसे प्राप्त परिणामों की चर्चा की विस्तृत विवेचना की गयी है। इसी प्रकार चतुर्थ उपदेश⁵⁸ के अनुसार— क्रमशः

⁵⁴ “येन सञ्चालिता शक्तिः स योगी सिद्धिभाजनः।

किमत्र बहुनोक्तेन मृत्युं जयति लीलया।।” हठरत्नावली 2/123.

⁵⁵ “सशैलवनधात्र्यास्तु यथाधारोऽहि नायकः।

अशेषयोगतन्त्राणां तथाधारो हि कुण्डली।।” हठरत्नावली 2/124.

⁵⁶ “फणी कुण्डलिनी नागी चक्री वक्री सरस्वती।

ललना रसना क्षत्री ललाटी शक्तिः शंखिनी।।” हठरत्नावली 2/125.

“रज्जी भुजंगी शेषा च कुण्डली सर्पिणी मणिः।

आधारशक्तिः कुटिला कराली प्राणवाहिनी।।” हठरत्नावली 2/126.

“अष्टवक्रा षडाधारा व्यापिनी कलनाधरा।

कुरीत्येवं च विख्याताः शब्दाः पर्यायवाचकः।।” हठरत्नावली 2/127.

⁵⁷ दिगम्बरजी, स्वामी, झा डा. पीताम्बर, (2008), *हठप्रदीपिका*, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति लोनावला, पुणे, भारत, पृष्ठ संख्या— 71–74, 115–126 श्लोक सं. 3/1–5, 104–123.

⁵⁸ दिगम्बरजी, स्वामी, झा डा. पीताम्बर, (2008), *हठप्रदीपिका*, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति लोनावला, पुणे, भारत, पृष्ठ संख्या— 127, 131 श्लोक सं. 4/1, 11.

योगियों द्वारा “बिंदु, नाद एवं कला के एक्य की अनुभूति” को ही ‘कुण्डलिनी योग’ कहा गया है तथा इसके जागरण के पश्चात् योगी संपूर्ण क्रियाओं से मुक्त होकर अपने आप ही सहजावस्था को प्राप्त कर लेता है।⁵⁹ अतः हठप्रदीपिका में कुण्डलिनी की विस्तृत विवेचना की गई है। हठप्रदीपिका के अनुसार संपूर्ण योग—तंत्रों का आधार रूप कुण्डलिनी हैं जिसकी तुलना पृथ्वी के मूलभूत शेषनाग से की गयी है। अतः योगाभ्यासों के आधार रूप कुण्डलिनी से तात्पर्य यह है कि संपूर्ण योग—तंत्रों का उद्देश्य साधक में उपस्थित सुप्त शक्तियों को जाग्रत करना है।⁵⁹

कुण्डलिनी का स्वरूप— इड़ा या गंगा तथा पिंगला या यमुना नदी के मध्य में स्थित ‘तपस्विनी—बालरण्डा’ अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति सर्प की भाँति टेढ़ी—मेढ़ी आकृति लिये हुए कन्द के ऊपरी क्षेत्र में स्थित क्लेशशून्य अमरपद या मोक्ष के मार्ग को अपने मुख से ढके हुए सुप्तावस्था में रहती है। इसे पुरुषार्थ के माध्यम से जाग्रत करना चाहिए, क्योंकि यही भगवान विष्णु का परमपद है। कुण्डलिनी ही योगियों के लिए मोक्षप्रदाता एवं मूढ़ व्यक्तियों के लिए यही बंधन का कारण है। कुण्डलिनी का जानकार ही वास्तव में योगी है। कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत होने पर मुक्ति की प्राप्ति होती है।⁶⁰

कुण्डलिनी जागरण के उपाय— हठप्रदीपिका के अनुसार— सोती हुई कुण्डलिनी या सर्पिणी को उसकी पूँछ से पकड़कर जगाने पर यह शक्ति नींद से जागकर अचानक ऊपर की तरफ उठती है। कुण्डलिनी के जागरण के उपायों के अंतर्गत वज्रासन एवं

⁵⁹ दिगम्बरजी, स्वामी, झा डा. पीताम्बर, (2008), *हठप्रदीपिका*, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति लोनावला, पुणे, भारत, पृष्ठ संख्या— 71.

“सशैलवनधात्रीणां यथाधारोऽहिनायकः।

सर्वोषां योगतन्त्राणां तथाधारो हि कुण्डली॥” हठप्रदीपिका 3/1

⁶⁰ “येन मार्गेण गन्तव्यं ब्रह्मस्थानं निरामयम्।

मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी॥” हठप्रदीपिका 3/102.

“कन्दोर्ध्वं कुण्डलीशक्तिः सुप्ता मोक्षाय योगिनाम्।

बन्धनाय च मूढानां यस्तां वेत्ति स योगवित्॥” हठप्रदीपिका 3/103.

“कुण्डली कुटिलाकारा सर्पवत् परिकीर्तिता।

सा शक्तिश्चालिता येन स मुक्तो नात्र संशयः॥” हठप्रदीपिका 3/104.

“गङ्गायमुनयोर्मध्ये बालरण्डा तपस्विनीम्।

बलात्कारेण गृह्णीयात् तद्विष्णोः परमं पदम्॥” हठप्रदीपिका 3/105

अनन्तर भस्त्रिका कुम्भक का वर्णन किया गया है इसके अभ्यास से कुण्डलिनी शीघ्रता से जागती है।⁶¹

शिव संहिता के समान ही हठप्रदीपिका में भी सुषुम्ना नाड़ी के मूलस्थान पर सुप्तावस्था में स्थित कुण्डलिनी को जगाने हेतु दस प्रकार की यौगिक मुद्राएँ— महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, जालन्धरबन्ध, मूलबन्ध, विपरीतकरणी, उड्डीयान, वज्रोली तथा शक्तिचालिनी वर्णित हैं। इन मुद्राओं का प्रयत्न पूर्वक अभ्यास करने के फलस्वरूप कुण्डली शक्ति जागती है जिससे साधक जरा—मरण से छुटकारा पाकर दिव्य ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है।⁶²

कुण्डलिनी जागरण के परिणाम— गुरु की कृपा से जब सुप्तावस्था में स्थित कुण्डलिनी जागती है उस समय सभी ग्रंथियाँ और छह चक्र खुल जाते हैं, तथा सुषुम्ना नाड़ी एक राजमार्ग की भाँति खुल जाती है। सभी प्रकार के रोगों से मुक्त होकर साधक का चित्त शांत हो जाता है व साधक जन्म—मरण के बंधन से सदैव के लिए मुक्त हो जाता है।⁶³

कुण्डलिनी के पर्यायवाची नाम— हठप्रदीपिका में कुण्डलिनी के पर्यायवाची शब्दों का वर्णन किया गया है— कुटिलाङ्गी, कुण्डलिनी, भुजङ्गनी, शक्ति, ईश्वरी, कुण्डली, अरुन्धती ये सभी कुण्डलिनी के पर्यायवाची शब्द कहलाते हैं।⁶⁴

⁶¹ दिगम्बरजी, स्वामी, झा डा. पीताम्बर, (2008), *हठप्रदीपिका*, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति लोनावला, पुणे, भारत, पृष्ठ संख्या— 117,119, श्लोक सं. 3/107, 111.

⁶² दिगम्बरजी, स्वामी, झा डा. पीताम्बर, (2008), *हठप्रदीपिका*, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति लोनावला, पुणे, भारत, पृष्ठ संख्या— 74, श्लोक सं. 3/5—6.

“तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुमीश्वरीम्।
ब्रह्मद्वारमुखे सुप्तां मुद्राभ्यासं समाचरेत्॥” हठप्रदीपिका 3/5
“महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी।
उड्डीयानं मूलबन्धस्ततो जालन्धराभिधः॥
करणी विपरीताख्या वज्रोली शक्तिचालनम्॥” हठप्रदीपिका 3/6.

⁶³ “सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि च॥” हठप्रदीपिका 3/2
“प्राणस्य शून्यपदवी प्राणस्य राजपथायते।
तदा चित्तं निरालम्बं तदा कालस्य वञ्चनम्॥” हठप्रदीपिका 3/3

⁶⁴ “कुटिलाङ्गी कुण्डलिनी भुजङ्गी शक्तिरीश्वरी।
कुण्डल्यरुन्धती चैते शब्दाः पर्यायवाचकाः॥” हठप्रदीपिका 3/100.

2.2.8 'कुण्डलिनी योग' के अनुसार कुण्डलिनी की संकल्पना

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती कृत 'कुण्डलिनी योग' पुस्तक में कुण्डलिनी की विस्तृत विवेचना की गयी है। जिसके अंतर्गत यहाँ कुण्डलिनी क्या हैं, कुण्डलिनी का शरीर—विज्ञान तथा मस्तिष्क से क्या संबंध है, कुण्डलिनी जागरण के उपायों का वर्णन, कुण्डलिनी जागरण के पूर्व तैयारी किस प्रकार की जाए, कुण्डलिनी जागरण के दौरान आहार व्यवस्था तथा कुण्डलिनी जागरण के दौरान ध्यान रखने योग्य सावधानियाँ एवं दुष्प्रभाव तथा कुण्डलिनी जागरण के चार स्वरूप, जागरण के फलस्वरूप कुण्डलिनी का अवरोहण, कुण्डलिनी जागरण के अनुभवों का विस्तृत वर्णन किया गया है।⁶⁵ इसी प्रकार 'कुण्डलिनी योग' के तृतीय खण्ड में कुण्डलिनी योग के अभ्यासों का विस्तृत वर्णन निम्न बिंदुओं के अंतर्गत किया गया है— इस हेतु नियम एवं तैयारी, आसनों का वर्णन, चक्र साधना सत्र के अंतर्गत आज्ञा चक्र, मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपुर चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्धि चक्र, हेतु अभ्यासों का वर्णन किया गया है, साथ ही संपूर्ण चक्रों की सजगता हेतु अभ्यासों एवं साधना कार्यक्रमों तथा क्रियायोग के अभ्यास का विस्तृत विवेचन भी किया गया है।⁶⁶ 'कुण्डलिनी योग' के चतुर्थ खण्ड में कुण्डलिनी अनुसंधान पर भी विशेष चर्चा की गयी है।⁶⁷

2.2.9 'लययोग' के अनुसार कुण्डलिनी की संकल्पना

'संत—काव्य में योग का स्वरूप' नामक ग्रंथ के चतुर्थ अध्याय: 'योग की व्याख्या एवं विभिन्न योग—पद्धतियाँ' में वर्णित 'लययोग' के अंतर्गत, विस्तार से कुण्डलिनी के प्रतीकात्मक स्वरूप, कुण्डलिनी उत्थान की क्रिया एवं फल आदि की संक्षिप्त विवेचना की गयी है⁶⁸—

⁶⁵ सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द (2005) *कुण्डलिनी योग*, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या—105.

⁶⁶ सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द (2002) *कुण्डलिनी योग*, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— 203—291.

⁶⁷ सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द (2002), *कुण्डलिनी योग*, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— 327—426.

⁶⁸ सिंह. आर., (1977), *संत—काव्य में योग का स्वरूप*, योग की व्याख्या व विभिन्न योग—पद्धतियाँ, लययोग, अनुपम प्रकाशन, पटना, पृष्ठ संख्या 240—244.

आधारकमल की कर्णिका में स्थित त्रिकोणीय संरचना के बीच में अधोमुख अवस्था में लिंगरूप में शिव विद्यमान है। इस स्वयंभूलिंग के ऊपर की ओर मृणालतंतु के समान चमकती हुई सुप्त 'कुण्डलिनी' स्थित है जो ब्रह्मद्वार के मुँख को ढके हुये है। इड़ा तथा पिंगला के बीच में यह कुण्डलिनी विद्यमान रहती है। यह कुण्डलिनी ही मूलाधार चक्र में चमकती हुई श्वसन प्रक्रियाँ द्वारा संसार के समस्त जीवों को प्रतिधारण किये हुये है। यह कुण्डलिनी व्यक्ति में विश्व की समस्त शक्तियों के केंद्र रूप है। कुण्डलिनी ही शब्दब्रह्म हैं तथा प्रत्येक मंत्र इसके स्वरूप की ही विभूति है, इसी कारण यह 'मंत्र-देवता' कहलाती है। वर्णमयी एवं सभी की माता होने की वजह से यह कुण्डलिनी 'मातृका' भी कहलाती है। पूरे संसार की भव्य चेतना होने के कारण यह कुण्डलिनी 'जगच्चैतन्य' कही जाती है। यह कुण्डलिनी, परमेश्वरी, सृष्टिरूपा, सूक्ष्मातिसूक्ष्मा, एवं सृष्टिस्थितिलयात्मिका है। यह बंधन का कारणस्वरूप अविद्या एवं विद्याशक्ति स्वरूप मोक्षप्रदायिनी भी यही है। कुण्डलिनी का स्वरूप-विभूति मंत्र होने के कारण इसके जागरण हेतु मंत्र प्रयोगात्मक है। मंत्र, वेद और तत्त्व इस कुण्डलिनी के सार है। कुण्डलिनी ही सूर्य, चंद्रमा तथा अग्नि के समान शक्तियों की उत्पादक है। मानवीय शरीर की समस्त रचनात्मक शक्ति का सबसे अधिक शक्तिशाली प्रदर्शन कुण्डलिनी को माना जाता है। कुण्डलिनी, छह चक्रों व उनकी स्वरूप-विभूति है। कुण्डलिनी को चेतना, प्राणशक्ति, महाप्राणदेवता तथा नादात्मा भी कहा गया है, इसी के कारण इस समस्त संसार तथा प्राणियों का अस्तित्व है। सभी पदार्थों का शरणस्थान होने के कारण कुण्डलिनी का अन्य नाम 'आधारशक्ति' है। तांत्रिक ग्रंथों में कुण्डलिनी के जागरण हेतु अनेकों विधियों की विस्तार पूर्वक विवेचना की गयी है। कुण्डलिनी को जाग्रत करने पर यह निराधार होकर विशुद्ध चित् स्वरूप में स्थित हो जाती है। कुटिलांगी, शक्तिरीश्वरी, भुजंगी, अरुंधती इत्यादि कुण्डलिनी के पर्यायवाची शब्द या अन्य नाम हैं।

2.2.10 पौराणिक कथाओं में कुण्डलिनी की संकल्पना

वर्तमान समय में हम पाते हैं कि प्राचीन योगियों, तांत्रिकों एवं कुण्डलिनी के साधकों, ऋषि-मुनियों द्वारा कुण्डलिनी जैसे अनेकों रहस्यमय विषयों पर साझा किये गये उनके अनुभवों को पौराणिक कथाओं के रूप में संजोये रखा गया है। इन्हीं पौराणिक कथाओं में हमें कुण्डलिनी के प्रतीकात्मक स्वरूप के दर्शन प्राप्त होते हैं। संपूर्ण संसार के किसी भी भाग में कुण्डलिनी के विषय में प्रचलित पौराणिक कथाओं के अंतर्गत सर्प-कथाओं का विस्तार समावेश है। इनमें अनेक कथाओं का सम्बन्ध सीधा कुण्डलिनी शक्ति से है। इन पौराणिक कथाओं में अधिक उलझने से बचते हुए शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत शोधप्रबंध में 'पौराणिक कथाओं में कुण्डलिनी' के माध्यम से कुण्डलिनी के प्रतीकात्मक स्वरूप के संदर्भ में कुछ ही उदाहरण दिये जा रहे हैं।

प्राचीन मिस्र में प्रचलित पौराणिक कथाओं के अनुसार कुण्डलिनी को रीढ़ की हड्डी में ऊपर की ओर उठाते हुए सॉप के रूप में वर्णित किया गया था। प्राचीन मिस्र के रहस्यवादी लोग अपने सिर पर एक प्रकार की पगड़ी धारण करते थे, जिसमें भ्रूमध्य को आज्ञा-पद्म कहते हैं जिसका स्थान मेरुदंड का शीर्ष भाग होता था। तथा यूरेअस कुण्डलिनी के आरोहण का प्रतीक है। अमेरिकन इंडियन सहित विश्व के अनेक समुदायों के लोगों द्वारा भी इस तरह की पगड़ी का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार कुण्डलिनी के संदर्भ में एक अन्य प्रसिद्ध कथा बाइबिल में भी वर्णित है। बाइबिल में उस सर्प को ही कुण्डलिनी कहा गया है, जो उच्चतर चेतना का प्रतीक रूप है। जेनेसिस (3.1) के अनुसार वह सॉप उस उद्यान के अन्य सभी पशुओं से बहुत छोटा था, इसे ही चेतना कहा गया है। वास्तव में अदम और ईव भावातीत परम अवस्था में स्थित थे और इसके ही प्रतीक के रूप में ईडन के उद्यान को धरती का स्वर्ग स्थान कहा गया है। परंतु सांसारिक माया से प्रभावित होकर उन्होंने ज्ञान रूपी वृक्ष के फल का भक्षण किया जो इष्टकारी और अनिष्टकारी दोनों प्रकार के प्रभाव डालने वाला था इसके परिणामस्वरूप

ही उनका पतन मूलाधार चक्र तक हुआ था। यहाँ पर ईडन के उद्यान का जीवन—वृक्ष सुषुम्ना नाड़ी का प्रतीत है।

इतिहास के पन्नों को पलटने पर भी अनेकों स्थान पर कुण्डलिनी का प्रतीकात्मक वर्णन मिलता है। कुण्डलिनी के प्रतीकों का विस्तृत क्षेत्र देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी जड़े इतिहास के गर्भ में अति गहराई तक पहुँची हुई है। बहुतायत लोगों के विश्वास मतानुसार “बोपल बुह” को संसार की सर्वाधिक प्राचीन पुस्तक माना गया है जो आज से हजारों वर्ष पूर्व मध्य अमेरिका के मायान जाति के लोगों द्वारा लिखी गई थी। इस पुस्तक में “क्वेजालकोटल” नामक देवता का चित्र है। उस चित्र में देवता के सिर पर असंख्य किरणों से युक्त सूर्य चित्रित है। उसके साथ सर्प को भी प्रतीकात्मक रूप से दर्शाया गया है। इस चित्र को देखने पर यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि वह सहस्रार (सहस्रत्रदलयुक्त कमल) चक्र और कुण्डलिनी का ही प्रतीत है।

ड्रइड्स तथा ऑर्फिक सहित विश्व के सभी प्राचीन रहस्यवादी सम्प्रदाय स्वयंभूलिंग स्वरूप सर्प की उपासना करते थे। प्राचीन काल के लोग सर्प को विवेक और ज्ञान का प्रतीक समझते थे। यहाँ तक कि ईसा मसीह भी अपने शिष्यों को सर्प की तरह विवेकशील होने का उपदेश दिया करते थे। इन सभी लक्षणों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध कुण्डलिनी शक्ति से है। यह केवल इसलिए नहीं था कि सर्प दीर्घायु होता है, वरन् इसका कारण यह है कि वह कुण्डलिनी का प्रतीक है, पर्याय है।

ऊर्जा और शक्ति के रूप में सर्प को संबंधित माना जाता है। सर्प विष को धारण किये हुये होता है और यह प्राणघातक भी होता है। यह तथ्य विवेक और ज्ञान के प्रतीकरूपी सर्प से मेल नहीं खाता। अतः यहाँ इसें विरोधाभास प्रतीत होता है। परन्तु कुण्डलिनी के संदर्भ में इसे सरलता से समझाया जा सकता है जैसे— कुण्डलिनी का मूलाधार चक्र की ओर अवरोहण भी सजगता एवं चेतनशीलता के निचले स्तर, असन्तुलन तथा संकीर्णता का द्योतक है और यही घातक एवं हानिकारक है। कुण्डलिनी के पुनरारोहण या उर्ध्वारोहण का तात्पर्य ज्ञान से है। अतः कुण्डलिनी (सर्प) के लिए

निर्धारित लक्षण व्यक्ति के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है, अर्थात् व्यक्ति यदि चाहें तो इसे मूलाधार चक्र की ओर अवरोहण के संदर्भ में देखें अथवा सहस्रार चक्र से मूलाधार चक्र की ओर अवरोहण के संदर्भ में। यह अवरोहण ही सर्प के घातक पक्ष से संबंधित है।

अतएव उपरोक्त वर्णित इस प्रकार की अनेकों पौराणिक कथाएँ वर्तमान में भी प्रचलित हैं जिसमें सृष्टि के सृजनकाल में पृथ्वी की ओर अवरोहण करते हुए सर्प का वर्णन किया गया है। विभिन्न चक्रों से होते हुए कुण्डलिनी का यह अवरोहण मनुष्य सहित, नाम और रूप वाली समस्त विषय-वस्तुओं के इस धरती पर उत्पत्ति का प्रतीक है। मनुष्यों में कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार चक्र में निवास करती है और अन्य जीवधारियों तथा पदार्थों में यह कुण्डलिनी और भी निम्नतम स्तर के चक्रों तक अवरोहण करती है। इस प्रकार पौराणिक कथाओं के हमें कुण्डलिनी के स्वरूप व महात्म्य का स्पष्ट वर्णन मिलता है।

2.3 कुण्डलिनी का चक्र और नाड़ियों से संबंध



(चित्र संख्या- 10)

प्रस्तुत शोध प्रबंध के प्रथम अध्याय 'चक्र का सामान्य परिचय' के अंतर्गत चक्र की अवधारणा को विस्तृत रूप से स्पष्ट किया गया है तथा साथ ही संक्षिप्त में चक्र और नाड़ियों के संबंध में चर्चा की गयी है। अतः उपरोक्त वर्णनानुसार नाड़ी का शाब्दिक अर्थ है 'एक चैनल, नाली, प्रवाह या धारा'। यह नाड़ियाँ भौतिक शरीर के स्तर पर शरीर की नसों और धमनियों का वर्णन करती हैं एवं तंत्रिकाओं के रूप में विद्युत संदेशों को शरीर के विभिन्न अंगों से मस्तिष्क तक ले जाती हैं। स्वामी सत्यानंद सरस्वती के अनुसार "कुण्डलिनी योग के अनुसार मानवीय शरीर के अंदर नाड़ी-मण्डल शक्ति प्रवाह के माध्यम हैं जिनमें शारीरिक और मानसिक दोनों ऊर्जाओं का संचालन होता है।"⁶⁹ यद्यपि योग के दृष्टिकोण से चक्रों की भाँति ये नाड़ियाँ भी भौतिक शरीर का अंग न होकर वे सूक्ष्म वाहिकायें हैं जिनसे प्राण शक्ति प्रवाहित होती है। पारंपरिक शिक्षण या शास्त्रोक्तानुसार सूक्ष्म शरीर में 72,000 नाड़ियों का वर्णन मिलता है तथा शिव संहिता नामक हठयोगिक ग्रंथ में 350,000 नाड़ियों का वर्णन किया गया है, इनमें से दस नाड़ियाँ प्रमुख हैं, कुण्डलिनी एवं योग में इन दस नाड़ियों में भी तीन नाड़ियाँ— 'इडा, पिंगला एवं सुषुम्ना' अत्यन्त महत्व रखती हैं।⁷⁰ ग्रंथों में इन तीनों नाड़ियों के लिए 'त्रिवेणी' शब्द का प्रयोग हुआ है। इन तीन प्रमुख नाड़ियों में भी सबसे अधिक महत्वपूर्ण नाड़ी— 'सुषुम्ना' है जिसके अधीन अन्य दोनों नाड़ियाँ— इडा तथा पिंगला रहती हैं।

सुषुम्ना नाड़ी जिसे केंद्रीय मार्ग कहा जाता है, पुरुषों के पेरेनियम संरचना के समीप तथा महिलाओं के गर्भाशय ग्रीवा में रीढ़ की हड्डी के आधार के पास से अर्थात् मूलाधार से चलती हुई सुषुम्ना नाड़ी शरीर के माध्यम से सिर के शीर्ष भाग तक जाती है, जो सहस्रार चक्र पर समाप्त होती है। अतः सुषुम्ना नाड़ी अत्यंत ही सूक्ष्म है जो सूक्ष्मतम नली के समान गुदाद्वार के निकट से मेरुदण्ड से होती हुई सहस्रार चक्र तक जाती है।⁷⁰ जिस स्थान से सुषुम्ना नाड़ी प्रारंभ होती है उस स्थान के बाँई ओर से इडा तथा दाँई ओर से पिंगला नाड़ी भी ऊपर की ओर जाती है, ये तीनों नाड़ियाँ आज्ञा चक्र

⁶⁹ सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द (2002), *कुण्डलिनी योग*, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— 363.

⁷⁰ स्वामी, रामदेव (2009), *प्राणायाम रहस्य (वैज्ञानिक तथ्यों के साथ)*, दिव्य प्रकाशन दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार, पृष्ठ संख्या— 107.

में मिलती है। अतएव मूलाधार क्षेत्र को 'मुक्तत्रिवेणी' तथा आज्ञा चक्र को 'युक्तत्रिवेणीय या त्रिकूट' भी कहा जाता है क्योंकि आज्ञाक्षेत्र में ही इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना इन तीनों प्रमुख नाड़ियों का संगम होता है। सुषुम्ना नाड़ी इड़ा-पिंगला के मध्य संतुलन का पर्याय है।

सुषुम्ना नाड़ी एक अत्यंत सूक्ष्म नली के समान है जिसके अंदर की ओर एक और अत्यंत सूक्ष्म नली होती है, जिसे 'वज्र' नाड़ी कहते हैं। वज्रनाड़ी में भी अत्यंत सूक्ष्म 'चित्रणी' नाड़ी है तथा चित्रणी नाड़ी में भी मकड़ी के जाले से भी बहुत पतली 'ब्रह्म नाड़ी' गुजरती है जो कि कुण्डलिनी शक्ति का वास्तविक मार्ग है। इन समस्त नाड़ियों का ज्ञान केवल योगियों को ही है। ये समस्त नाड़ियाँ रीढ़ की हड्डी से सम्बन्धित हैं। जिन विशेष स्थानों पर इन नाड़ियों का मिलन होता है वे ही चक्र हैं। सभी चक्र सीधे इड़ा तथा पिंगला नाड़ियों के माध्यम से उस विशेष क्षेत्र में शरीर के प्रत्येक अंग से जुड़े होते हैं। चक्रों के संबंध में यह पाया गया है कि सुषुम्ना नाड़ी एक सूक्ष्म प्रतीकात्मक पथ के रूप में समस्त प्रमुख चक्रों से संयुक्त है, जिससे होकर कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार से सहस्रार चक्र तक की अपनी आरोहण-यात्रा पूर्ण करती है। कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत होने पर यह सुषुम्ना नाड़ी में होकर ही गति करती है, यही कारण है कि कुण्डलिनी जागरण के समय कमर एवं गर्दन को एक सीधी रेखा में इसलिए रखा जाता है। जब प्राणों का संचार होता है, तो वह नाड़ियों के द्वारा सारे शरीर में गतिमान हो सके जिस के द्वारा मनुष्य के जीवन का सहजता पूर्ण निर्वाह होता रहें।

जागृति शब्द का प्रयोग तीन अलग-अलग संदर्भों में किया जाता है— चक्रों का जागरण, सुषुम्ना का जागरण और कुण्डलिनी का जागरण। सर्वप्रथम चक्रों का जागरण होना चाहिए, फिर सुषुम्ना का जागरण और इन दोनों के बाद ही कुण्डलिनी का जागरण होता है। सुषुम्ना संवाहक चैनल हैं जिनसे होकर कुण्डलिनी के जागरण से उत्पन्न ऊर्जा, विभिन्न अंगों और क्षेत्रों में विस्तृत की जाती है, जो शरीर है।

योगाभ्यास का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य शरीर के माध्यम से और विशेष रूप से रीढ़ की हड्डी के आधार से प्राण के मुक्त प्रवाह हेतु इन प्रमुख तीनों नाड़ियों को खोलना है, क्योंकि योग सिद्धांत के अनुसार जब इड़ा और पिंगला नाड़ी खुली हों और शरीर में प्राण स्वतंत्र रूप से प्रवाहित हो तभी सुषुम्ना नाड़ी में प्राण प्रवाहित हो सकता है। जैसे ही ये नाड़ियाँ खुलती हैं वे शरीर के महान ऊर्जा केंद्रों अर्थात् चक्रों के विकास में सहायक होती हैं। कुण्डलिनी वह मनो-आध्यात्मिक ऊर्जा या बल है जो मूलाधार चक्र में सुप्तावस्था में स्थित रहती है। योग की प्रमुख शाखाओं जैसे— राजयोग, हठयोग, कुण्डलिनी योग एवं तंत्रयोग में कुण्डलिनी को जीवन शक्ति, प्राण-शक्ति के रूप में वर्णित किया जाता है। योग की इन पद्धतियों का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य नाड़ी रूपी राजमार्ग अर्थात् सुषुम्ना के माध्यम से प्रमुख षट्चक्रों का भेदन करते हुए कुण्डलिनी शक्ति को सहस्रार चक्र तक ले जाना है।⁷¹ जैसे ही योगाभ्यासों के माध्यम से कुण्डलिनी शक्ति जागती है, वह सुषुम्ना नाड़ी से उठते हुए रास्ते में प्रत्येक चक्र से गुजरती हुई इन चक्रों का भेदन करती हुई, अन्त में सहस्रार चक्र में स्थित परम शिव के साथ एकाकार हो जाती है।⁷²

अतः इस प्रकार कुण्डलिनी योग में नाड़ियों तथा चक्रों का प्रमुख महत्व है। ये तीनों ही आपस में सहसंबंधित हैं। नाड़ियों में प्रमुख सुषुम्ना नाड़ी संवाहक चैनल के रूप में कार्यरत रहती हैं और चक्र जंक्शन या ऊर्जा के केंद्र हैं जिनसे होकर कुण्डलिनी के जागरण से उत्पन्न ऊर्जा, शरीरस्थ विभिन्न अंगों और क्षेत्रों में विस्तृत हो जाती है।

⁷¹ सरस्वती, स्वामी सतयानन्द (2002), *कुण्डलिनी योग*, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— 117.

⁷² स्वामी रामदेव (2009), *प्राणायाम रहस्य (वैज्ञानिक तथ्यों के साथ)*, दिव्य प्रकाशन दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार, पृष्ठ संख्या— 111.

तृतीय अध्याय

योगोपनिषदों में चक्र की अवधारणा

- 3.1 ऋग्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों में चक्र संबंधित अवधारणा
- 3.2 कृष्णयजुर्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों में चक्र संबंधित अवधारणा
- 3.3 शुक्लयजुर्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों में चक्र संबंधित अवधारणा
- 3.4 सामवेदीय शाखा के योगोपनिषदों में चक्र संबंधित अवधारणा
- 3.5 अथर्ववेदीय शाखा के योगोपनिषदों में चक्र संबंधित अवधारणा

3. योगोपनिषदों में चक्र की अवधारणा

योगोपनिषद् योग से संबंधित हिंदु धर्म के लघु उपनिषदों का एक समूह है, जिन्हें योगपरक उपनिषद् या योगोपनिषद् भी कहा जाता है। 'मुक्ति का संकलन/ऐन्थोलॉजी' में सूचीबद्ध 108 उपनिषदों के संकलन में योगोपनिषदों की संख्या कुल 20 है।¹ ये अलग वर्गीकृत बीस योगोपनिषद् वेदांत की दृष्टि से वैदिक शाखा से संबंधित हैं, अतः ऋग्वेद शाखा, कृष्णयजुर्वेद शाखा, शुक्लयजुर्वेद शाखा, सामवेद शाखा, अथर्ववेद शाखा के अंतर्गत कुल बीस योगोपनिषदों का वर्णन किया गया है। इन बीस योगपरक उपनिषदों में कुछ योगोपनिषद् अत्यंत लघु एवं कुछ दीर्घ योगोपनिषद् है। योग उपनिषद् प्रमुख रूप से यौगिक तकनीकों के सिद्धांतों एवं अभ्यासों से संबंधित है, जिसमें योग के विभिन्न पहलुओं और प्रकारों पर चर्चा की गई है। योगांगों (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) एवं अन्य योगपरक विषयों जैसे— ध्वनि या नाद, नाड़ी संस्थान, चक्र, कुण्डलिनी एवं शरीर रचना के संबंध में भी विस्तृत व्याख्या की गयी है। योगोपनिषदों में 'चक्र' के विषय में सारगर्भित वर्णन किया गया है। जिसके अंतर्गत चक्रों को परिभाषित करते हुए, चक्र के प्रकारों, चक्रों के स्थान एवं प्रतीकात्मक स्वरूप का वर्णन अत्यंत स्पष्ट रूप से किया गया है। साथ ही इन चक्रों के भेदन की विधियों की व्याख्या करते हुए, चक्रों के भेदन के माध्यम से कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के फलस्वरूप साधक या योगी की स्थिति के साथ ही प्राप्त फलश्रुतियों का भी विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत शोधकार्य के उद्देश्यानुसार 'योगोपनिषदों में वर्णित चक्र संबंधित अवधारणा' की व्याख्या करने हेतु शोधार्थी द्वारा इन बीस योगोपनिषदों का गहन अध्ययन कर इनमें वर्णित 'चक्र' की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है। अतएव ऋग्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों के अंतर्गत 'नादबिन्दूपनिषद्' में चक्रों की व्याख्या की गयी हैं। इसी प्रकार, कृष्णयजुर्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों के अंतर्गत मुख्य रूप से 'अमृतनादोपनिषद्', 'ब्रह्मविद्योपनिषद्', 'ध्यानबिन्दूपनिषद्', 'क्षुरिकोपनिषद्' 'योगकुण्डलिन्युपनिषद्', 'वराहोपनिषद्', 'योगशिखोपनिषद्' एवं 'योगतत्त्वोपनिषद्' में

¹ आयंगर, टी. आर. श्रीनिवास (1938), "योग उपनिषद्", द अड्यार लाइब्रेरी।

चक्र संबंधित विवेचना की गयी है। शुक्लयजुर्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों के अंतर्गत 'त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्', 'मण्डलब्राह्मणोपनिषद्', 'अद्वयतारकोपनिषद्' एवं 'हंसोपनिषद्' में चक्रों को समझाया गया है। सामवेदीय शाखा के योगोपनिषदों के अंतर्गत 'दर्शनोपनिषद् (जबालदर्शनोपनिषद्)', 'योगचूडामण्युपनिषद्' एवं अथर्ववेदीय शाखा के योगोपनिषदों के अंतर्गत एकमात्र 'शाण्डिल्योपनिषद्' में ही चक्रों का वर्णन मिलता है।

3.1 ऋग्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों में चक्र संबंधित अवधारणा

ऋग्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों के अंतर्गत एकमात्र 'नादबिन्दूपनिषद्' में चक्रों की व्याख्या की गयी है, तदनुसार इस उपनिषद् में शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास के तहत एकाग्रता हेतु सप्तचक्रों का वर्णन किया गया है, इसी प्रकार विराट् प्रणव के स्वरूप के अंतर्गत चक्र एवं संबंधित लोकों की व्याख्या की गयी है। अतः ऋग्वेदीय शाखा के योगोपनिषद् के अधीन नादबिन्दूपनिषद् में वर्णित चक्र की संकल्पना निम्नानुसार है—

3.1.1 नादबिन्दूपनिषद् के अनुसार चक्र की संकल्पना

नादबिन्दूपनिषद् ऋग्वेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् है। कुल 56 मंत्रों के संकलन के माध्यम से इस उपनिषद् में वैराज—प्रणव के स्वरूप, वैराजविद्या से प्राप्त होने वाले फल, प्रणव की मुख्य चार मात्रों का स्वरूप, व्यष्टि और समष्टि के भेद से प्रणव की बारह मात्रा—भेदों का कथन और मात्रा में उत्क्रमण का फल, निर्विशेष ब्रह्मज्ञान का स्वरूप और उसके ज्ञान के फल के बारे में उपदेश दिये गये हैं। इसी के साथ ज्ञानी पुरुषों के पूर्व जन्मों के कर्मों के भाव एवं अभाव का विचार प्रस्तुत है एवं तुरीयतुरीय की प्राप्ति के लिए नादानुसन्धान नामक उपाय का वर्णन किया गया है। अन्त में इस उपनिषद् में उपेयनाद के स्वरूप के बारे में वर्णन करते हुए नादारूढ योगियों के लिए विदेहमुक्ति के लाभ बताये गये हैं।

इसी के साथ तुरीय अवस्था को प्राप्त करने के उपायों के अंतर्गत नादानुसन्धान की विधि में शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास करने के लिए एकाग्रता हेतु सप्तचक्रों की चर्चा की गयी है।

(i). शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास में एकाग्रता हेतु सप्तचक्रों की चर्चा—

इस उपनिषद् में तुरीय अवस्था को प्राप्त करने के उपायों के अंतर्गत नादानुसन्धान की विधि में शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास वर्णित है। इस शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास के अंतर्गत प्राण तथा चित्त का लय करने हेतु शरीरस्थ प्रदेशों में स्थित सप्तचक्रों पर क्रमशः एकाग्रता करना चाहिए। ये सप्तचक्र निम्न हैं— 1. मूलाधार चक्र, 2. स्वाधिष्ठान चक्र, 3. मणिपूर चक्र, 4. अनाहत चक्र, 5. विशुद्धि चक्र, 6. आज्ञा चक्र, तथा 7. सहस्रार चक्र।

(ii). विराट् प्रणव के स्वरूप के अंतर्गत चक्र एवं संबंधित लोक—

परब्रह्म परमेश्वर के 'प्रणव' स्वरूप में इनके पाँच में 'भूलोक' स्थित है। 'भुवः लोक' का स्थान प्रणव के जानु प्रदेश में है। इनके कमर भाग में 'सुवः लोक' स्थित है। प्रणव के नाभि प्रदेश में 'महः लोक' का स्थान है। 'जनः लोक' प्रणव के हृदय क्षेत्र में स्थित है। प्रणव के कण्ठभाग में 'तपः लोक' की स्थिति एवं भ्रुकुटि के मध्य में स्थित आज्ञा चक्र के स्थान में 'सत्यलोक' स्थित है।²

3.2 कृष्णयजुर्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों में चक्र संबंधित अवधारणा

कृष्णयजुर्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों में प्रमुखतः 'अमृतनादोपनिषद्', 'ब्रह्मविद्योपनिषद्', 'ध्यानबिन्दूपनिषद्', 'क्षुरिकोपनिषद्' 'योगकुण्डलिन्युपनिषद्', 'वराहोपनिषद्', 'योगशिखोपनिषद्', एवं 'योगतत्त्वोपनिषद्' नामक योगोपनिषदों में चक्र विषय पर सारगर्भित चर्चा की गयी है। तदनुरूप कृष्णयजुर्वेदीय शाखा के इन योगोपनिषदों में वर्णित चक्र की संपूर्ण व्याख्या अग्रानुसार हैं—

3.2.1 अमृतनादोपनिषद् के अनुसार चक्र की संकल्पना

कुल 39 मंत्रों के संकलन से युक्त यह अमृतनादोपनिषद् 'कृष्णयजुर्वेदीय शाखा' के योगोपनिषदों में से एक है। इस उपनिषद् में वर्णित ज्ञान की महिमा का

² "भूलोकः पादयोस्तस्य भुवर्लोकस्तु जानुनि।

सुवर्लोकः कटीदेशे नाभिदेशे महर्जगत् ।।" नादबिन्दूपनिषद्— 3

"जनर्लोकस्तु हृददेशे कण्ठे लोकस्तपस्ततः।

भुवर्ललाट मध्ये तु सत्यलोको व्यवस्थितः ।।" नादबिन्दूपनिषद्— 4

श्रवण कर चिंतन—मनन करने से व्यक्ति का मन एवं चित्त विशुद्ध तथा शांत हो जाता है। फलस्वरूप ऐसे व्यक्ति को पुरुषार्थ करने पर सफलता प्राप्त होती है। जिन व्यक्तियों का मन पूरी तरह शुद्ध नहीं है, ऐसे व्यक्तियों के लिए उपनिषद् में छह योगांगों— प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि एवं तर्क (समीक्षा) का वर्णन किया गया है। ब्रह्मोपासना अर्थात् प्रणव की उपासना भी योगांगों के साथ सहायक है। ब्रह्मोपासना तथा योगांगों का साथ—साथ निरन्तर अभ्यास करने के फलस्वरूप मन की शुद्धि होने से व्यक्ति द्वारा किये गये पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं, यही अमृतनादोपनिषद् में प्रतिपादित मुख्य विषय है।

अमृतनादोपनिषद् में प्रतिपादित चित्तशुद्धि उपायों के रूप में वर्णित 'छह योगांगों' में— 'धारणा के लक्षण के अंतर्गत: हृदय—पुण्डरीक की धारणा', 'समाधिसिद्धि के उपाय के अंतर्गत: प्रणव या ओंकार मंत्र का जाप करते समय अपने मन को स्थूल जगत् से सूक्ष्म जगत् तक का ध्यान नाभि स्थान सहित ऊपर अनाहत या हृदय चक्र, आज्ञा या भ्रूमध्य चक्र एवं सहस्रार चक्र आदि में करना', 'आत्मदर्शन के सात द्वार के अंतर्गत: हृदयद्वार, वायुद्वार, मूर्धद्वार या सहस्रारद्वार, मोक्षद्वार के बिलद्वार, सुषिरद्वार एवं मण्डलद्वार तथा सातवाँ कैवल्यद्वार', 'चिंतन की विधि के अंतर्गत: हृदयाकाश में स्थित प्राणवायु के ध्यानादि अभ्यास से ईश्वर के अभिमुख करना' तथा 'प्राण आदि वायुओं के स्थान के अंतर्गत: शरीरस्थ स्थित प्रमुख चक्रों से संबंधित क्षेत्र तथा इन क्षेत्रों में प्रमुख पंच वायुओं की स्थिति का वर्णन' किया गया है। साथ ही योगाभ्यास के उत्कृष्ट फल हेतु शरीरस्थ प्राण वायु को षट्चक्रों का भेदन करते हुए शरीर के शीर्ष प्रदेश में स्थित सहस्रार चक्र तक पहुँचाने पर ज्ञानरूपी प्रसाद की प्राप्ति का विस्तृत वर्णन किया गया है। अमृतनादोपनिषद् के अन्त में षट्चक्र, सुषुम्ना नाड़ी तथा कुण्डलिनी संबंधित तथ्य एवं विचारों की विस्तृत विवेचना करते हुए इस उपनिषद् का समापन किया गया है।³

अमृतनादोपनिषद् में वर्णित चक्र की अवधारणा की विस्तृत विवेचना प्रमुख बिंदुओं के अंतर्गत की गयी है—

³ आचार्य, श्रीराम शर्मा (2015), 108 उपनिषद् (सरल हिन्दी भावार्थ सहित), ज्ञानखण्ड, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, सूत्र संख्या 1—39, पृष्ठ संख्या 1—39.

(i). षट्चक्र संबंधित विचार—

अमृतनादोपनिषद् के अनुसार षट्चक्र, सुषुम्ना नाड़ी तथा कुण्डलिनी संबंधित तथ्य एवं विचार निम्नानुसार हैं⁴—

मानवीय शरीर में षट्चक्रों के स्थान रीढ़ की हड्डी के मध्य में तथा रीढ़ की हड्डी के ऊपर सुषुम्ना नाड़ी में गुंथी हुई स्थिति में है। पातंजल योगसूत्र में वर्णित योगांग—प्राणायाम के अभ्यास के फलस्वरूप योगाभ्यासी अपने शरीर में जिस प्रकार की क्रियाओं की अनुभूति एवं बोध करता है उनसे चक्रों, नाड़ियों तथा कुण्डलिनी की शक्ति का संज्ञान होता है।

श्रुति के अनुसार सामान्यतः सुषुम्ना नाड़ी हृदयचक्र से होती हुई ऊपर की दिशा में मस्तिष्क की ओर जाती है। इस सुषुम्ना नाड़ी के दोनों तरफ इडा तथा पिंगला नाड़ियाँ स्थित हैं। नाड़ियाँ अत्यंत सूक्ष्म स्तर पर होती हैं अतः इन्हें शरीरविज्ञान की दृष्टि से देख पाना संभव नहीं है। तीन प्रमुख नाड़ियाँ शीर्ष प्रदेश में स्थित सहस्रार चक्र से स्नायुओं के रूप में रीढ़ की हड्डी के बीच से तथा बाहर से गुदाद्वार तक फैली हुई होती हैं। इन तीनों नाड़ियों के द्वारा बोध और चेष्टाएं होती हैं।

कुण्डलिनी शक्ति का वर्णन करते हुए यहाँ वर्णित किया गया है कि, मूलाधार स्थित कुण्डलिनी साढ़े तीन पैंच की कुण्डली मारकर सुप्तावस्था में होने के कारण इसे 'कुण्डलिनी शक्ति' नाम दिया गया है। इस कुण्डलिनी शक्ति को सजग एवं जाग्रत कर सहस्रार चक्र में ले जाकर बिन्दुस्वरूप परमशिव के साथ एकाकार करना ही 'कुण्डलिनी योग' कहलाता है।

प्राणायाम तथा धारणा के अभ्यास के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को सहस्रार चक्र तक ले जाने की प्रक्रिया संपन्न होती है। कुण्डलिनी जागरण के अन्य दो प्रधान उपायों के अंतर्गत— लययोग और हठयोग सम्मिलित है। 'हठयोग' के अंतर्गत मूलबंध, उड्डीयान बंध इत्यादि अभ्यासों द्वारा मांसपेशियों और स्नायुओं का संकुचन करके

⁴ शास्त्री, केशवलाल वी. (2014), उपनिषत्सञ्चयनम्: ईशाद्याष्टोत्तरशतोपनिषद्, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 38-39.

कुण्डलिनी शक्ति को जगाया जाता है। 'लययोग' के अंतर्गत कुण्डलिनी जागरण हेतु 'नाद-धारणा' का अभ्यास वर्णित है। नाद के दो प्रकार हैं— आहत नाद और अनाहत नाद। ये दोनों ही नाद कुण्डलिनी शक्ति द्वारा होते हैं।

“वाक्यरूप आहत नाद के चार प्रकार हैं— 1. परा, 2. पश्यन्ती, 3. मध्यमा और 4. वैखरी। वाक्योच्चारण से पहले मूलाधार प्रदेश में परा नामक सूक्ष्म चेष्टा होती है। श्वास और प्रश्वास में स्वाभाविक रूप से मूलाधार प्रदेश फैलता और सिकुड़ता है अतः यह परा-अवस्था काल्पनिक न होकर शब्दोच्चारण की आधारभूत प्रक्रिया है। पश्यन्ती रूप या उदर संकोचन रूप दूसरी क्रिया स्वाधिष्ठान चक्र में होती है। तत्पश्चात् मध्यमा नामक फेफड़ों के संकुचन के रूप में तीसरी क्रिया अनाहत चक्र या वक्षस्थल में होती है। अन्त में वैखरी या बोला जाने वाले वाक्य नामक चौथी क्रिया विशुद्धि चक्र या कण्ठ आदि में होती है। इन सभी आहत नाद के प्रकारों के अंतर्गत संचालित होने वाले कार्यों को कुण्डलिनी शक्ति के काम कहा गया है। इस प्रकार आहत नाद का वाक्य के साथ संबंध रहने के कारण सर्वप्रथम 'हुम्' शब्द के उच्चारण के माध्यम से कुण्डलिनी शक्ति को जगाना चाहिये।

अनाहत नाद के दो प्रकार वर्णित हैं— 1. कान के द्वारा श्रवणीय अनाहतनाद, 2. संपूर्ण शरीर में ऊपर जाती हुई धारा के रूप में अनुभव अनाहतनाद। अनाहत नाद का प्रथम प्रकार 'कान के द्वारा श्रवणीय अनाहतनाद' षण्मुखी मुद्रा के अभ्यास के माध्यम से आसानी से सुना जा सकता है। प्राणायाम अभ्यास तथा शरीरस्थ नाड़ी शुद्धि होने पर अत्यन्त सरलता से प्राकृतिक रूप में कान में अनाहत नाद सुनाई देता है। अनाहत नाद का दूसरा प्रकार 'संपूर्ण शरीर में ऊपर जाती हुई धारा के रूप में अनुभव अनाहतनाद' के माध्यम से ही कुण्डलिनी शक्ति को लंबे समय के अभ्यास के फलस्वरूप सहस्रार चक्र तक ले जाना होता है और वहाँ वह बिन्दुरूप में परिणत होता है।

इस प्रकार तांत्रिकों द्वारा बिन्दु को शिव तथा नाद को शक्ति कहकर तंत्रशास्त्रों में 'नाद की बिन्दुत्व प्राप्ति को ही शिव और शक्ति का योग' कहते हैं।

(ii). धारणा के लक्षण के अंतर्गत चक्र संबंधित विचार—

प्राचीन काल में हृदय—पुण्डरीक ही धारणा का प्रधान स्थान माना जाता था। उस स्थान से ऊपर की ओर जाने वाली सुषुम्ना की ज्योति है वह भी धारणा का विषय है। बाद में षट्चक्र और द्वादश चक्र की धारणा प्रचलित हुई।⁵

(iii). समाधिसिद्धि के उपाय के अंतर्गत चक्र संबंधित विचार—

अमृतनादोपनिषद् के अनुसार उत्तर दिशा की तरफ मुँह को रखकर, स्वच्छ एवं एक समान समभूमि पर कुश से बने आसन पर, किसी भी ध्यानात्मक योगासन में बैठकर, सर्वप्रथम निम्न सात प्रकार की व्याहृतियाँ— भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, एवं सत्यम् के उच्चारण के साथ अपनी सामर्थ्यानुसार गायत्री महामंत्र का जप या बार—बार उच्चारण करना चाहिए।⁶

अमृतनादोपनिषद् के अनुसार बुद्धिमत्तापूर्ण योगाभ्यासी को अपने मन को यहाँ—वहाँ व उपर—नीचे, दायीं तथा बायीं ओर भटकाये बिना ही स्वच्छ आसन पर विराजमान होकर निश्छल मन से ध्यान के साथ योगाभ्यास को करना चाहिए। मंत्र के मर्म का रहस्यपूर्वक जानकार एवं समझदार व्यक्ति के द्वारा पूर्व में वर्णित मंत्रजप विधि के आधार पर ही प्रणव या ओंमकार जप करने के निर्देश दिये गये हैं। साथ ही व्यक्ति द्वारा प्रणव या ओंमकार मंत्र का जाप करते समय अपने मन को “स्थूल या भौतिक जगत् से सूक्ष्म जगत् तक का ध्यान नाभि स्थान सहित ऊपर अनाहत या हृदय चक्र, आज्ञा या भूमध्य चक्र एवं सहस्रार चक्र आदि में करना चाहिये।”⁷

⁵ आचार्य, श्रीराम शर्मा (2015), 108 उपनिषद् (सरल हिन्दी भावार्थ सहित), ज्ञानखण्ड, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, सूत्र संख्या 16, पृष्ठ संख्या 29.

⁶ “भूमौ दर्भासने रम्ये सर्वदोषविवर्जिते।

कृत्वाम्नोमयीमृक्षां जप्त्वा वै रथमण्डलैः॥” अमृतनादोपनिषद्—18.

“पद्मकं स्वस्तिकं वाऽपि भद्रासनमथापि वा।

बद्ध्वा योगासनं सम्यक् उत्तराभिमुखः स्थितः॥” अमृतनादोपनिषद्—19.

⁷ “पश्चात् ध्यायीत पूर्वोक्त क्रमशो मन्त्रविद् बुधः।

स्थूलादि स्थूलसूक्ष्मं च नाभेः ऊर्ध्वमुपक्रमः॥ अमृतनादोपनिषद्—22.

“तिर्यगूर्ध्वं मधोदृष्टिं विहाय च महामतिः।

स्थिरस्थायी विनिष्कम्पः सदा योगं समभ्यसेत्॥” अमृतनादोपनिषद्—23.

(iv). आत्मदर्शन के सात द्वारों के अंतर्गत चक्र संबंधित विचार—

अमृतनादोपनिषद् में आत्मा के दर्शन हेतु स्वयं की आत्मा के सात द्वारों का वर्णन किया गया है। आत्मदर्शन के सात द्वार क्रमशः— हृदयद्वार, वायुद्वार, मूर्धद्वार या सहस्रारद्वार, मोक्षद्वार के बिलद्वार, सुषिरद्वार एवं मण्डलद्वार तथा सातवाँ कैवल्यद्वार है। अमृतनादोपनिषद् के अनुसार इन द्वारों के मात्र ब्रह्मविद् वरीय श्रेणी के योगीजन ही जानकार होते हैं।⁸

उपनिषद् ब्रह्मयोगी के द्वारा दी गयी टीका के आधार पर, हृदयद्वार— विराट् को प्राप्त कराता है, वायुद्वार— सूत्रात्मक अर्थात् सूत्र के रूप में बने परमात्मा को प्राप्त कराता है, बीजेश्वर ब्रह्म को मूर्धद्वार या सहस्रारद्वार प्राप्त कराता है, मोक्षद्वार अर्धमात्रात्मक प्रत्यग अन्तरंग ब्रह्म को प्राप्त कराता है, मोक्षद्वार के बिलद्वार, सुषिरद्वार एवं मण्डलद्वार क्रमशः जो कि स्थूलांशात्मक, सूक्ष्मांशात्मक एवं बीजांशात्मक हैं। मोक्षद्वार के यह तीनों द्वार क्रमशः तुर्यवैराज को, तुर्यसूत्र को, एवं तुर्यबीज को प्राप्त कराने वाले द्वार है। अन्तिम एवं सातवाँ द्वार कैवल्यद्वार हैं जिसे श्लोक में 'च' शब्द से अभिप्रेत किया गया है। यह कैवल्यद्वार निष्प्रतियोगिक ब्रह्ममात्र की प्राप्ति कराता है।

(v). चिंतन की विधि के अंतर्गत चक्र संबंधित विचार—

हृदय को प्राणवायु का प्रमुख स्थान बताया गया है। यह प्राणवायु व्यक्ति की आत्मा, वाक्, चक्षु इत्यादि ज्ञानेन्द्रियों या प्राणेन्द्रियों के साथ हृदयाकाश में प्रतिष्ठित है। इस हृदयाकाश में ही प्रत्येक चेतना विराजमान है। निरन्तर जप और ध्यानादि के अभ्यास के फलस्वरूप व्यक्ति की बुद्धि या प्रत्यक् चेतना ईश्वर के अभिमुख होती जाती है। इस प्रत्यक् चेतना या बुद्धि के ईश्वराभिमुखी होने से योग साधना के मार्ग से आलस्य—प्रमाद आदि बाधाएँ नष्ट हो जाती हैं।⁹

⁸ "हृदद्वारं वायुद्वारं च मूर्धद्वारमथापरम्।

मोक्षद्वारं बिलं चैव सुषिरं मण्डलं विदुः॥" अमृतनादोपनिषद्-27

⁹ "संधिं कृत्वा तु मनसा चिन्तयेदात्मनाऽऽत्मनि॥" अमृतनादोपनिषद्-32

"त्रिंशत्पर्वङ्गुलः प्राणो यत्र प्राणैः प्रतिष्ठितः।

एष प्राण इति ख्यातो बाह्य प्राणस्य गोचरः॥" अमृतनादोपनिषद्-33

(vi). प्राण आदि वायुओं के स्थान के अंतर्गत चक्र संबंधित विचार—

अमृतनादोपनिषद् में शरीरस्थ स्थित प्रमुख चक्रों से संबंधित क्षेत्र तथा इन क्षेत्रों में प्रमुख पंच वायुओं की स्थिति का वर्णन किया गया है, जिसके अनुसार— हृदय क्षेत्र में प्राण वायु, गुदा क्षेत्र में अपान वायु, नाभि क्षेत्र में समान वायु, कण्ठ क्षेत्र में उदान वायु एवं संपूर्ण शरीर के प्रत्येक अंगों में व्यान वायु समायी रहती है।¹⁰

(vii). योगाभ्यास का उत्कृष्ट फल के अंतर्गत चक्र संबंधित विचार—

जो योगी मुक्ति की चाह रखते हुए अपने शरीरस्थ प्राण वायु को षट्चक्रों—मूलाधारचक्र, स्वाधिष्ठानचक्र, मणिपुरचक्र, अनाहतचक्र, विशुद्धिचक्र और आज्ञाचक्र का भेदन करते हुए शरीर के शीर्ष प्रदेश में स्थित सहस्रारचक्र तक पहुँचा देता है, उस समय वह योगी ज्ञानरूपी प्रसाद की प्राप्ति करता है एवं साथ ही परवैराग्य के साथ पुरुषत्व को प्राप्त कर लोकातीत परमपद को प्राप्त होता है। इस प्रकार के सिद्ध योगी के द्वारा किसी भी स्थान पर अपना शरीर त्यागने पर भी वह कभी पुर्नजन्म को प्राप्त नहीं होता अर्थात् भव—बन्धन से परे हो जाता है।¹¹

3.2.2 ब्रह्मविद्योपनिषद् के अनुसार चक्र की संकल्पना

ब्रह्मविद्योपनिषद् मुख्यतः कृष्णयजुर्वेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषदों में से एक है। कुल 110 मंत्रों के संकलन के माध्यम से इस उपनिषद् में ब्रह्म के गुणों का वर्ण—पत्र प्रस्तुत करते हुए, ब्रह्म को प्राप्त करने के उपायों का वर्णन किया गया है। ब्रह्म को प्रणव या ओंमकार से संबोधित कर प्रणवब्रह्म की तीन मात्राओं के अंतर्गत—वेद, अग्नि, लोक एवं देवरूप के तीन—तीन रूपों का वर्णन किया है, यही ब्रह्मविद्योपनिषद् में प्रतिपादित मुख्य विषय है। ब्रह्मविद्योपनिषद् के उपदेशों के अनुसार जीवात्मा स्वभावतः अनवरत स्वयंप्रकाशित चैतन्य 'हंसः' ('ह' कार और 'म' कार) के रूप में प्रणव का जप करती है। यदि जीवात्मा प्राणायाम के अभ्यास के साथ 'हंस'

¹⁰ "प्राण आद्यो हृदि स्थाने अपानस्तु पुनर्गुदे ।
समानो नाभि देशे तु उदानः कण्ठमाश्रितः ॥" अमृतनादोपनिषद्—35
"व्यानः सर्वेषु चांगेषु व्याप्य तिष्ठति सर्वदा ।
अथ वर्णास्तु पञ्चानां प्राणादीनामनुक्रमात् ॥" अमृतनादोपनिषद्—36

¹¹ "यस्येदं मण्डलं भित्वा मारुतो याति मूर्धनि ।
यत्र यत्र भ्रियेत् वापि न स भूयोऽभिजायते न स भूयोऽभिजायते ॥" अमृतनादोपनिषद्—39.

को नियमपूर्वक जपती है तो वह जीवात्मा सिद्धि को प्राप्त करती है, तथा अन्त में ज्ञान को प्राप्त स्वयं विलक्षणों से परिपूर्ण ब्रह्मरूप बन जाती है। अन्त में ब्रह्मरूप के विभिन्न लक्षणों का वर्णन करते हुए यह बताया गया है कि ऐसी जीवात्मा सच्चिदानन्द ज्ञानस्वरूप मुक्त ही हो जाती है।

ब्रह्मविद्योपनिषद् में प्राण के स्थान के रूप में नाभिप्रदेश, ब्रह्मतत्त्व के ध्यान के स्थान के रूप में हृदयप्रदेश या अनाहतचक्र, स्वप्रकाशित चिदानन्द के ध्यान के स्थान के रूप में आज्ञाचक्र एवं नाभिचक्र तथा विभिन्न चक्रों से संबंधित देवताओं का वर्णन किया गया है।

साथ ही षट्चक्रों के भेदन के संबंध में मुख्य चर्चा गयी हैं जिसका मुख्य उद्देश्य षट्चक्रमण्डल का भेदन होने पर ज्ञानरूपी दीपक को प्रकाशित करना है। अतएव ब्रह्मविद्योपनिषद् में वर्णित चक्र से संबंधित अवधारणाओं की विस्तृत विवेचना निम्नानुसार हैं—

(i). नाभिप्रदेश या नाभिचक्र में प्राण का स्थान—

ब्रह्मविद्योपनिषद् में तेज, वायु और आकाश के गुणों से युक्त जीव को प्राण की संज्ञा दी गयी है। तथा इस प्राण के आकार को अत्यंत सूक्ष्म बताते हुए इसकी तुलना बाल के सामने के भाग की नोंक के सौवें भाग जितनी सूक्ष्मता से की गयी है। विश्व को प्रकाशित करने वाला, मंगलकारी प्राण नाभिप्रदेश में प्रतिष्ठित है।¹²

(ii). हृदयप्रदेश या अनाहतचक्र में ब्रह्मतत्त्व के ध्यान का फल—

ब्रह्मविद्योपनिषद् के उपदेशानुसार, जीवात्मा श्वसन के रूप में अनवरत 'हंसः' ('ह' कार और 'म' कार) के रूप में प्रणव का जप करती है। इस जप के प्रभाव से वह जीव नाभिप्रदेश से ऊपर की ओर हृदयप्रदेश की तरफ बढ़ता हुआ विषयों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। इस चार कलाओं वाले हृदय में स्थित प्राणतत्त्व को उसी प्रकार भ्रमण कराते हैं, जिस प्रकार कि मथनी के द्वारा दूध को मथते हैं परिणामतः

¹² "नाभिस्थाने स्थितं विश्वं शुद्धतत्त्वं सुनिर्मलम्।
आदित्यमिव दीप्यन्तं रश्मिभिश्चाखिलं शिवम्॥" ब्रह्मविद्योपनिषद्-15.

जो जीवात्मा इस हृदय में स्थित चिदानन्द और अनाहत नाद से युक्त हंस या ब्रह्मतत्त्व को इस प्रकार जानता है वह संसाररूपी भव-बन्धन को पार कर विमुक्त हो जाता है।¹³

(iii). आज्ञाचक्र एवं नाभिचक्र में स्वप्रकाशित चिदानन्द के ध्यान का फल—

जो ज्ञानी व्यक्ति, प्राण तथा अपान को एक कर मस्तिष्क या आज्ञाचक्र में प्रतिष्ठित अमृत को आदर के साथ ध्यान पूर्वक पीता है तथा जो नाभिप्रदेश में स्थित दीपक की भाँति प्रकाशित महादेव का अमृतसिंचन करते हुये श्वास-प्रश्वास को त्यागकर कुम्भक के द्वारा स्वप्रकाशित चिदानन्द रूपी 'हंसः' ('ह'कार और 'म' कार) के रूप में प्रणव का जप करता है, वह व्यक्ति बुढ़ापा, मृत्यु तथा रोगों से सदैव के लिए विकाररहित हो जाता है तथा वह अणिमा आदि योगसिद्धियों की प्राप्ति का अधिकारी बन जाता है।¹⁴

(iv). विभिन्न चक्रों से संबंधित देवताओं का वर्णन—

मानवीय शरीर के क्षेत्र विशेष से संबंधित देवताओं का स्थान निम्नानुसार बताये गये हैं— हृदयक्षेत्र में देवता ब्रह्म का निवास, कण्ठक्षेत्र में देवता विष्णु का वास, तालुक्षेत्र में देवता रुद्र का स्थान एवं ललाटप्रदेश में महेश्वर निवास करते हैं। नासिका के अग्र भाग में अच्युत अर्थात् सदाशिव को जानना चाहिए तथा उसके अन्त भाग में अर्थात् भौंहों के बीच अर्थात् आज्ञाचक्र में परमपद को प्रतिष्ठित मानना चाहिए। शास्त्रों के निर्णयानुसार इस परमपद से परे कुछ भी नहीं है। यह देहातीत

¹³ "सकारं च हकारं च जीवो जपति सर्वदा।
नाभिरन्ध्राद्विनिष्क्रान्तं विषयव्याप्तिवर्जितम्।।" ब्रह्मविद्योपनिषद्-16.
"तेनेदं निष्कलं विद्यात्क्षीरात्सर्पिर्यथा तथा।
कारणेनात्मना युक्तः प्राणायामैश्च पञ्चभिः।।" ब्रह्मविद्योपनिषद्-17.
"चतुष्कलासमायुक्तो भ्राम्यते च हृदि स्थितः।
गोलकस्तु यदा देहे क्षीरदण्डेन वाऽहतः।।" ब्रह्मविद्योपनिषद्-18.
"नमःस्थं निष्कलं ध्यात्वा मुच्यते भवबन्धनात्।
अनाहतध्वनियुतं हंसं यो वेद हृदगतम्।।" ब्रह्मविद्योपनिषद्-20.
¹⁴ "स्वप्रकाशितचिदानन्दं स हंस इति गीयते।
रेचकं पूरकं कुम्भकेन स्थितः सुधीः।।" ब्रह्मविद्योपनिषद्-21.
"नाभिकन्दे समौ कृत्वा प्राणापानौ समाहितः।
मस्तकस्थामृतास्वादं पीत्वा ध्यानेन सादरम्।।" ब्रह्मविद्योपनिषद्-22.
"दीपाकारं महादेवं ज्वलन्तं नाभिमध्यमे।
अभिषिच्यामृतेनैव हंसं हंसेति यो जपेत्।।" ब्रह्मविद्योपनिषद्-23.
"जरामरणरोगादि न तस्य भुवि विद्यते।
एवं दिने दिने कुर्यादणिमादिविभूतये।।" ब्रह्मविद्योपनिषद्-24.

परमपद नासिका के अग्रभाग से ऊपर की ओर 12 अंगुलियों की दूरी पर स्थित हैं तथा इसके अन्तिम भाग में स्थित सहस्रार चक्र में सर्वव्यापी प्रभु निवास करते हैं।¹⁵

(v). षट्चक्रों के भेदन के संबंध में मुख्य चर्चा—

ब्रह्मविद्योपनिषद् के उपदेशानुसार— कुण्डलिनी, सुषुम्ना नाड़ी, तथा प्राण रूपी इन तीनों शक्तियों को चालित करके शशिमण्डल अर्थात् सहस्रार चक्र का भेदन करना चाहिए।¹⁶ साथ ही मानव शरीरस्थ नवद्वारों को बंद कर वज्रकुम्भक का अभ्यास करने तथा प्रसन्न एवं स्वस्थ मन से स्वाभाविक स्थिति में गुणरहित होकर प्राणायाम के अभ्यास द्वारा षट्चक्रों का भेदन करना चाहिए। इस प्रकार प्राणायाम के अभ्यास द्वारा षट्चक्रों का भेदन करते हुए ध्यानस्त होने से ब्रह्मस्थान में नाद श्रवणीय होता है एवं ब्रह्मरन्ध्र स्थित शंकिनी नाड़ी से अमृत का स्राव होने लगता है। षट्चक्रमण्डल का भेदन होने पर ज्ञानरूपी दीपक प्रकाशित हो उठता है।¹⁷

3.2.3 ध्यानबिन्दूपनिषद् के अनुसार चक्र की संकल्पना

ध्यानबिन्दूपनिषद्, कृष्णयजुर्वेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् हैं। इसमें ध्यान केन्द्रविषय है। कुल 106 मंत्रों के संकलन के माध्यम से इस उपनिषद् की शुरुआत 'ब्रह्म के ध्यानयोग की महिमा' बताकर पहले ब्रह्म को सूक्ष्मत्व और सर्वव्यापकत्व बताया है। ध्यानबिन्दूपनिषद् के अनुसार एकमात्र ध्यानयोग ही वह उपाय है जिसके द्वारा ब्रह्म में ध्यानस्त होने से योगियों के असंख्य जन्मों के समस्त पापों का नाश हो जाता है। ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप व नाम 'निःशब्द प्रणव या ओंकार' ही है, इसीलिये ध्यानस्थ अवस्था में प्रणव या ओंकार का मानसिक जप परमपद या कैवल्य

¹⁵ "ब्रह्मणो हृदयस्थानं कण्ठे विष्णुः समाश्रितः। तालुमध्ये स्थितो रुद्रः ललाटस्थो महेश्वरः॥" ब्रह्मविद्योपनिषद्-41.

"नासाग्रे अच्युतं विद्यात् तस्यान्ते च परं पदम्। परत्वात् परं नास्तीत्येवं शास्त्रस्य निर्णयः॥" ब्रह्मविद्योपनिषद्-42.

"देहातीतं तु तुं विद्यान्नसाग्रे द्वादशाङ्गुलम्। तदन्तं तं विजानीयात् तत्रस्थो व्यापयेत्प्रभुः॥" ब्रह्मविद्योपनिषद्-43.

¹⁶ "त्रिशुद्धं वज्रमोंकारमूर्ध्वनालं भूवोर्मुखम्। कुण्डलीं चालयन्प्रणान् भेदयन् शशिमण्डलम्॥" ब्रह्मविद्योपनिषद्-74.

¹⁷ "साधयन्वज्रकुम्भानि नव द्वाराणि बन्धयेत्। सुमनः पवनारूढः सरागो निर्गुणस्तथा॥" ब्रह्मविद्योपनिषद्-75.

ब्रह्मस्थाने तु नादः स्याच्छुद्धिः कन्यमृतवर्षिणी। षट्चक्रमण्डलोद्धारं ज्ञानदीपं प्रकाशयेत्॥" ब्रह्मविद्योपनिषद्-76.

प्रदान करता है। इस प्रणव या ओंकार को ही बीजाक्षर कहा गया है 'अ, उ और म्' के मिलने से 'ओउम्' की उत्पत्ति होती है तथा इस 'ओउम्' के ऊपर अनाहत नाद का एक अंश आने पर ही यह सशब्द या उच्चारण करने योग्य होता है। अतः अनाहत नाद का सशब्द रूप ही प्रणव या ओंकार कहलाता है। यह नित्य अनाहत नाद की उत्पत्ति हृदय में होती है।

ब्रह्म का वर्णन अत्यन्त सूक्ष्म तथा सर्वव्यापी के रूप में करते हुए प्रणव का स्वरूप, प्रणव ध्यान की विधि, प्राणायाम और अन्य प्रकार से प्रणवध्यान, ब्रह्मध्यान, त्रिमूर्तिध्यान, और उसका फल बताया गया है। तदुपरान्त षडांगयोग, चार प्रकार के आसन, योनिस्थान, मूलाधारादि चक्र, नाडीचक्र, प्राणादि दशावयव इत्यादि ध्यानबिन्दूपनिषद् में प्रतिपादित मुख्य विषय है।

यौगिक क्रियाओं के द्वारा योगी प्राण को अलग-अलग चक्रों में से क्रमशः सुषुम्ना नाडी के द्वारा ऊपर चढ़ाता है और योग की अलग-अलग अन्यान्य क्रियाओं के द्वारा योगी तरह-तरह की सिद्धियों को प्राप्त करता है और अन्त में उस योगी ब्रह्म की अनुभूति करता है। इस उपनिषद् में योग की अनेकानेक क्रियाओं का भी सविस्तार वर्णन किया गया है। अतएव ध्यानबिन्दूपनिषद् में वर्णित चक्र से संबंधित अवधारणाओं की विस्तृत विवेचना निम्नानुसार है—

(i). षट्चक्र संबंधी मुख्य अवधारणा—

ध्यानबिन्दूपनिषद् के अनुसार— ब्रह्म का ध्यान, प्रणव का ध्यान एवं प्राणायाम के सिद्ध हो जाने के बाद चक्रों तथा कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से आत्मदर्शन होते हैं। जिस प्रकार प्रकाश की किरणों के स्पर्शमात्र से कमल के फूल खिल जाते हैं उसी प्रकार मन की रश्मियों के द्वारा शरीरस्थ आभ्यान्तरिक केंद्र या चक्र प्रकाशित होकर दृश्यगत होने लगते हैं, कदाचित् इसी आधार पर इन केंद्रों या चक्रों को कमल की संज्ञा दी गयी है। स्थूल शरीर में इन चक्रों को बिना बिजली के दीपों की संज्ञा दी गयी है किन्तु जैसे ही इन दीपों में बिजलीधारा प्रवाहित होती है तब ये दीप प्रज्ज्वलित हो उठते हैं, इसी प्रकार सुप्तावस्था में स्थित कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत

होती हैं तदुपरान्त शरीरस्थ चक्र अपने वर्णों के साथ प्रकाशित दिखाई पड़ने लगते हैं।¹⁸ दिव्यदृष्टि प्राप्त योगी को ही इन प्रकाशित चक्रों के स्वरूप का अनुभव प्राप्त होता है।

अतएव ध्यानबिन्दूपनिषद् में वर्णित षट्चक्रों— मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूर चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्धि चक्र, एवं सहस्रार चक्र की अवधारणा निम्नानुसार हैं—

(क) मूलाधार चक्र—

ध्यानबिन्दूपनिषद् के अनुसार, मानवीय शरीरस्थ छः चक्रों में प्रथम स्थान चार—दलीय कमल रूपी 'मूलाधार चक्र' का है, जो गुदाद्वार के समीप स्थित है। यह अग्निमण्डल से चार अंगुल ऊपर है तथा मेढ्र अर्थात् लिंगमूल के नीचे है। प्रतीकात्मक रूप से मूलाधार चक्र तपती हुई स्वर्ण धातु के समान कांतिमय एवं बिजली जैसी चमक धारण किये हुए है। मूलाधार चक्र के मध्य में कामरूपी योनि स्थित है जिसे सिद्ध पुरुषों द्वारा 'कुण्डलिनी शक्ति' कहा गया है। यह कुण्डलिनी योनि के बीच में पश्चिम की ओर अपना मुँह किये हुए मणि की तरह स्वप्रकाशित रूप से विद्यमान है। यह कुण्डलिनी ही व्यक्ति को प्रवृत्ति मार्ग अर्थात् सांसारिक मोह—माया एवं निवृत्ति मार्ग अर्थात् मोक्ष एवं वैराग्य का मार्ग प्रशस्त करती है। जब यह कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना नाड़ी रूपी मार्ग से उपर की ओर उठते हुए षट्चक्रों का भेदन कर सहस्रार चक्र में पहुँचती हैं तब यह मनुष्य को निवृत्ति मार्ग प्रशस्त करती है, और यदि यह कुण्डलिनी शक्ति सुप्तावस्था में मूलाधार चक्र में ही रहती है तब यह व्यक्ति को सांसारिक बंधनों में फंसाये रहती है। इसे जानने वाला व्यक्ति ही योग का ज्ञाता माना जाता है।¹⁹

¹⁸ शास्त्री, केशवलाल वी. (2014), उपनिषत्सञ्चयनम्: ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 250, अनुच्छेद-2.

¹⁹ "आधारं प्रथमं चक्रं स्वाधिष्ठानं द्वितीयकम्।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्-43

"योनिस्थानं तयोर्मध्ये कामरूपं निगद्यते।

आधारस्थे गुदास्थाने पंकजं यच्चतुर्दलम्।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्-44

"तन्मध्ये प्रोच्यते योनिः कामाख्या सिद्धवन्दिता।

योनिमध्ये स्थितं लिंगम् पश्चिमाभिमुखं तथा।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्-45

"मस्तके मणिवद् भिन्नं यो जानाति स योगवित्।

तप्तचामीकराकारं तडिल्लेखेव विस्फुरत्।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्-46

(ख) स्वाधिष्ठान चक्र—

मानवीय शरीरस्थ छः चक्रों में द्वितीय स्थान छह—दलीय कमल रूपी 'स्वाधिष्ठान चक्र' का है, जो लिंगमूल या मेढ्र में स्थित है। इन मूलाधार चक्र और स्वाधिष्ठान चक्र के मध्य में कामरूप योनिस्थान कहा जाता है।²⁰

(ग) मणिपुर चक्र—

मानवीय शरीरस्थ छः चक्रों में तीसरा स्थान बारह—दलीय कमल की आकृति लिये हुए 'मणिपुर चक्र' का है, जो नाभि में स्थित है। इस नाभिस्थित मणिपुर चक्र के आस—पास विभिन्न नस—नाड़ियों में प्राणवायु विद्यमान रहती है। मणिपुर चक्र से होकर सुषुम्ना नाड़ी ऊपर की ओर उसी तरह जाती है जैसे "मणियों में पिरोया धागा", इसी कारण यह मणिपुर चक्र कहलाता है। इस चक्र में पाप—पुण्यों से बंधी हुई एवं जन्म—मरण के चक्र में उलझी हुई जीवात्मा की स्थिति तब तक बनी रहती हैं जब तक की वह जीवात्मा ब्रह्म से साक्षात्कार नहीं कर लेती है।²¹

(घ) अनाहत/हृदय चक्र—

हृदय में स्थित आठ—पंखुड़ियों वाले कमल को 'अनाहत चक्र' कहा गया है। हृदय कमल के गोल आकृति के समान बीच के भाग में ज्योति के स्वरूप में अणुमात्र सूक्ष्म जीवात्मा निवास करती है, जिसमें सबकुछ प्रतिष्ठित माना जाता है।²² यह जीवात्मा ही शरीर के सभी कार्यों को जानता व कर्ता हैं। इस प्रकार जीवात्मा स्वाधीन रूप से मानव शरीर में निवास करती है। जिस समय यह जीवात्मा हृदय चक्र के मध्यस्थान में आती है उस समय यह सर्वज्ञानी होती है।²³ इस प्रकार

¹⁹ "चतुरस्रमुपर्यग्नरधो मेढ्रात प्रतिष्ठितम् ।" ध्यानबिन्दूपनिषद्—47

²⁰ "स्वशब्देन भवेत् प्राणः स्वाधिष्ठानं तदाश्रयम् ।" ध्यानबिन्दूपनिषद्—47

²¹ "स्वाधिष्ठानं ततश्चक्रं मेढ्रमेव निगद्यते ।" ध्यानबिन्दूपनिषद्—48

²² "मणिवत्तन्तुना यत्र वायुना पूरितं वपुः ।" ध्यानबिन्दूपनिषद्—48

²³ "तन्नाभिर्मण्डलं चक्रं प्रोच्यते मणिपूरकम् ।

द्वादशारमहाचक्रे पुण्यपापनियन्त्रितः ।" ध्यानबिन्दूपनिषद्—49

²⁴ "हृदिस्थाने अष्टदलपदमं वर्तते ।

तन्मध्ये रेखावलयं कृत्वा जीवात्मरूपं ज्योतीरूपमणुमात्रं वर्तते ।

तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितं भवति, सर्वं जानाति,

सर्वं करोति, सर्वमेतच्चरितमहं कर्ताऽहं भोक्ता सुखी दुःखी काणः खञ्जो

बधिरो मूकः कृशः स्थूलोऽनेन प्रकारेण स्वतन्त्रवादेन वर्तते ।" ध्यानबिन्दूपनिषद्—93—1

²⁵ "यदा मध्ये तिष्ठति तदा सर्वं जानाति गायति नृत्यति पठति आनन्दं करोति ।" ध्यानबिन्दूपनिषद्— 93—11

ध्यानबिन्दूपनिषद् में षट्चक्र संबंधी मुख्य अवधारणा का विवेचन करते हुए केवल यहाँ चार चक्रों— मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूर चक्र, अनाहत चक्र का ही विस्तार से प्रतीकात्मक वर्णन किया गया है। विशुद्धि चक्र एवं सहस्रार चक्र के बारे में 'आत्मदर्शन के उपायों के अंतर्गत केवल इन चक्रों के नामों का ही वर्णन मिलता है जिनसे होकर कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार चक्र में पहुँचकर योगी को आत्मदर्शन कराती है। अतएव शोधार्थी द्वारा यहाँ केवल इन चार चक्रों को ही ध्यानबिन्दूपनिषद् के संदर्भ में समझाया गया है।

(ii). प्राणायाम के साथ प्रणव ध्यान के अंतर्गत चक्र संबंधित विचार²⁴

ध्यानबिन्दूपनिषद् के अनुसार, दीप की गतिहीन शिखा की आकृति वाले अंगुठे के बराबर ब्रह्म रूपी 'ओंकार या प्रणव' का ध्यान हृदय चक्र या कमल की कर्णिका के मध्य में करना चाहिए। ज्ञानी व्यक्ति सदैव इस अद्वितीय ओंकार नाद को अपने हृदय में स्थायी रूप से सदा साक्षात्कार करते हैं। श्रुति के अनुसार मूलाधार चक्र में स्थित त्रिकोणीय संरचना में प्रणव के अर्थानुसार ब्रह्म का ध्यान कुम्भक अर्थात् श्वास को रोककर करना चाहिए।²⁵

(iii). हृदय कमल में सविशेषब्रह्म का ध्यान²⁶—

हृदय चक्र को यहाँ हृदय कमल कहकर संबोधित करते हुए, इसे आठ पंखुड़ियों वाला बताया गया है। इस आठ पंखुड़ियों वाले हृदय कमल के मध्य में बत्तीस परागों से युक्त कोमल तन्तु हैं। हृदय चक्र के मध्य में सूर्य की स्थिति तथा सूर्य के मध्य में चन्द्रमा की स्थिति, चन्द्रमा के मध्य में अग्नि, अग्नि के मध्य में प्रभामण्डल तथा प्रभामण्डल के मध्य में रत्न जड़ित आसन विद्यमान हैं जिस पर

²⁴ "हृत्पद्मकर्णिकामध्ये स्थिरदीपनिभाकृतिम्।

अड.गुष्ठमात्रमवलं ध्यायेदोंकारमीश्वरम्।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्-19

²⁵ "मूलाग्नावग्निरूपं प्रणवं सन्दध्यात्।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्/श्रुति के अनुसार-20.

²⁶ "अष्टपत्रं तु हृत्पद्मं द्वात्रिंशत्केसरान्वितम्।

तस्य मध्यागतो भानुः भानुमध्यगतः शशी।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्-26.

"शशिमध्यगतो वह्निः वह्निमध्यगता प्रभा।

प्रभामध्यगतं पीठं नानारत्नप्रवेष्टितम्।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्-27.

"तस्य मध्यगतं देवं वासुदेवं निरञ्जनम्।

श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मुक्तामणिविभूषितम्।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्-28.

"शुद्धं स्फटिकसंकाशं चन्द्रकोटिसमप्रभम्।

एवं ध्यायेन्महाविष्णुमेवं च विनयान्वितः।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्-29.

निरंजन वासुदेव बैठे हुए हैं। सविशेषब्रह्म वासुदेव जी के स्वरूप का बखान करते हुए इन्हे स्फटिक के सदृश अनन्त चंद्रमाओं से युक्त कान्तिमय एवं इनके गले में स्फटिक मणियों तथा मोतियों से सजा हुआ कौस्तुभ मणि का हार शोभायमान है। श्रद्धावान एवं विनयशील साधक को हृदय चक्र में स्थित सविशेषब्रह्म रूपी वासुदेव के इस काल्पनिक स्वरूप का ध्यान करना चाहिये।

(iv). हृदय कमल में ध्यान का फल—

हृदय कमल के मध्य में क्रमशः सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि का चिन्तन साथ ही हृदय कमल के बीज मंत्र 'मं' तथा देवता के 'विष्णु' रूप की भावना एवं निरन्तर प्रणव या ओंकार जप का अभ्यास करते हुए इस कमल को ऊर्ध्वमुखी करना चाहिये।

हृदय कमल में ध्यान के फलस्वरूप साधक ब्रह्म के तीनों स्वरूप तथा ओम् अक्षर के मर्म को भलीभाँति समझ लेता है परिणामतः ज्ञानी कहलाता है।²⁷

(v). योगाभ्यास द्वारा मूलाधार चक्र से आज्ञा चक्र की ओर प्राणवायु का आरोहण²⁸—

कमलनाल से पानी को ऊपर की ओर खींचने की भाँति ही योगी को योगाभ्यासों के माध्यम से मूलाधार चक्र स्थित अपान वायु में मिश्रित प्राणवायु का केंद्रीय या सुषुम्ना नाड़ी से हृदय चक्र में आरोहण करना चाहिए। तत्पश्चात् जिस प्रकार कोई फूल बीज का रूप ले लेता है उसी प्रकार हृदय कमल में स्थित प्राणवायु को एकाग्रता एवं मनोशक्ति के द्वारा आधी मात्रा बनाकर सुषुम्ना नाड़ी के माध्यम से भौंहों के मध्य स्थित आज्ञा चक्र में ले जाकर लीन करना चाहिए। भौंहों के मध्य, मस्तिष्क एवं नाक के मूल भाग में स्थित आज्ञा चक्र को अमृतस्थान कहा गया है। सुषुम्ना नाड़ी के माध्यम से इस अमृतस्थान में प्राणवायु का लय केवल योगाभ्यास

²⁷ "पद्मस्योद्घाटनं कृत्वा सूर्यचन्द्राग्निवर्चसः।

तस्य हृदीजमाहृतस आत्मानं चरते ध्रुवम्।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्—35.

²⁸ "यथैवोत्पलनालेन तोयमाकर्षयेन्नरः।

तथैवोत्कर्षयेत् वायुं योगी योगपथे स्थितः।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्—38.

"अर्धमात्रात्मकं कृत्वां कोशभूतं तु पडकजम्।

कर्षयेन्नालमात्रेण भ्रुवोर्मध्ये लयं नयेत्।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्—39.

"भ्रूमध्ये तु ललाटे तु नासिकायास्तु मूलतः।

जानीयादमृतस्थानं तद् ब्रह्मायतनं महत्।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्—40.

द्वारा ही संभव हो सकता है। ध्यानबिन्दूपनिषद् के अनुसार, अमृतस्थान में प्राणवायु के लय हेतु छह योगांगों— आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का वर्णन किया गया है।

(vi). चक्र एवं कुण्डलिनी²⁹—

शरीरस्थ मणिपुर चक्र से जाती हुई सुषुम्ना नाड़ी के जिस मार्ग से होकर पाप—पुण्यों एवं जन्म—मरण के क्रम में उलझी हुई जीवात्मा मुक्ति हेतु ब्रह्म साक्षात्कार के लिये ब्रह्मरन्ध्र या ब्रह्मस्थान में पहुँचती हैं, उसी द्वार के मुँख बंद किये हुये सुप्तावस्था में कुण्डलिनी शक्ति विद्यमान रहती है।

इस कुण्डलिनी के जागरण हेतु दो उपायों का वर्णन किया गया है— 1. मन की एकाग्रता, 2. केवल कुम्भक प्राणायाम।

एकाग्र मन के साथ केवल कुम्भक प्राणायाम के अभ्यास से अपानवायु की धौंकनी से दहकती हुई अग्नि की गर्माहट से कुण्डलिनी शक्ति जागती है। जाग्रत कुण्डलिनी सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से होते हुए ब्रह्मरन्ध्र तक उसी प्रकार चली जाती है— ‘जैसे सुई में पिरोया हुआ तागा कपड़े में’ जाता है।

3.2.4 क्षुरिकोपनिषद् के अनुसार चक्र की संकल्पना

कृष्णयजुर्वेदीय शाखा से सम्बद्ध इस क्षुरिकोपनिषद् नामक योगोपनिषद् में कुल 25 मंत्र हैं। उपनिषद् का नाम ‘क्षुरिका’ इसलिए रखा गया है क्योंकि जिस प्रकार क्षुरिका (छुरी) काटने का काम करती है, उसी प्रकार यह उपनिषद् तत्त्वज्ञान के माध्यम से सांसारिक भव—बन्धनों को काटने की क्षमता रखता है। इसी क्रम में क्षुरिकोपनिषद् में कुल 25 मंत्रों के माध्यम से तत्त्वज्ञान से संबंधित अवरोधों को नष्ट करने हेतु स्वयंभू परमेश्वर के द्वारा वेदज्ञान के अनुकूल योगशास्त्र संबंधित उपदेश

²⁹ “येन मार्गेण गन्तव्यं ब्रह्मस्थानं निरामयम्।।” ध्यानबिन्दूपनिषद्—65.

“मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी।

प्रबुद्धा वहिन्योगेन मनसा मरुता सह।।” ध्यानबिन्दूपनिषद्—66

“सूचिवद् गुणमादाय ब्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्नया।

उदघाटयेत् कपाटं तु यथा कुञ्चिकया हठात्।।” ध्यानबिन्दूपनिषद्—67.

“कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत्।।” ध्यानबिन्दूपनिषद्—68.

दिये गये हैं तथा किस प्रकार तत्त्वज्ञान के इच्छुक साधक को ब्रह्म के चिंतन के रूप में धारणा करनी चाहिए इसका भी वर्णन किया गया है। पहले इस उपनिषद् में योग के अधिकार के विषय में कहकर बाद में आसन और प्राणायाम, प्राणायाम की तीन अवस्थाओं, मात्रा तथा प्रत्याहार के क्रम का विस्तार से वर्णन किया गया है। प्रत्याहार के इसी क्रम में योगी द्वारा शरीरस्थ सप्तचक्रों पर अपनी दृष्टि, मन और प्राण को एकाग्र करने के अभ्यास के अंतर्गत चक्रों का संस्थान वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् धारणा, ध्यान व समाधि का वर्णन किया गया है। फिर योग के साधन और योग के अधिकारी के विषय में कहा है और अन्त में समाधि का फल बताया है। इस प्रकार योग को सिद्ध करने वाले योगीजन सांसारिक बंधनों को हमेशा के लिये काट देते हैं, परिणामतः इनका पुनर्जन्म कभी नहीं होता तथा ये अमरत्व को प्राप्त हो जाते हैं। अतः यह सभी क्षुरिकोपनिषद् में प्रतिपादित मुख्य विषय है।

अतएव प्रस्तुत शोधकार्य के उद्देश्यानुसार यहाँ केवल प्रत्याहार के क्रम में क्षुरिकोपनिषद् में वर्णित सप्तचक्रों से संबंधित विभिन्न अवधारणाओं की विस्तृत विवेचना की गई है।

(i). प्रत्याहार के क्रम में सप्त चक्रों में एकाग्रता का अभ्यास—

प्राणायाम के अभ्यास को सफलता पूर्वक पूर्ण करने के पश्चात्, योगी को किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठकर प्रत्याहार के अभ्यासक्रम का संचालन करते हुए अपनी ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों को वश में रखकर केवल कुम्भक प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। कुम्भक के अभ्यास हेतु साधक द्वारा अपने हाथों की अंगुलियों के माध्यम से नासिका के छिद्रों को बन्द कर श्वास तथा प्रश्वास को रोके रखना चाहिए। तत्पश्चात् योगी द्वारा निम्नानुसार अपने शरीरस्थ क्षेत्र विशेष में स्थित सप्तचक्रों पर क्रमशः दृष्टि, मन और प्राण को एकाग्र करते हुए प्रत्याहार³⁰ का अभ्यास करना चाहिए।

³⁰ “स्थिरमात्मदृढं कृत्वा अङ्गुष्ठेन समाहितः।

द्वे गुल्फे तु प्रकुर्वीत जडः घे चैव त्रयस्त्रयः॥” क्षुरिकोपनिषद्— 6.

“द्वे जानुनी तथोरुद्वे गुदे शिश्नं त्रयस्त्रयः।

वायोरायतनं तत्र नाभिदेशे समाश्रयेत्॥” क्षुरिकोपनिषद्— 7.

“तत्र नाडी सुषुम्ना तु नाडिभिर्दशभिर्वृता।

(क) मूलाधार चक्र में दृष्टि, मन और प्राण की एकाग्रता—

साधक को अपनी दृष्टि, मन और प्राण को हृदय प्रदेश में एकाग्र कर, मन ही मन दोनों पैरों की अंगुलियों तथा एड़ियों में प्राणवायु की धारणा दो बार करनी चाहिए। तदुपरान्त यहीं प्राणवायु की धारणा तीन-तीन बार जंघाओं, घुटनों, गुदा और शिशन में करनी चाहिए।

(ख) स्वाधिष्ठान चक्र में दृष्टि, मन और प्राण की एकाग्रता—

दृष्टि, मन और प्राण को गुदा के पास स्थित मूलाधार चक्र व शिशन के समीप स्थित स्वाधिष्ठान चक्र में एकाग्र करना चाहिए। यह अभ्यास भी तीन बार दोहराया जाना चाहिए।

(ग) मणिपुर चक्र में दृष्टि, मन और प्राण की एकाग्रता—

नाभि में स्थित मणिपुर चक्र में अपनी दृष्टि, मन और प्राण को एकाग्र करते हुए प्रणव या ओंकार जप करना चाहिए। इस मणिपूर चक्र के कन्द में अनेकों सूक्ष्म नाड़ियों उपस्थित हैं इनमें से प्रमुख दस नाड़ियाँ एक अत्यन्त सूक्ष्म एवं प्रमुख 'सुषुम्ना नाड़ी' को घेरे हुए है। योगी को चाहिए कि वह मणिपुर चक्र के बाद इसी सुषुम्ना नाड़ी पर अपनी दृष्टि, मन और प्राण को एकाग्र करने का दृढ़तापूर्वक अभ्यास करें।

(घ) हृदय चक्र में दृष्टि, मन और प्राण की एकाग्रता—

सुषुम्ना नाड़ी के सहारे योगी को आत्मा के निवास स्थान लाल वर्ण युक्त हृदय कमल की ओर आगे बढ़ते हुए हृदय चक्र में अपनी दृष्टि, मन और प्राण को एकाग्र करते हुए ओंकार या प्रणव का जप करते रहना चाहिए। इस अभ्यास को दृढ़ करते हुए आगे विशद्वि चक्र की ओर बढ़ना चाहिए।

तत्र रक्ता च पीता च कृष्णा ताम्रा विलोहिता ।।" क्षुरिकोपनिषद्— 8.

"अतिसूक्ष्मां च तन्वीं च शुक्लां नाडीं समाश्रयेत्।

तत्र सञ्चारयेत् प्राणान् ऊर्णानाभीव तन्तुना ।।" क्षुरिकोपनिषद्—9.

"ततो रक्तोत्पलाभासं हृदयायतनं महत्।

दहरं पुण्डरीकं तत् वेदान्तेषु निगद्यते ।।" क्षुरिकोपनिषद्— 10.

"तद् भित्वा कण्ठमायाति तन्नाडीं पूरयेदिति ।।" क्षुरिकोपनिषद्— 11.

(च) विशुद्धि चक्र में दृष्टि, मन और प्राण की एकाग्रता—

क्षुरिकोपनिषद् के अनुसार विशुद्धि चक्र कण्ठ प्रदेश में स्थित है। हृदय चक्र में एकाग्रता के अभ्यास को दृढ़ करने के पश्चात् कण्ठ प्रदेश में स्थित विशुद्धि चक्र में अपनी दृष्टि, मन और प्राण को एकाग्र करना चाहिए।

(छ) आज्ञा चक्र में दृष्टि, मन और प्राण की एकाग्रता—

आज्ञाचक्र का स्थान भ्रूमध्य में वर्णित है। विशुद्धि चक्र को पार करने के पश्चात् भ्रू मध्य स्थित आज्ञाचक्र में दृष्टि, मन और प्राण को एकाग्र करने का अभ्यास करना चाहिए।

(ज) सहस्रार चक्र में दृष्टि, मन और प्राण की एकाग्रता—

सिर के अगले भाग में तालु के ऊपर सहस्रार चक्र स्थित है। इस सहस्रार चक्र में दृष्टि, मन और प्राण को एकाग्र करने का अभ्यास करना चाहिए।

इस प्रकार क्षुरिकोपनिषद् के अनुसार योगी द्वारा अपने शरीरस्थ क्षेत्र विशेष में स्थित सप्तचक्रों पर क्रमशः दृष्टि, मन और प्राण को एकाग्र करने का यह क्रम ही 'प्रत्याहार या इन्द्रियों का संयम' कहलाता है।

3.2.5 योगकुण्डलिन्युपनिषद् के अनुसार चक्र की संकल्पना—

योगकुण्डलिन्युपनिषद् कृष्णयजुर्वेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् है। कुल तीन अध्यायों में प्रथम अध्याय में 87 सूत्र, द्वितीय अध्याय में 49 सूत्र तथा तृतीय अध्याय में 35 सूत्रों के साथ यह कुल 171 सूत्रों का संकलन है। प्रस्तुत शोधकार्य के उद्देश्यानुसार इस उपनिषद् के प्रथम अध्याय के विषयों में प्राणायाम तथा इसकी सिद्धि हेतु तीन उपायों के रूप में मिताहार, आसन और शक्तिचालिनी मुद्रा का वर्णन किया गया है। साथ ही प्राणायाम के प्रकार, तीन प्रकार के बन्ध, योगाभ्यास के दौरान आने वाली बाधाएँ तथा उनसे बचने के उपाय, कुण्डलिनी जागरण, ग्रन्थिभेदन, कुण्डलिनी का सहस्रार चक्र में प्रवेश तथा प्राणदि का विलीनीकरण एवं समाधि योग

आदि के बारे में विस्तृत चर्चा की गयी है। द्वितीय अध्याय में खेचरीमुद्रा के स्वरूप, लाभ तथा सिद्धियों एवं तृतीय अध्याय में खेचरी मुद्रा तथा साधक के दृष्टिकोण का सउदाहरण वर्णन किया गया है।

(i). योगकुण्डलिन्युपनिषद् में वर्णित 'चक्र' संबंधित अवधारणा—

योगकुण्डलिन्युपनिषद् के अनुसार कहा गया है कि— मन की चंचलता पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित करने के लिए प्राण पर विजय हासिल कर, मिताहार, दिये गये योगाभ्यासो तथा सरस्वतीचालन मुद्रा के अभ्यास के माध्यम से कुण्डलिनी को चलायमान किया जाता है। फलस्वरूप चक्रों का भेदन किया जाता है। जिसमें क्रमशः छह चक्रों— मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूर चक्र, अनाहत चक्र, और आज्ञा चक्र का भेदन कर सुख मण्डल रूपी सहस्रार चक्र में प्रविष्ट होना चाहिए। साधक के शरीर में इन छह चक्रों की स्थिति निम्नानुसार वर्णित हैं— गुदास्थान के समीप मूलाधार चक्र स्थित है, लिंग के समीप स्वाधिष्ठान चक्र, नाभिमण्डल में मणिपूर चक्र, हृदय में अनाहत चक्र, कण्ठमूल में विशुद्ध चक्र तथा मस्तक में आज्ञाचक्र का स्थान है। इस उपनिषद् के उपदेशानुसार साधक को चाहिए कि वह इन छह चक्रों को जानकार प्राण का अवरोहण कर इस प्राणवायु को सहस्रार चक्र में प्रवेश करायें।³¹

इस प्रकार, साधक द्वारा सही रूप में चित्त, प्राणवायु और चक्र का अभ्यास हो जाने के फलस्वरूप साधक या योगीजनों को इन सभी के एकाकार से अमृतरूपी समाधि प्राप्त होती है।³²

कुण्डलिनी के जागरण या इसे नीचे स्थित मूलाधार चक्र से ऊपर आज्ञाचक्र तक लाने हेतु यहाँ दो मुख्य उपाय वर्णित हैं— 1. सरस्वतीचालनक्रिया 2. अभ्यास के

³¹ “षट् चक्राणि परिज्ञात्वा प्रविशेत्सुखमण्डलम्।
मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरं तृतीयकम्॥” योगकुण्डल्युपनिषत् 3/9.
“अनाहतं विशुद्धिं च आज्ञाचक्रं च षष्ठकम्।
आधारं गुदमित्युक्तं स्वाधिष्ठानं तु लैङ्गिकम्॥” योगकुण्डलिन्युपनिषद् 3/10.
“मणिपूरं नाभिदेशं हृदयस्थमनाहतम्।
विशुद्धिः कण्ठमूले च आज्ञाचक्रं च मस्तकम्॥” योगकुण्डल्युपनिषत् 3/11.
“षट् चक्राणि परिज्ञात्वा प्रविशेत्सुखमण्डले।
प्रविशेद्वायुमाकृष्य तथैवोर्ध्वं नियोजयेत्॥” योगकुण्डल्युपनिषत् 3/12.
³² “वायुं बिन्दू तथा चक्रं चित्तं चैव समभ्यसेत्॥” योगकुण्डल्युपनिषत् 3/13.
“समाधिमेकेन समममृतं यान्ति योगिनः॥” योगकुण्डल्युपनिषत् 3/14.

माध्यम से प्राण का निरोध करना।³³ जिस काल में अपान वायु ऊपर की ओर पहुँचकर अग्निमण्डल के साथ युग्मन करती है, तब इस अपान वायु से टकराकर यह अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है। प्राण के साथ इस अपान वायु और अग्नि के मिलने के प्रभावस्वरूप शरीरस्थ सभी प्रकार के विकार दग्ध हो जाते हैं तथा इस अग्नि की उष्मा से सुप्तावस्था में स्थित कुण्डलिनी जाग उठती है और फटकारी हुई सर्पिणी की तरह फुटकार मारती हुई सीध में आ जाती है।³⁴

जाग्रत अवस्था में कुण्डलिनी एक सीधी रेखा में होकर सुषुम्ना नाड़ी के मुख पर आकर उसमें प्रविष्ट हो जाती है। इस समय यह कुण्डलिनी शक्ति रजोगुण उत्पादित ब्रह्मग्रंथि को भेदकर बिजली की भाँति सुषुम्ना नाड़ी के मुँह के अन्दर अवरोहण करती हुई शीघ्रता से हृदयचक्र स्थित विष्णुग्रंथि को भेदकर आगे बढ़ती हुई ऊपर स्थित आज्ञाचक्र में स्थित रुद्रग्रंथि तक पहुँचती है।³⁵

भौहों के मध्य स्थित आज्ञाचक्र को भेदकर यह कुण्डलिनी चन्द्रस्थान स्थित सोलह—दलीय अनाहतचक्र में पहुँचती है। इस स्थान पर यह कुण्डलिनी शक्ति शुक्लरूप चंद्र को तपाते हुए क्षुब्धावस्था में वहीं घूमती रहती है।³⁶ इस कुण्डलिनी के

³³ “कुण्डल्येव भवेच्छक्तिस्तां तु संचालयेद्बुधः।
स्वस्थज्ञानादभ्रुवोर्मध्यं शक्तिचालनमुच्यते।।” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/7.
“तत्साधने द्वयं मुख्यं सरस्वत्यास्तु चालनम्।
प्राणरोधमध्यासादृज्जी कुण्डलिनी भवेत्।।” योगकुण्डल्युपनिषत्—1/8.
“तयोरादौ सरस्वत्याश्चालनं कथयामि ते।
अरुन्धत्येव कथिता पुराविद्धिः सरस्वती।।” योगकुण्डल्युपनिषत्—1/9.
“यस्याः संचालनेनैव स्वयं चलति कुण्डली।” योगकुण्डल्युपनिषत्—1/10.
“मुहुर्तद्वयपर्यन्तं निर्भयाच्चालयेत्सुधीः।
ऊर्ध्वमाकर्षयेत्किञ्चित्सुषुम्नां कुण्डलीगताम्।।” योगकुण्डल्युपनिषत्—1/13.
“तेन कुण्डलिनी तस्यां सुषुम्नाया मुखं व्रजेत्।
जहाति तस्मात्प्राणोऽयं सुषुम्नां व्रजति स्वतः।।” योगकुण्डल्युपनिषत्—1/14.

³⁴ “अपाने चोर्ध्वगे याते संप्राप्ते वह्निमण्डले।
ततोऽनलशिखा दीर्घा वर्धते वायुना हता।।” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/43.
“ततो यातौ वह्न्यपानौ प्राणमुष्णस्वरूपकम्।
तेनात्यन्तप्रदीप्तेन ज्वलनो देहजस्तथा।।” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/44.
“तेन कुण्डलिनी सुप्ता संतप्ता सम्प्रबुध्यते।
दण्डातभुजङ्गीव निःश्रवस्य ऋजुतां व्रजेत्।।” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/45.

³⁵ “प्राणस्थानं ततो वह्निः प्राणापानौ च सत्वरम्।
मिलित्वा कुण्डलीं याति प्रसुप्ता कुण्डलाकृतिः।।” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/65.
“तेनाग्निना च सन्तप्ता पवनेनैव चालिता।
प्रसार्य स्वशरीरं तु सुषुम्ना वदनान्तरे।।” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/66.
“ब्रह्मग्रन्थि ततो भित्त्वा रजोगुणसमुद्भवम्।
सुषुम्नावदने शीघ्रं विद्युल्लेखेव संस्फुरेत्।।” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/67.
विष्णुग्रन्थिं प्रयात्युच्चैः सत्वरं हृदि संस्थिता।
ऊर्ध्वं गच्छति यच्चान्ते रुद्रग्रन्थिं तदुद्भवम्।।” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/68.

³⁶ “भ्रुवोर्मध्यं तु सम्मिद्य याति शीतांशुमण्डलम्।
अनाहताख्यं यच्चक्रं दलैः षोडशभिर्युतम्।।” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/69.

जागरण हेतु एक अन्य उपाय के रूप में यहाँ पद्मासन का वर्णन किया गया है अतः पद्मासन में बैठकर गुदा भाग को सिकोड़ते हुए, कुम्भक का अभ्यास करके वायु को उपर की ओर स्वाधिष्ठानचक्र में उपस्थित अग्नि की ओर ले जाते हैं तथा उस वायु के आघात द्वारा अग्नि को प्रज्ज्वलित करने से सुप्तावस्था में स्थित यह कुण्डलिनी जाग उठती है तथा तीनों नाड़ियों— ब्रह्मा नाड़ी, विष्णु नाड़ी, रुद्र नाड़ी को भेदकर षट्चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार चक्र या कमल तक पहुँचती है और वहाँ स्थित शिव के साथ यह शक्ति एक होकर आनन्दावस्था प्राप्त करती है। यह आनन्दावस्था ही परमानन्द मुक्ति—प्रदाता कहलाती है।³⁷

“तत्र शीतांशुसञ्जातं द्रवं शोषयति स्वयम्।
चलिते प्राणवेगेन रक्तं पित्तं रवेर्ग्रहात्॥” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/70.
“यातेन्दुचक्रं यत्रास्ते शुद्धश्लेष्मद्रवात्मकम्।
तत्र सितं ग्रसत्युष्णं कथं शीतस्वभावकम्॥” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/71.
“तथैव रभसा शुक्लं चन्द्ररूपं हि तप्यते।
ऊर्ध्वं प्रवहति क्षुब्धा तदैवं भ्रमतेतराम्॥” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/72.
³⁷ “पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं लिङ्गसूत्रात्मनोरपि।
स्वापाव्याकृतयोरैक्यं स्वप्रकाशचिदात्मनोः॥” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/81.
“शक्तिः कुण्डलिनी नाम बिसतन्तुनिभा शुभा।
मूलकन्दं फणाग्रेण दृष्ट्वा कमलकन्दवत्॥” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/82.
“मुखेन पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रसमन्विता।
पद्मासनगतः स्वस्थो गुदमाकुञ्चय साधकः॥” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/83.
“वायुमूर्ध्वगतं कुर्वन्कुम्भकाविष्टमानसः।
वायवाघातवशादग्निः स्वाधिष्ठानगतो ज्वलन्॥” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/84.
“ज्वलनाघातपवनाघातैरुन्निद्रितोऽहिराट्।
ब्रह्मग्रन्थिं ततो भित्त्वा विष्णुग्रन्थिं भिनत्त्यतः॥” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/85.
“रुद्रग्रन्थिं च भित्त्वैव कमलानि भिनत्ति षट्।
सहस्रत्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते॥” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/86
“सैवावस्था परा ज्ञेया सैव निर्वृतिकारिणुम्मावदने
शीघ्रं विद्युल्लेखेव संस्फुरेत्॥” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/67.
विष्णुग्रन्थिं प्रयात्युच्चैः सत्वरं हृदि संस्थिता।
ऊर्ध्वं गच्छति यच्चान्ते रुद्रग्रन्थिं तदुद्भवम्॥” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/68.
³⁷ “भ्रुवोर्मध्यं तु सम्मिष्टं याति शीतांशुमण्डलम्।
अनाहताख्यं यच्चक्रं दलैः षोडशभिर्युतम्॥” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/69.
“तत्र शीतांशुसञ्जातं द्रवं शोषयति स्वयम्।
चलिते प्राणवेगेन रक्तं पित्तं रवेर्ग्रहात्॥” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/70.
“यातेन्दुचक्रं यत्रास्ते शुद्धश्लेष्मद्रवात्मकम्।
तत्र सितं ग्रसत्युष्णं कथं शीतस्वभावकम्॥” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/71.
“तथैव रभसा शुक्लं चन्द्ररूपं हि तप्यते।
ऊर्ध्वं प्रवहति क्षुब्धा तदैवं भ्रमतेतराम्॥” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/72.
³⁷ “पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं लिङ्गसूत्रात्मनोरपि।
स्वापाव्याकृतयोरैक्यं स्वप्रकाशचिदात्मनोः॥” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/81.
“शक्तिः कुण्डलिनी नाम बिसतन्तुनिभा शुभा।
मूलकन्दं फणाग्रेण दृष्ट्वा कमलकन्दवत्॥” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/82.
“मुखेन पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रसमन्विता।
पद्मासनगतः स्वस्थो गुदमाकुञ्चय साधकः॥” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/83.
“वायुमूर्ध्वगतं कुर्वन्कुम्भकाविष्टमानसः।
वायवाघातवशादग्निः स्वाधिष्ठानगतो ज्वलन्॥” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/84.
“ज्वलनाघातपवनाघातैरुन्निद्रितोऽहिराट्।
ब्रह्मग्रन्थिं ततो भित्त्वा विष्णुग्रन्थिं भिनत्त्यतः॥” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/85.
“रुद्रग्रन्थिं च भित्त्वैव कमलानि भिनत्ति षट्।
सहस्रत्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते॥” योगकुण्डल्युपनिषत्— 1/86—87.

3.2.6 वराहोपनिषद् के अनुसार चक्र की संकल्पना

वराहोपनिषद् कृष्णयजुर्वेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् है। इस उपनिषद् में ऋभु द्वारा भगवान् वराह से ब्रह्मविद्या का उपदेश लिया गया है। इसे पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। पहले अध्याय में तत्त्वों की संख्या, तत्त्वातीत भगवद्बुद्धि तथा उस बुद्धि के फल के बारे में वर्णन किया गया है। दूसरे अध्याय में चार प्रकार के साधनों, आत्मानुसन्धान, आत्मज्ञानी की स्थिति, आत्मा स्वरूप, ज्ञानी और अज्ञानी की स्थिति वैलक्षण्य, जीवन्मुक्ति आदि विषयों का विवेचन किया गया है। तृतीय अध्याय में चिन्मात्रभाव प्राप्ति, मोक्ष आदि विषयों पर चर्चा की गयी है। चौथे अध्याय में प्रणव की सात भूमिकाएँ, अकारादि की विकृति के प्रकार, जीवन्मुक्ति के प्रकार वर्णित है। पाँचवे व अन्तिम अध्याय में योग संबंधित विषय एवं नाड़ियों के वर्णन के साथ ही षट्चक्र एवं कुण्डलिनी की भी व्याख्या की गयी है। अतएव वराहोपनिषद् में वर्णित चक्र एवं कुण्डलिनी से संबंधित अवधारणाओं की विवेचना निम्नानुसार हैं।

षट्चक्र एवं कुण्डलिनी—

मूलाधार चक्र सहित स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूर चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्धि चक्र, आज्ञा चक्र इत्यादि षट्चक्रों को शक्तिस्थान कहा गया है। वराहोपनिषद् के अनुसार, गुदाद्वार एवं लिंगमूल के मध्य में त्रिकोणीय संरचना वाला 'मूलाधार चक्र' स्थित है जिसे बिन्दुस्वरूप शिव का प्रकाशक स्थान भी कहा गया है। इस मूलाधार चक्र में 'कुण्डलिनी' नाम की परा-शक्ति का स्थान वर्णित है। इसी स्थान से वायु, अग्नि, बिन्दु, नाद, सोऽहं मंत्र या हंस तथा मन की उत्पत्ति होती है। "कण्ठ से ऊपर मस्तिष्क तक 'शांभव स्थान'—आत्मा का स्थान कहलाता है।"³⁸

³⁸ "गुदमेढान्तरालस्थं मूलाधारं त्रिकोणकम्।
शिवस्य बिन्दुरूपस्य स्थानं तद्धि प्रकाशकम्।।" वराहोपनिषत्— 5/50.
"यत्र कुण्डलिनी नाम परा शक्तिः प्रतिष्ठिता।
यस्मादुत्पद्यते वायुर्यस्माद्वह्निः प्रवर्धते।।" वराहोपनिषत्— 5/51.
"यस्मादुत्पद्यते बिन्दुर्यस्मान्नादः प्रवर्धते।
यस्मादुत्पद्यते हंसो यस्मादुत्पद्यते मनः।।" वराहोपनिषत्— 5/52
"मूलाधारादिषट्चक्रं शक्तिस्थानमुदीरितम्।
कण्ठादुपरि मूर्धान्तं शांभवं स्थानमुच्चयते।।" वराहोपनिषत्— 5/53.
"नाडीनामाश्रयः पिण्डो नाड्यः प्राणस्य चाश्रयः।
जीवस्य निलयः प्राणो जीवो हंसस्य चाश्रयः।।" वराहोपनिषत्— 5/54.

वराहोपनिषद् में बारह आरों से युक्त नाड़ी चक्र की व्याख्या की गयी है तथा इस नाड़ी चक्र को ही शरीर धारण करने का आधार बताया गया है। इस नाड़ी चक्र में 'कुण्डली' को अवस्थित माना गया है। नाड़ी चक्र में स्थित प्रमुख नाड़ी अर्थात् सुषुम्ना नाड़ी अपने मुँह से ब्रह्मरन्ध्र को ढँके हुए है।³⁹ इस ब्रह्मरन्ध्र के मध्य भाग को 'कुण्डली' सदैव ढँके हुए रहती है। नाभि क्षेत्र के मध्य स्थान को 'नाभि चक्र' कहा गया है।⁴⁰

3.2.7 योगशिखोपनिषद् के अनुसार चक्र की संकल्पना

योगशिखोपनिषद् कृष्णयजुर्वेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् हैं। यह हिरण्यगर्भ तथा महादेव के मध्य संवाद के रूप में है। जिसके अंतर्गत तत्त्वज्ञान एवं योग संबंधित ज्ञान पर चर्चा मुख्य विषय हैं। इस उपनिषद् को कुल छह अध्यायों में विभक्त कर मोक्ष प्राप्ति के साधन स्वरूप द्विमार्गी— ज्ञान तथा योग पर मुख्य रूप से विषद् चर्चा की गयी है। इन दो मार्गों पर चलने से जीवात्मा दोषमुक्त होकर शिव स्वरूप हो जाती है। साथ ही इस उपनिषद् में योगांगों के अंतर्गत आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा चक्रों तथा नाड़ियों आदि विस्तारपूर्वक वर्णित है। इस उपनिषद् के उपदेशानुसार, साधक को सर्वप्रथम पद्मासन में बैठकर शरीर को स्थिर रखते हुए मन को किसी स्थान विशेष पर एकाग्रचित्त कर प्रणव अर्थात् ओंकार जप करते हुए हृदय प्रदेश में दीप की शिखा की भाँति ब्रह्म का ध्यान करना चाहिए। साधक के शरीर में एक स्तम्भ रूपी रीढ़ की हड्डी, नौ दरवाजों के रूप में चक्रों तीन खूंटों के रूप में तीन प्रमुख नाड़ियाँ तथा पंच देवताओं के रूप में पाँच प्राण उपस्थित है। साधक जब पापों से मुक्त हो जाता है उस समय योगसाधना के माध्यम से वह संसार के बंधनों को काँटता हुआ परब्रह्म की अनुभूति करता है।

³⁹ "तत्रैव नाडीचक्रं तु द्वादशारं प्रतिष्ठितम्।

शरीरं ध्रियते येन वर्तते तत्र कुण्डली॥" वराहोपनिषद्- 5/22

"ब्रह्मरन्ध्रं सुषुम्ना या बदनेन पिधाय सा।" वराहोपनिषद्- 5/23.

⁴⁰ "पटमध्यं तु यत्स्थानं नाभिचक्रं तदुच्यते।

नादाधारा समाख्याता ज्वलन्ती नादरूपिणी॥" वराहोपनिषद्- 5/29.

"पररन्ध्रा सुषुम्ना च चत्वारो रत्नपूरिताः।

कुण्डल्या पिहितं शश्वद्ब्रह्मरन्ध्रस्य मध्यमम्॥" वराहोपनिषद्- 5/30.

अतएव प्रस्तुत शोधकार्य के उद्देश्यानुसार, योगशिखोपनिषद् में वर्णित चक्र एवं कुण्डलिनी संबंधित अवधारणा की विस्तृत विवेचना निम्नानुसार हैं।

चक्र संबंधित अवधारणा—

योगशिखोपनिषद् के अनुसार, सृष्टि में उपस्थित सभी प्राणियों के लिए 'देह' को सिद्धि प्रदान करने वाला कहा गया है। इस उपनिषद् में मानवीय देह को षट्चक्रों के आधार रूपी पर्दों के रूप में वर्णित किया गया है। यह छह चक्ररूपी आधार इस शरीर को घेरे हुए है, इस देह में कामरूपादि चार पीठों स्थित है। इसी देह में वेद स्वरूपी दीपक प्रकाशमान है, बिन्दु, नाद, महालिंग, विष्णु एवं लक्ष्मी रूपी अधिदेवताओं का यह देह निवासस्थान है।⁴¹ अतएव मानवीय शरीरस्थ षट्चक्रों संबंधित अवधारणा निम्नानुसार हैं—

(क) मूलाधार चक्र—

शरीरस्थ गुदाद्वार एवं शिशन के मध्य स्थित त्रिकोण आकृति वाले चक्र को 'मूलाधार चक्र' कहते हैं। इस स्थान को जीवस्वरूप लिये हुए शिव का स्थान कहा गया है। इसी मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी नामक परा-शक्ति को उच्चपदस्थ माना गया है। इस मूलाधार प्रदेश से ही प्राणवायु, अग्नि या तेज, बिन्दु एवं नाद की उत्पत्ति होती है।⁴²

⁴¹ "पुनर्योगं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्मस्वरूपकम्।
समाहितमना भूत्वा शृणु ब्रह्मन् यथाक्रमम्॥" योगशिखोपनिषत्— 5/1.

"दशद्वारपुरं देहं दशनाडीमहापथम्।
दशभिर्वायुभिर्व्याप्तं दशेन्द्रियपरिच्छदम्॥" योगशिखोपनिषत्— 5/2

"षडाधारापवरकं षडन्वयमहावनम्।
चतुष्पीठसमाकीर्णं चतुराम्नायदीपकम्॥ योगशिखोपनिषत्— 5/3

"बिन्दुनादमहालिंगविष्णुलक्ष्मीनिकेतनम्।
देह विष्णुवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम्॥" योगशिखोपनिषत्— 5/4.

⁴² "देहं शिवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम्।
गुदमेढ्रान्तरालस्थं मूलाधारं त्रिकोणकम्॥" योगशिखोपनिषत्— 1/168, 5/5.

"शिवस्य जीवरूपस्य स्थानं तद्धि प्रचक्षते।
यत्र कुण्डलिनी नाम परा शक्तिः प्रतिष्ठिता॥" योगशिखोपनिषत्— 1/169, 5/6.

"यस्मादुत्पद्यते वायुर्यस्माद्वह्निः प्रवर्तते।
यस्मादुत्पद्यते बिन्दुर्यस्मात्त्रादः प्रवर्तते॥" योगशिखोपनिषत्— 1/170, 5/7.

(ख) स्वाधिष्ठान चक्र—

मनवांछित फल प्रदान करने वाले 'कामरूप पीठ' के समीप स्थित लिंगमूल में, छह—दलीय 'स्वाधिष्ठान चक्र' को स्थित माना गया है। स्वाधिष्ठान प्रदेश से ही 'हंस' एवं मन की उत्पत्ति होती है।⁴³

(ग) मणिपुर चक्र—

स्वाधिष्ठान प्रदेश से ऊपर नाभि प्रदेश में दश आराओं वाले चक्र को 'मणिपुरक चक्र' कहा जाता है।⁴⁴

(घ) अनाहत चक्र—

हृदय प्रदेश में स्थित बारह—दलीय या आराओं वाले चक्र को 'अनाहत चक्र' कहा जाता है। इसी स्थान पर 'महीचक्र' की भी स्थिति है तथा इस स्थान को 'पूर्णगिरि पीठ' भी कहा गया है।⁴⁵

(च) विशुद्धि चक्र—

कण्ठकूप प्रदेश में स्थित चक्र को 'विशुद्धि चक्र' कहलाता है। सोलह दल वाला कमल है। इस स्थान को 'जालन्धर पीठ' भी कहते हैं जो प्रभु इन्द्र या सुरेश्वर का निवास स्थान है।

(छ) आज्ञा चक्र—

दोनों भ्रुकुटियों के मध्य स्थित उत्तम दो दलीय कमल को 'आज्ञाचक्र' कहते हैं तथा इस स्थान को 'उड्डयाण महापीठ' भी कहा जाता है, इसी पीठ पर यह आज्ञाचक्र उच्चपदस्थ है।⁴⁶ चार कोने वाली धरणि में अधिदेव 'ब्रह्म' का स्थान है।

⁴³ "यस्मादुत्पद्यते हंसो यस्मादुत्पद्यते मनः।

तदेतत् कामरूपस्थं पीठं कामफलप्रदम्॥" योगशिखोपनिषत्— 1/171.

"स्वाधिष्ठानाह्वयं चक्रं लिंगमूलं षडस्त्रके॥" योगशिखोपनिषत्— 1/172, 5/8.

⁴⁴ "नाभिदेशे स्थितं चक्रं दशारं मणिपूरकम्॥" योगशिखोपनिषत्— 1/172, 5/9.

⁴⁵ "द्वादशारं महाचक्रं हृदये चाप्यनाहतम्।

तदेतत् पूर्णगिर्याख्यं पीठं कमलसम्भव॥" योगशिखोपनिषत्— 1/173, 5/10.

⁴⁶ "आज्ञा नाम भ्रुवोर्म्यध्ये द्विदलं चक्रमुत्तमम्।

उडयाणाख्यं महापीठमुपरिष्ठात् प्रतिष्ठितम्॥" योगशिखोपनिषत्— 1/175, 5/11.

तथा अर्धचन्द्र के समान आकृति वाले जल के अधिदेव 'विष्णु', त्रिकोणमण्डल वहिन के अधिदेव 'रुद्र', षट्कोणीय बिम्ब की आकृति वाले वायु के अधिदेव 'ईश्वर' एवं गोल आकार वाले आकाशमण्डल के अधिदेव 'सदाशिव' व दोनों भ्रुकुटियों के मध्य नादमण्डल को मन का मण्डल कहा गया है।⁴⁷

योगशिखोपनिषद् के अनुसार इन षट्चक्रों को भलिभाँति जानकर उनका भेदन कर सुखमण्डल में प्रवेश कराना अर्थात् मनोविलय करना चाहिए।⁴⁸ इन छह चक्रों का भेदन करने हेतु साधक को चाहिए कि वह प्रत्येक चक्र के अलंकारभूत जो अधिदेव या मूर्तियाँ हैं जैसे आधार प्रदेश के पश्चिम भाग में ब्रह्मादि उनका ध्यान करते हुए इन षट्चक्रों का भेदन कर ब्रह्मरन्ध्र या सुषुम्नारन्ध्र स्थित प्राण को सहस्त्रार चक्र तक पहुँचाकर उज्ज्वल तुरीय अवस्था को प्राप्त होता है। इस प्रकार चक्रों के भेदन के फलस्वरूप साधक परमगति को प्राप्त करता है।⁴⁹

3.2.8 योगतत्त्वोपनिषद् के अनुसार चक्र की संकल्पना

योगतत्त्वोपनिषद् कृष्णयजुर्वेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् हैं। यह ब्रह्म पितामह एवं श्रीहरि विष्णु के मध्य योगांग विषय पर आधारित चर्चा रूपी उपदेश है। यह उपनिषद् मुख्य रूप से योग के भिन्न-भिन्न प्रकारों एवं उपादानों से संबंधित व्याख्यान पर केंद्रित है, तथा कैवल्यपद की प्राप्ति के श्रेष्ठतक साधन के रूप में योगमार्ग का वर्णन किया गया है। इस उपनिषद् में योग के चार प्रकार— मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग और राजयोग तथा उनकी चार अवस्थाओं— आरंभावस्था, घटावस्था, परिचयावस्था और निष्पत्तिवस्था का संकलन है। साथ ही यहाँ योग साधना हेतु आवश्यक निर्देशों के अंतर्गत आहार-विहार, स्थान एवं दिनचर्या इत्यादि की भी चर्चा

⁴⁷ "चतुरस्त्रं धरण्यादौ ब्रह्मा तत्राधिदेवता ।
अर्धचन्द्राकृतिजलं विष्णुस्तस्याधिदेवता ।।" योगशिखोपनिषत्— 1/176, 5/13.
"त्रिकोणमण्डलं वही रुद्रस्तस्याधिदेवता ।
वायोबिम्बं तु षट्कोणमीयश्वरोऽस्याधिदेवता ।।" योगशिखोपनिषत्— 1/177, 5/14.
"आकाशमण्डलं वृत्तं देवतास्य सदाशिवः ।
नादरूपं भ्रुवोर्मध्ये मनसो मण्डलं विदुः ।।" योगशिखोपनिषत्— 1/178, 5/15.

⁴⁸ "षट् चक्राणि परिज्ञात्वा प्रविशेत् सुखमण्डलम् ।
प्रविशेद्वायुमाकृष्य तथैवोर्ध्वं नियोजयेत् ।।" योगशिखोपनिषत्— 6/74.

⁴⁹ "आधारपश्चिमे भागे मूर्तिस्तिष्ठति संज्ञया ।
षट्चक्राणि च निर्भिद्य ब्रह्मरन्ध्राद्बहिर्गतम् ।।" योगशिखोपनिषत्— 6/33.
"वामदक्षे निरुद्धन्ति प्रविशन्ति सुषुम्नया ।
ब्रह्मरन्ध्रं प्रविश्यन्ति ते यान्ति परमां गतिम् ।।" योगशिखोपनिषत्— 6/34.

की गयी है। योग साधना के अंतिम लक्ष्य के रूप में सिद्धियों की निःसंदिग्धता बताते हुए आत्मतत्त्व के साक्षात्कार को ही परम लक्ष्य बताया गया है। “यह सूचित करते हुए कहा गया है कि निर्वात दीपशिखा की तरह अन्तःकरण में आत्मतत्त्व का साक्षात्कार करके संसार चक्र से मुक्त हो जाना ही परम लक्ष्य है। सभी उपनिषदों की तरह इस उपनिषद् की फलश्रुति भी यही है।” अतएव योगतत्त्वोपनिषद् में योग की चार अवस्थाओं के अंतर्गत चौथी अवस्था अर्थात् ‘परिचयावस्था’ के अंतर्गत मूलाधार चक्र स्थित कुण्डलिनी शक्ति का वर्णन अत्यंत ही संक्षिप्त रूप में किया गया है। जिसे शोधकर्ता द्वारा अपने इस अध्ययन में सम्मिलित किया गया है।

मूलाधार चक्र—

योगतत्त्वोपनिषद् में परिचय अवस्था की प्राप्ति हेतु मूलाधार चक्र स्थित कुण्डलिनी शक्ति का वर्णन करते हुए लिखा गया है— “योग की चार अवस्थाओं के अंतर्गत चौथी अवस्था जिसे ‘परिचयावस्था’ कहा जाता है, इस अवस्था को प्राप्त करने हेतु साधक को चाहिए की वह निरन्तर योगाभ्यास करते हुए ‘अग्नि तत्त्व’ के साथ मूलाधार स्थित कुण्डलिनी शक्ति की भावना करके, निरोधरहित होकर, इस कुण्डलिनी शक्ति को सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कराये तब यह परिचय की अवस्था होती है।”⁵⁰

3.3 शुक्लयजुर्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों में चक्र संबंधित अवधारणा

वैदिक शाखा के शुक्लयजुर्वेदीय शाखा में शामिल योगोपनिषदों में ‘त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्’, ‘मण्डलब्राह्मणोपनिषद्’, ‘अद्वयतारकोपनिषद्’ एवं ‘हंसोपनिषद्’ का स्थान प्रधान हैं जिनमें चक्र जैसे गुढ़ रहस्यमयी विषयों का प्रतिपादन किया गया है। अतएव त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, मण्डलब्राह्मणोपनिषद्, अद्वयतारकोपनिषद् एवं हंसोपनिषद् के अनुसार चक्र की संकल्पना निम्नानुसार हैं—

⁵⁰ वायुः परिचितो यत्नादग्निना सह कुण्डलीम्।

भावयित्वा सुषुम्नायां प्रविशेदनिरोधतः॥ योगतत्त्वोपनिषत्— 82

शास्त्री, केशवलाल वी., (2014), उपनिषत्सञ्चयनम्: ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः, योगतत्त्वोपनिषत्, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, सूत्र संख्या— 82, पृष्ठ संख्या 360—361.

3.3.1 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार चक्र की संकल्पना

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् शुक्लयजुर्वेद शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् तथा हिंदु धर्म के लघु उपनिषदों में से एक है। यह दो भागों में विभक्त है— एक ब्राह्मण भाग और दूसरा मंत्र भाग तथा जिसमें कुल 165 संस्कृत सूत्रों का संकलन है। त्रिशिखी नाम के ब्राह्मण और भगवान् आदित्य के बीच आत्मा और ब्रह्म विषयक प्रश्नोत्तर से इस उपनिषद् का आरंभ होता है। इस उपनिषद् में आध्यात्मिक वास्तविकता अर्थात् ब्राह्मण और आत्मा की गैर-सापेक्ष प्रकृति पर चर्चा की गयी है। आत्मज्ञान के साधन के रूप में एवं ब्रह्मप्राप्ति के उपायभूत योग के आठ अंगों— यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि का वर्णन किया गया है। यह योगाभ्यास के माध्यम से गैर-द्वैतवादी वेदांत के विचारों को प्रस्तुत करता है। अतः इस प्रकार इस उपनिषद् की अधिकांश चर्चा योग पर केंद्रित है। अन्य विषयों में शिवतत्त्व की सर्वव्यापकता, ब्रह्म का जगत्कारणत्व, एक का बहुधा होना, ब्रह्म से लेकर पञ्चीकरण तक की सृष्टि का वर्णन, चार अवस्थाएँ, दक्षिण-उत्तर पथ, ज्ञान द्वारा सद्योमुक्ति, ज्ञानोपायरूप योग, कर्मयोग-ज्ञानयोग-अष्टांगयोग-हठयोग का वर्णन है। हठयोग के अन्तर्गत आसन, नाडीशोधन, प्राणायाम की विधियाँ, अग्निमण्डल, नाडीचक्र में जीव का भ्रमण, कुण्डलिनी-स्थान-क्रियाव्यापार, नाडिकेन्द्र की स्थिति, नाडिविचरण, योगाभ्यास का स्थान और विधि, षण्मुखीमुद्रा, मनोजय, प्रत्याहार, ध्यान, धाराणा और उनके भेदोपभेद आदि अनेकानेक विषयों का विषद् वर्णन किया गया है।

इस प्रकार प्रस्तुत शोधकार्य के उद्देश्यानुसार, त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में वर्णित चक्र एवं कुण्डलिनी से संबंधित अवधारणाओं की विस्तृत विवेचना निम्नानुसार है।

(i). चराचरात्मक विश्वसृष्टि के अंतर्गत सहस्रार चक्र की चर्चा—

अज्ञान से अछूति आत्मा शीर्ष प्रदेश में स्थित सहस्रार चक्र में रहती है तथा यही वह स्थान है जहाँ सर्वशक्तियुक्त परमात्मा भी इस संसार के रूप में दिखाई देते हैं।⁵¹

(ii). दक्षिणायन और उत्तरायण मार्ग के अंतर्गत सहस्रार चक्र की चर्चा—

विवेकशील जीवात्मा योगमार्ग पर चलकर सिद्धासन में बैठकर उत्तर दिशा की तरफ मुँख करके अपने मन को एकाग्र तथा शरीर को स्थिर रखकर योगाभ्यास के माध्यम से सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से अपने प्राणों का मस्तिष्क में स्थित सहस्रार चक्र की ओर गमन कराती है। एक निश्चित समय पर सहस्रार चक्र का भेदन करते हुए योगी के प्राण देवयान या उत्तरायण पथ से जीवात्मा को ब्रह्मलोक में पहुँचाते हैं जिस स्थान से योगी लौटकर फिर कभी इस संसार में वापस नहीं आता है।⁵²

(iii). नाड़ी चक्र में जीव की गति—

जीव के शरीरस्थ नाभि के मध्य में 'नाड़ीचक्र' का स्थान है। यह नाड़ीचक्र बारह अरों या लकड़ियाँ जो कि पहिये को मजबूती प्रदान करती है। इन अरों में देवता विष्णु विद्यमान है। इस चक्र के संचालक स्वयं परमात्मा की मायारूपी शक्ति है। नाभि के मध्य स्थित इस बारह अरों से युक्त नाड़ी चक्र में जीवात्मा अपने प्राणतत्त्व के सहारे क्रमशः उसी तरह घूमती है जिस प्रकार की किसी जाले में फँसी मकड़ी नीचे व उपर की ओर घूमती है। अतः प्राणतत्त्व के बिना नाड़ी चक्र में जीव का भ्रमण असंभव है।⁵³

⁵¹ "प्रत्यगानन्दरूपात्मा मूर्ध्नि स्थाने परे पदे।

अनन्तशक्तिसंयुक्तोः जगद्रूपेण भासते।।" त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्- 9

⁵² "ततः कालवशादेव ह्यात्मज्ञानविवेकतः।

उत्तराभिमुखो भूत्वा स्थानात् स्थानान्तरं क्रमात्।।" त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्-18

"मूर्धन्याधाय आत्मनः प्राणान् योगाभ्यासं स्थितश्चरन्।" त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्- 19.

⁵³ "तत्र चक्रं द्वादशारं तेषु विष्णुवादिमूर्त्यः।

अहं तत्र स्थितश्चक्रं भ्रामयामि स्वमायया।।" त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्- 60.

"अरेषु भ्रमते जीवः क्रमेण जीवसत्तम।

तन्तुपञ्चरमध्यस्था यथा भ्रमति लूतिका।।" त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्- 61.

"प्राणाधिरुढश्चरति जीवस्तेन विना न हि।" त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्- 62.

(iv). कुण्डलिनी के स्थान एवं कार्य के अंतर्गत चक्र संबंधित विचार—

मानवीय शरीर के मस्तिष्क क्षेत्र में सहस्रार चक्र का स्थान है। चैतन्य जीवात्मा को सहस्रार चक्र से अनाहत चक्र में आने पर ही जीवन में चैतन्यता आती है। सहस्रार चक्र में जो अव्यक्त नाद होता है वही आज्ञाचक्र में ओंकार या प्रणव के रूप में व्यक्त होता है। आज्ञाचक्र का स्थान भ्रूमध्य में वर्णित है। सहस्रार चक्र में इस ओंकार से उत्पन्न होने वाली 50 मातृकाओं की अव्यक्त स्थिति का स्थान है। आज्ञाचक्र के निम्न क्रम के क्रमशः विशुद्धि चक्र, अनाहत चक्र, मणिपूर चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र एवं मूलाधार चक्र में विभिन्न वर्णों की उत्पत्ति के स्थान है। जिस प्रकार प्रकाश की किरणों के स्पर्शमात्र से कमल के फूल खिल जाते हैं उसी प्रकार मन की रश्मियों के द्वारा शरीरस्थ आभ्यान्तरिक केंद्र या चक्र प्रकाशित होकर दृश्यगत होने लगते हैं, कदाचित इसी आधार पर इन केंद्रों या चक्रों को कमल की संज्ञा दी गयी है।³⁸

सर्पाकार कुण्डलिनी शक्ति को गुदा एवं लिंगमूल के मध्य सीवनी स्थान पर स्थित योनिस्थान में सुप्तावस्था में माना गया है। नाभि के चारो तरफ तथा ऊपर व नीचे स्थित नाडीचक्र के ऊपर कुण्डलिनी को स्थित माना गया है। यह कुण्डलिनी शक्ति नाडीचक्र के मध्य में कन्द के उपर स्थित सुषुम्ना नाडी या ब्रह्मरन्ध्र के मुख पर सर्प की भाँति आठ लपेटे मारकर सुप्तावस्था में रहती है। गीता के अनुसार इन आठ कुण्डल या लपेटों की तुलना प्रकृति के आठ प्रकार के स्वरूपों से की गई है। श्रीमदभगवत् गीता⁵⁴ के अनुसार— “प्रकृति के आठ प्रकार क्रमशः— पंच महाभूत व बुद्धि, अहंकार तथा मन है। उसी प्रकार, कुण्डलिनी शक्ति भी आठ लपेटे मारकर सुप्तावस्था में रहती है।”⁵⁵

⁵⁴ भूमिरापो नलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।

अहंकार इतीयं मे प्रकृतिरष्टधा ॥ श्रीमदभगवत् गीता— 7/4.

⁵⁵ “तस्योर्ध्वे कुण्डलीस्थानं नाभेस्तिर्यगथोर्ध्वतः ॥” त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्— 62.

“अष्टप्रकृतिरूपा सा चाष्टधा कुण्डलीकृता।

यथावत् वायुसंचारं ज्वलनादि च नित्यशः ॥” त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्—63.

“परितः कन्दपार्श्वे तु निरुध्यैव सदा स्थिता।

मुखेनैव समावेष्टय ब्रह्मरन्ध्रमुखं तथा ॥” त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्— 64.

“योगकालेन मरुता साग्निना बोधिता सती।

स्फुरिता हृदयाकाशे नागरूपा महोज्ज्वला ॥” त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्— 65.

योगाभ्यास के अंतर्गत प्राणायाम के अभ्यास के फलस्वरूप योगी द्वारा प्राणवायु के माध्यम से शरीरस्थ अग्नि को प्रज्ज्वलित कर इसकी गर्मी के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को जगाया जाता है, जो अनाहत चक्र में सर्प के भाँति चमक उठती है तथा सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से आगे की ओर बढ़ते हुए सहस्रार चक्र की तरफ ऊर्ध्वरोहण करती है। कुण्डलिनी के जाग्रत कर योगी प्राण वायु तथा अपान वायु का मिलन कराते हैं।

इस सुप्तावस्था में स्थित कुण्डलिनी शक्ति को यौगिक क्रियाओं के माध्यम से जाग्रत कर शीर्ष प्रदेश में स्थित ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाने की प्रक्रियाओं को 'कुण्डलिनी योग' कहते हैं। योगाभ्यासी, शक्तिचालिनी क्रिया के निरन्तर अभ्यास के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर सुषुम्ना मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचाता है।

3.3.2 मण्डलब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार चक्र की संकल्पना

शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध इस उपनिषद् में पाँच ब्राह्मण तथा प्रत्येक ब्राह्मण के अन्य खण्डों के सहित कुल 88 मंत्रों का संकलन है। जिसमें ब्राह्मण 1 में कुल 4 खण्ड तथा कुल 35 मंत्रों के माध्यम से तत्त्वज्ञान को प्राप्त करने के लिए अष्टांग योग, आत्मनिष्ठता इत्यादि का निरूपण किया गया है। इसी प्रकार ब्राह्मण 2 में कुल 5 खण्ड तथा कुल 31 मंत्रों के माध्यम से सर्वसाधारण ज्योति का आत्मरूप में वर्णन के साथ ही इसी प्रकार अन्य कई विषयों का विस्तृत वर्णन किया गया है। ब्राह्मण 3 में कुल 2 खण्ड तथा कुल 8 मंत्रों में परमात्मा के साक्षात्कार से उन्मनी-भाव को प्राप्त करना, सांसारिक बन्धनों से मुक्ति आदि विषयों को प्रतिपादित किया गया है। ब्राह्मण 4 में कुल 1 खण्ड तथा कुल 5 मंत्रों के माध्यम से व्योम पंचक का ज्ञान, फल तथा राजयोग का सार वर्णित है। ब्राह्मण 5 में कुल 1 खण्ड तथा कुल 9 मंत्रों में मन का परमात्मा में लय करने का अभ्यास इत्यादि विषयों पर चर्चा की गई है। है। ऋषि याज्ञवल्क्य और भगवान् सूर्यनारायण के मध्य प्रश्नोत्तर रूप में आत्मतत्त्व के बारे में विस्तृत विवेचन ही इस उपनिषद् का केंद्रीय विषय है।

साथ ही ब्राह्मण 1 के खण्ड 2 में मंत्र 6 के अंतर्गत सुषुम्ना नाड़ी, चक्र एवं कुण्डलिनी शक्ति संबंधित अवधारणा दी गयी है। इसी प्रकार ब्राह्मण 1 के खण्ड 4 में मंत्र 1 के माध्यम से सहस्रार चक्र एवं ब्राह्मण 4 के खण्ड 1 में मंत्र 5 के अंतर्गत नवचक्रों की महिमा की व्याख्या की गयी है। अतएव मण्डलब्राह्मणोपनिषद् में वर्णित चक्र एवं कुण्डलिनी से संबंधित अवधारणाओं की विस्तृत विवेचना निम्नानुसार हैं—

(i). चक्र, सुषुम्ना नाड़ी एवं कुण्डलिनी शक्ति संबंधित अवधारणा—

साधक के शरीर के मध्य में सुर्यरूपिणी सुषुम्ना नाड़ी स्थित है जिसे सूर्य समान तेजोमय आभायुक्त ब्रह्मनाड़ी कहा गया है। यह सुषुम्ना नाड़ी मूलाधार चक्र से ब्रह्मरन्ध्र अर्थात् सहस्रार चक्र तक गमन करती है। इस सुषुम्ना नाड़ी के मध्य में बिजली स्वरूप कांतिसदृश तेजोमय कोटिगुनी मृणाल के तंतु के समान अत्यन्त सूक्ष्म आकृतिमय कुण्डलिनी विद्यमान है। इस कुण्डलिनी शक्ति के ज्ञानमात्र से साधक के तमोगुण नष्ट हो जाते हैं तथा इस कुण्डलिनी शक्ति के दर्शनमात्र से साधक सभी पापों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है।⁵⁶

(ii). सहस्रार चक्र—

मण्डलब्राह्मणोपनिषद् में सहस्रार चक्र को 'सहस्रार कमल' के रूप में वर्णित कर इसके मध्य में प्रकाशमान किरण के सदृश अंतर्लक्ष्य है। किंतु अन्य ज्ञानियों के मतानुसार शीर्ष के अंतर्गत स्थित सहस्रार मण्डल के बीच में पंचमुखी नीलकण्ठी परमेश्वर शंकर माता उमा के साथ का प्रशान्त रूप भी अंतर्लक्ष्य है।⁵⁷

(iii). नवचक्रों की महिमा—

मण्डलब्राह्मणोपनिषद् में नौ चक्रों की संक्षिप्त चर्चा की गयी है— 1. मूलाधार चक्र 2. स्वाधिष्ठान चक्र 3. मणिपूर चक्र 4. अनाहत चक्र 5. विशुद्धि चक्र 6. आज्ञा

⁵⁶“मूलाधारादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं सुषुम्ना सूर्याभा ।
तन्मध्ये तडित्कोटिसमा मृणालतन्तुसूक्ष्मा कुण्डलिनी ।

तत्र तमोनिवृत्तिः । तद्दर्शनात्सर्वपापनिवृत्तिः ।।” मण्डलब्राह्मणोपनिषद्— ब्राह्मण 1: खण्ड 2: मंत्र 6.

⁵⁷“सहस्रारे जलज्ज्योतिरन्तर्लक्ष्यम् ।

बुद्धिगुहायां सर्वाङ्गसुन्दरं पुरुषरूपमन्तर्लक्ष्यमित्थरे ।

शीर्षान्तर्गतमण्डलमध्यमं पञ्चवक्त्रमुमासहायं नीलकण्ठं प्रशान्तमन्तर्लक्ष्यमिति केचित् ।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तर्लक्ष्यमित्येकः ।।” मण्डलब्राह्मणोपनिषद्— ब्राह्मण 1: खण्ड 4: मंत्र 1.

चक्र तथा 7. तालु चक्र 8. आकाश चक्र एवं 9. भू-चक्र। इस उपनिषद् के अनुसार जो योगी या साधक मानव शरीरस्थ इन नौ चक्रों तथा साथ ही मूलाधार आदि षड्आधारों, त्रिलक्ष्यों में अंतर्लक्ष्य, मध्यलक्ष्य, बहिर्लक्ष्य एवं व्योमपंचक को सही रूप या सम्यक् रूप से नहीं जानता हैं, वह केवल नाम के लिये योगी कहलाता है अर्थात् योगवेत्ता को इन नौ चक्रों, त्रिलक्ष्यों, षड् आधारों, व व्योमपंचक व्योमपंचक का ज्ञान अतिआवश्यक रूप से होना चाहिए।⁵⁸

3.3.3 अद्वयतारकोपनिषद् के अनुसार चक्र की संकल्पना

अद्वयतारकोपनिषद्, शुक्लयजुर्वेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् हैं। इस उपनिषद् में कुल 19 सूत्रों के माध्यम से उपदेश देते हुए, सांसारिक भव-बंधन तथा गर्भ-वृद्धावस्था-मृत्यु रूपी भयावह डर से मानव मात्र को तारने वाले 'तारक' के रूप में ब्रह्म को सर्वेसर्वा माना गया है। इसमें केन्द्रविषय के रूप में जीव द्वारा ईष्टदेव को मायारूपी मानकर 'नेति-नेति' कहकर त्याग करते हुए अवशिष्ट के रूप में बचे हुए अद्वयब्रह्म को प्राप्त करने हेतु, अन्तर-बाह्य-मध्यम इस प्रकार तीन लक्ष्यों का अनुसन्धान करके, शरीरस्थ मूलाधार चक्र से ब्रह्मरन्ध्र तक जाती हुई सुषुम्ना नाड़ी में स्थित अत्यन्त सूक्ष्म एवं प्रकाशवान् कुण्डलिनी शक्ति विद्यमान है, उसे मन के माध्यम से देखा जाना चाहिए। ऐसा करने पर मानव मुक्ति को प्राप्त करता है। अतः इस प्रकार गुरु के उपदेश के अनुसार इन तीनों लक्ष्यों का अनुसंधान करने से मनुष्य परमब्रह्म, सर्वश्रेष्ठ विद्या, परमगति इत्यादि सभी कुछ प्राप्त कर लेता है। अतएव अद्वयतारकोपनिषद् में वर्णित चक्र एवं कुण्डलिनी से संबंधित अवधारणाओं की विस्तृत विवेचना निम्नानुसार हैं—

चक्र, सुषुम्ना नाड़ी एवं कुण्डलिनी शक्ति संबंधित अवधारणा—

योगमार्गी साधक के शरीर के मध्य में सुर्यरूपिणी सुषुम्ना नाड़ी स्थित है जिसे पूर्णचन्द्र समान तेजोमय ब्रह्मनाड़ी कहा गया है। यह सुषुम्ना नाड़ी मूलाधार चक्र से ब्रह्मरन्ध्र अर्थात् सहस्रार चक्र तक गमन करती है। इस सुषुम्ना नाड़ी के मध्य में

⁵⁸ “नवचक्रं षडाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम् ।
सम्यगेतन्न जानाति स योगी नामतो भवेत् ।।” मण्डलब्राह्मणोपनिषद्— ब्राह्मण 4: खण्ड 1: मंत्र 5.

बिजली स्वरूप कांतिसदृश तेजोमय एवं मृणाल के सूत्र के समान अत्यन्त सूक्ष्म आकृतिमय कुण्डलिनी शक्ति विद्यमान रहती है। इस कुण्डलिनी शक्ति का मनोदर्शन मात्र करने पर साधक सभी पापों से मुक्ति प्राप्त कर मोक्षाधिकारी बन जाता है।⁵⁹

3.3.4 'हंसोपनिषद्' के अनुसार चक्र की संकल्पना

हंसोपनिषद् शुक्लयजुर्वेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् हैं। हंसोपनिषद् में कुल 21 मंत्रों का संकलन है। यह गौतम और सनत्सुजात के मध्य संवाद के रूप में हैं। इस उपनिषद् के रहस्यमय ज्ञान को सर्वप्रथम भगवान शिव द्वारा माता पार्वती को दिया गया। इस उपदेश को शांत मनोग्रहयुक्त, इन्द्रिनिग्रहयुक्त और गुरुभक्त मनुष्य ही सुनने का अधिकारी माना जाता हैं। साथ ही यहाँ जीवात्मा के बारे में विचार प्रस्तुत करते हुए कहा गया हैं कि "वह हंस जीवात्मा सभी शरीरों में उसी प्रकार विद्यमान है जैसे काष्ठ में अग्नि और तिलों में तेल।"⁶⁰ उस आत्मा को प्राप्त करने के लिए षट्चक्रों के भेदन की साधना का महत्व वर्णित किया गया है। अष्टदल पद्म से उस आत्मा की वृत्तियों का साम्य बताते हुए शुद्ध स्फटिक मणि के समान ब्रह्म का स्वरूप का वर्णन किया गया है तथा इसे ही 'हंस' कहा गया है। इस 'हंस' के ध्यान से नाद स्वर की उत्पत्ति होती है, जिसे अनेक रूपों में अनुभव किया जा सकता है। इसी अवस्था को समाधि कहा गया है। अतएव हंसोपनिषद् में वर्णित चक्र संबंधित अवधारणाओं की विस्तृत विवेचना निम्नानुसार हैं—

चक्र एवं कुण्डलिनी संबंधित अवधारणा—

हंसोपनिषद् में हंस (जीवात्मा) के प्राप्ति के 'हंस—हंस' के जप के उपाय के रूप में कहा गया है— "इस हंस ज्ञान की साधना सर्वप्रथम गुदा को खींचकर, आधार से वायु को ऊपर उठाकर स्वाधिष्ठान चक्र की तीन प्रदक्षिणाएँ करनी चाहिए। इसके

⁵⁹ "देहमध्ये ब्रह्मनाडी सुषुम्ना सूर्यरूपिणी पूर्णचन्द्राभा वर्तते।

सा तु मूलाधारादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रगामिनी भवति।

तन्मध्ये तडित्कोटिसमानकान्त्या मृणालसूत्रवत्सूक्ष्माङ्गी कुण्डलिनीति प्रसिद्धास्ति।

तां दृष्ट्वा मनसैव नरः सर्वपापविनाशद्वारा मुक्तो भवति।

फालोर्ध्वगललाटविशेषमण्डले निरन्तरं तेजस्तारकयोगविस्फुरणेन पश्यति चेत्सिद्धो भवति।

तर्जन्यग्रोन्मीलितकर्णरन्ध्रद्वये तत्र फूत्कारशब्दो जायते।

तत्र स्थिते मनसि चक्षुर्मध्यगतनीलज्योतिःस्थलं विलोक्यान्तर्दृष्ट्या निरतिशयसुखं प्राप्नोति।

एवं हृदये पश्यति। एवमन्तर्लक्ष्यलक्षणं मुमुक्षुभिरूपास्यम्।।" अद्वयतारकोपनिषद्-5.

⁶⁰ शर्मा, श्रीराम आचार्य (2015), 108 उपनिषद् (सरल हिन्दी भावार्थ सहित), ब्रह्मविद्याखण्ड, प्रकाशक गायत्री तपोभूमि, मथुरा।

बाद, माणिपर चक्र में प्रवेश करके, अनाहत चक्र को लॉघकर बाद में विशुद्ध चक्र में प्राणों को निरुद्ध करके आज्ञाचक्र का ध्यान करना चाहिए। और उसके बाद फिर ब्रह्मरन्ध्र का ध्यान करना चाहिए। 'मै त्रिमात्र आत्मा हूँ। योगी हमेशा निराकर ब्रह्म को देखता हुआ स्वयं अनाकार जैसा हो जाता है। अर्थात् तुरीयावस्था को प्राप्त करता है।'⁶¹

3.4 सामवेदीय शाखा के योगोपनिषदों में चक्र संबंधित अवधारणा

सामवेदीय शाखा के योगोपनिषदों के अंतर्गत केवल दो योगोपनिषदों में ही चक्रों का वर्णन मिलता है जिन्हें 'दर्शनोपनिषद् (जबालदर्शनोपनिषद्)', 'योगचूडामण्युपनिषद्' के नाम से जाना जाता है।

3.4.1 'दर्शनोपनिषद् या जबालदर्शनोपनिषद्' के अनुसार चक्र की संकल्पना

'दर्शनोपनिषद्' को 'जबालदर्शनोपनिषद्' नाम से भी जाना जाता है। यह उपनिषद् सामवेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् है। दर्शनोपनिषद् में कुल 224 सूत्र सहित दस खण्ड है। यह भगवान् दत्तात्रेय एवं मुनिश्रेष्ठ सांस्कृतिक के मध्य अष्टांग योग पर आधारित प्रश्नोत्तरी के रूप में संवाद है। इस दर्शन के प्रथम खण्ड में कुल 25 सूत्रों के रूप में अष्टांग योग, द्वितीय खण्ड में कुल 16 सूत्रों के द्वारा यम, तृतीय खण्ड में कुल 13 सूत्रों के द्वारा नियम, चतुर्थ खण्ड में कुल 63 सूत्रों के द्वारा नाड़ियाँ एवं आत्म ज्ञान की महिमा, पंचम खण्ड में कुल 14 सूत्रों के द्वारा नाड़ीशुद्धि व आत्मशुद्धि प्रक्रिया, छठवें खण्ड में कुल 51 सूत्रों के द्वारा प्राणायाम, सातवें खण्ड में कुल 14 सूत्रों के द्वारा प्रत्याहार तथा प्रकार, आठवें खण्ड में कुल 9 सूत्रों के द्वारा धारणा, नौवें खण्ड में कुल 6 सूत्रों के द्वारा ध्यान एवं दसवें व अंतिम खण्ड में कुल 13 सूत्रों के द्वारा समाधि की विस्तृत विवेचना की गयी है। इस प्रकार यह उपनिषद् पूर्णतः योगपरक है।

⁶¹ "गुदमवष्टभ्याधारादवायुमुत्थाप्य स्वाधिष्ठानं त्रिप्रदक्षिणीकृत्य मणिपूरकं गत्वा अनाहतमतिक्रम्य विशुद्धौ प्राणात्रिरुद्ध्याज्ञामुध्यायन् ब्रह्मरन्ध्रं ध्यायन् त्रिमात्रोऽमित्येवं सर्वदा पश्यत्यनाकारचक्षुः भवति ।।" हंसोपनिषद्- 6. शास्त्री, आचार्य केशव (2014), उपनिषद् संचयनम भाग- 1, 2, 3, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, सूत्र संख्या- 6.

दर्शनोपनिषद् के चतुर्थ खण्ड में नाड़ियों की विस्तृत विवेचना के साथ ही सूत्र 2 से 12 तक चक्रों एवं कुण्डलिनी की अवधारणा को भी वर्णित किया गया है। इसी चतुर्थ खण्ड में सूत्र 48–53 के माध्यम से चक्रों से संबंधित प्रमुख तीर्थस्थान भी कहे गये हैं तथा खण्ड सात में सूत्र 6–14 के द्वारा प्रत्याहार हेतु क्षेत्र विशेष के रूप में चक्रों एवं कुण्डलिनी की चर्चा की गयी है।

(i). चक्र एवं तीर्थस्थान—

दर्शनोपनिषद् के अनुसार, मस्तिष्क स्थान में श्रीपर्वत तथा ललाट प्रदेश में केदारक्षेत्र स्थित है। दोनों भ्रुकुटियों व नासिका के मध्य में स्थित आज्ञाचक्र स्थान में काशीक्षेत्र कहा गया है। छाती स्थित स्तनों में कुरुक्षेत्र का स्थान तथा हृदय चक्र में प्रयागतीर्थ को माना गया है। इस हृदय के मध्य में चिदाकाश व मूलाधार में भगवती लक्ष्मी का स्थान वर्णित किया गया है। इस प्रकार भगवान् दत्तात्रेय द्वारा मानवीय शरीर के भीतर ही सर्वतीर्थों को अवस्थित माना है।⁶²

(ii). प्रत्याहार हेतु क्षेत्र विशेष के रूप में चक्रों एवं कुण्डलिनी की चर्चा—

दर्शनोपनिषद् के अनुसार, स्थान विशेष से वायु को खींचकर अन्य दूसरे स्थान में रोककर रखना भी प्रत्याहार कहलाता है। प्रत्याहार के अभ्यास हेतु स्थान विशेष के रूप में चक्रों एवं कुण्डलिनी का वर्णन निम्नानुसार हैं— सर्वप्रथम दाँतों में मूलभाग से वायु को खींचकर उस वायु को कण्ठ प्रदेश में रोके रखना कण्ठ प्रदेश से छाती के मध्य में, छाती प्रदेश से वायु को खींचकर मूलाधार में रोकना चाहिए। तत्पश्चात् नाभिप्रदेश से वायु को खींचकर कुण्डलिनी में रोककर रखा जाए, फिर पुनः कुण्डलिनी क्षेत्र से वायु को खींचकर मूलाधार प्रदेश में रोकना चाहिए, उसके बाद गुदास्थान में से वायु को खींचकर कमर के दोनों ओर, दोनों भुजाओं, मध्यभाग, दोनों घुटनों, जंघाओं, पाँव के अँगूठों में वायु को रोका जाये तब इस वायुनिरोध को भी

⁶² “श्रीपर्वतं शिरःस्थाने केदारं तु ललाटके।

वाराणसी महाप्राज्ञ भ्रुवोर्ध्वास्य मध्यमे।।” जबालदर्शनोपनिषत्—खण्डः 4/48.

“कुरुक्षेत्रं कुचस्थाने प्रयागं हृत्सरोरुहे।

चिदम्बरं तु हृन्मध्ये आधारे कमलालयम्।।” जबालदर्शनोपनिषत्—खण्डः 4/49.

“आत्मतीर्थं समुत्सृज्य बहिस्तीर्थानि यो व्रजेत्।

करस्थं स महारत्नं त्यक्त्वा काचं विमार्गते।।” जबालदर्शनोपनिषत्—खण्डः 4/50.

प्रत्याहार कहा जाता है। इस प्रकार वायु निरोध के माध्यम से प्रत्याहार का अभ्यासी सांसारिक कष्टों एवं रोगों से मुक्ति पा जाता है।⁶³

(iii). कन्दयोनि एवं कुण्डलिनी स्थान—

शिव संहिता के समान ही दर्शनोपनिषद् में कन्दस्थान एवं कुण्डलिनी का वर्णन किया गया है जिसके अनुसार, गुदाक्षेत्र से दो अंगुली ऊपर एवं लिंगमूल से दो अंगुली नीचे तथा इन दोनों के मध्य में स्थित मूलाधार से नौ अंगुली की दूरी पर कन्दस्थान है, ऐसा मुनियों का मत है तथा योगियों के मतानुसार मूलाधार से नौ अंगुली की दूरी के मध्य में नाभिस्थान माना गया है। इस कन्द के मध्य में आने वाली नाड़ी को सुषुम्ना नाड़ी कहा गया है। वेदान्तज्ञों के अनुसार यही 'ब्रह्मनाड़ी' कहलाती है। इस सुषुम्ना नाड़ी को चारों तरफ से लगभग 72,000 नाड़ियाँ घेरे हुए हैं। इन सभी में केवल 14 नाड़ियों को प्रमुख माना गया है तथा इनमें से भी केवल तीन नाड़ियाँ ही प्रमुख हैं। इन तीन नाड़ियों में भी एकमात्र सर्वश्रेष्ठ नाड़ी सुषुम्ना ही मानी गयी है जो शरीर के पृष्ठभाग के मध्य में स्थित रीढ़ की हड्डी में से होते हुए मस्तिष्क तक जाती है। नाभिकन्द के नीचे दो अंगुली जितना कुण्डलिनी स्थान है। यह कुण्डलिनी आठ प्रकृतिरूप वाली है। इन आठ प्रकृतिरूप से तात्पर्य— पंच तत्त्व, मन, बुद्धि एवं अहंकार से है। यह कुण्डलिनी प्राण तथा अपान वायु की चेष्टाओं के संतुलन का कार्य करती है तथा अन्न एवं जल इत्यादि को कन्दस्थान के चहुओर रोकने का कार्य करती है।⁶⁴

⁶³“दन्तमूलात्तथा कण्ठे कण्ठादुरसि मारुतम्।
उरोदेशात्समाकृत्य नाभिदेशे निरोधयेत्।।” जबालदर्शनोपनिषत्— खण्डः 7/6.
“नाभिदेशात्समाकृत्य कुण्डल्यां तु निरोधयेत्।
कुण्डलीदेशतो विद्वान्मूलाधारे निरोधयेत्।।” जबालदर्शनोपनिषत्— खण्डः 7/7.
“अथापानात्कटिद्वन्द्वे तथोरौ च सुमध्यमे।
तस्माज्जानुद्वये जडधे पादाडगुष्ठे निरोधयेत्।।” जबालदर्शनोपनिषत्— खण्डः 7/8.
“प्रत्याहारोऽयमुक्तस्तु प्रत्याहारस्मरैः पुरा।
एवमभ्यासयुक्तस्तु पुरुषस्सय महात्मनः।।” जबालदर्शनोपनिषत्— खण्डः 7/9.
“सर्वपापानि नश्यन्ति भवरोगश्च सुव्रत।
नासाभ्यां वायुमाकृत्य निश्चलः स्वस्तिकासनः।।” जबालदर्शनोपनिषत्— खण्डः 7/10.
⁶⁴ “गुदात्तु द्वयडगुलादूर्ध्वं मेढ्रात्तु द्वयडगुलादधः।।” जबालदर्शनोपनिषत्—खण्डः 4/2.
“देहमध्यं मुनिप्रोक्तमनुजानीहि सांकृते।
कन्दस्थानं मुनिश्रेष्ठ मूलाधारान्नवाडगुलम्।।” जबालदर्शनोपनिषत्— खण्डः 4/3.
“तन्मध्ये नाभिरित्युक्तं योगज्ञैर्मुनिपुङ्गव।
कन्दमध्यस्थिता नाडी सुषुम्नेति प्रकीर्तिता।।” जबालदर्शनोपनिषत्— खण्डः 4/5.
“तिष्ठन्ति परितस्तस्या नाडयो मुनिपुङ्गव।
द्विसप्ततिसहस्राणि तासां मुख्याश्चतुर्दश।।” जबालदर्शनोपनिषत्— खण्डः 4/6.
“आसां मुख्यतमास्तिस्त्रस्तिसृष्वेकोत्तमोत्तमा।

3.4.2 योगचूडामण्युपनिषद्/योगचूडामणि उपनिषद् के अनुसार चक्र की संकल्पना

योगचूडामण्युपनिषद् सामवेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् हैं। इसमें योग साधना से आत्म-शाक्ति जगाने की प्रक्रिया का वर्णन केन्द्रविषय है। कुल 121 मंत्रों के संकलन के माध्यम से इस उपनिषद् की शुरुआत में सर्वप्रथम योग के छः अंगों आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का वर्णन किया गया है। तदुपरान्त योग में मिलने वाली सिद्धि के लिए आवश्यक देहतत्त्व का ज्ञान, मूलाधार चक्र (आधार), स्वाधिष्ठान चक्र, आदि चक्रों का ज्ञान, योनि स्थान (कुण्डलिनी) में परम ज्योति के दर्शन, नाड़ीचक्र, नाड़ी स्थान, नाड़ियों में संचरित प्राणवायु और उनकी क्रियाएँ प्राणों के साथ जीव की गतिमयता, अजपा-गायत्री, कुण्डलिनी, द्वारा मोक्ष द्वारा का भेदन करना तीन बन्धः मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध, तथा उड्डियान बन्ध, खेचरी मुद्रा, वज्रोली आदि, विशेष योग साधना के लक्षण, महामुद्रा का स्वरूप, प्रणव (ओंकार) जप की प्रक्रिया, प्रणव एवं ब्रह्म की एकरूपता, प्रणव एवं हंस साधना, कैवल्यबोध, आत्मज्ञान का प्रकाशक प्रणव जप, प्रणव मन्त्रानुष्ठान के साधक के लिए प्राणजय आवश्यक, नाड़ी शुद्धि से प्राणायाम सिद्धि, योगांगों में से प्रत्येक के अलग-अलग फल और उनकी तारतम्यता, षण्मुखी मुद्रा के अभ्यास से नादभिव्यक्ति प्राणायाम का अभ्यास सर्वरोग निवारक प्राण के निरोधाभ्यास में इन्द्रियों का प्रत्याहार आवश्यक है, इत्यादि अनेक विषयों का बड़ा विषद् विवेचन किया गया है। निःसन्देह इस उपनिषद् के अनुसार साधना के मार्ग पर चलकर साधक योग के क्षेत्र में पूजनीय हो सकता है।

(i). योगसिद्धि के लिए आवश्यक 'मूलाधारादिचक्रज्ञान' का वर्णन—

योगचूडामण्युपनिषद् के अनुसार, जो साधक अपने शरीरस्थ स्थित छह चक्रों, सोलह आधारों, तीन प्रकार के वर्णित लक्ष्यों एवं पाँच आकाशों को भलीभाँति नहीं

ब्रह्मनाडीति सा प्रोक्ता मुने वेदान्तवेदभिः।।" जबालदर्शनोपनिषद्— खण्डः 4/9.

"पृष्ठमध्यस्थितेनास्थना वीणादण्डेन सुव्रत।

सह मस्तकपर्यन्तं सुषुम्ना सुप्रतिष्ठिता।।" जबालदर्शनोपनिषद्— खण्डः 4/10.

"नाभिकन्दाधः स्थानं कुण्डल्या द्वयङ्गुल मुने।

अष्टप्रकृतिरूपा सा कुण्डली मुनिसत्तम।।" जबालदर्शनोपनिषद्— खण्डः 4/11.

यथावद्वायुचेष्टां च जलान्नादीनि नित्यशः।

परितः कन्दपाश्वेषु निरुध्यैव सदा स्थिता।।" जबालदर्शनोपनिषद्— खण्डः 4/12.

जानता, उस साधक को योग के मार्ग में सिद्धि भला कैसे प्राप्त हो सकती है।⁶⁵ इसी प्रश्न के समाधान हेतु इस उपनिषद् में सर्वप्रथम शरीरस्थ षट्चक्रों की व्याख्या⁶⁶ की गयी है।

(क) मूलाधार चक्र एवं कुण्डलिनी—

मानवीय शरीरस्थ छह चक्रों में प्रथम तथा आधार या गुदा प्रदेश में स्थित चार—दलीय पद्म ‘मूलाधार चक्र’ है जिसे अन्य नाम ‘आधार चक्र’ से भी जाना जाता है तथा इसे ‘काम’ भी कहा गया है। सिद्ध पुरुषों ने इस काम नामक पद्म के मध्य में पश्चिम दिशा की ओर मुख किये हुए वन्दनीय महालिंग को स्थित बताया है। मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र के मध्य योनिस्थान है। जिसे ‘कुण्डलिनी’ भी कहा गया है। इस कुण्डलिनी को ही सृष्टि की उत्पत्ति का कारण कहा गया है, इसी कारण से यह ‘कामरूप’ भी कहलाती है। गुदाप्रदेश में ‘अपान’ वायु स्थित होती है।⁶⁷

(ख) स्वाधिष्ठान चक्र—

मूलाधार चक्र के ऊपर स्थित छह—दलीय द्वितीय कमल ‘स्वाधिष्ठान चक्र’ कहलाता है। “स्वाधिष्ठानचक्र को ‘स्व’ अर्थात् ‘प्राण’ का तथा ‘अधिष्ठान’ अर्थात् ‘निवासस्थान’ कहा गया है। स्व के अधिष्ठान में रहने के कारण से ही इसे ‘मेढ्र’ भी कहा जाता है। जिस प्रकार मोती में धागा पिरोया जाता है, वैसे ही कन्द या नाड़ी समूह सुषुम्ना से युक्त होता है।”⁶⁸

⁶⁵ “षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।।” योगचूडामण्युपनिषद्— 3.

“स्वदेहे यो न जानाति तस्य सिद्धिः कथं भवेत्।

चतुर्दलं स्यादाधारं स्वाधिष्ठानं च षड्दलम्।।” योगचूडामण्युपनिषद्— 4.

“नाभौ दशदलं पटं हृदये द्वादशारकम्।

षोडशारं विशुद्धाख्यं भूमध्ये द्विदलं तथा।।” योगचूडामण्युपनिषद्— 5.

⁶⁶ “हृदि प्राणः स्थितो नित्यमपानो गुदमण्डले।।” योगचूडामण्युपनिषद्—23.

स्मानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यगः।

व्यानः सर्वशरीरे तु प्रधानाः पञ्च वायवः।।” योगचूडामण्युपनिषद्—24.

⁶⁷ “सहस्रत्रदलसंख्यातं ब्रह्मरन्ध्रे महापथि।

आधारं प्रथमं चक्रं स्वाधिष्ठानं द्वितीयकम्।।” योगचूडामण्युपनिषद्—6

“योनिस्थानं द्वयोर्मध्ये कामरूपं निगद्यते।

कामाख्यं तु गुदस्थाने पञ्चकजं तु चतुर्दलम्।।” योगचूडामण्युपनिषद्—7.

“तन्मध्ये प्रोच्यते योनिः कामाख्या सिद्धवन्दिता।

तस्य मध्ये महालिङ्गं पश्चिमाभिमुखं स्थितम्।।” योगचूडामण्युपनिषद्—8.

⁶⁸ “तस्मिन्दृष्टे महायोगे यातायातो न विद्यते।

स्वशब्देन भवेत्प्राणः स्वाधिष्ठानं तदाश्रयः।।” योगचूडामण्युपनिषद्—11.

“स्वाधिष्ठानाश्रयादस्मान् मेढ्रमेवाभिधीयते।

तन्नुना मणिवत्प्रोतो योऽत्र चतुर्दलं स्यादाधारं स्वाधिष्ठानं च षड्दलम्।।”

(ग) मणिपुर चक्र—

तीसरे स्थान पर नाभिप्रदेश में स्थित मणि सदृश आकृति वाले दश-दलीय कमल को 'मणिपुर चक्र' कहा गया है। यह अत्यन्त ही कान्तिमय, बिजली की भाँति चमकदार एवं त्रिकोण आकृति वाला तथा अग्नि रूपी मेढ्र में प्रतिष्ठित रहता है। इसे जानने वाला योगी ही सही मायने में योगवेत्ता कहलाता है।⁶⁹ इसी नाभि स्थान व मेढ्र के मध्य में पक्षी के अण्डे की आकृति के सदृश योनि अर्थात् कुण्डलिनी स्थित है। साथ ही इसी स्थान पर 72000 नाड़ियों का समूह संपूर्ण शरीर में फैला है, जिनमें से कुल तीन नाड़ियों को प्रमुख माना गया है। नाभिप्रदेश में 'समान' वायु स्थित होती है।⁷⁰

(घ) अनाहत चक्र—

चतुर्थ स्थान पर हृदय प्रदेश में स्थित बारह-दलीय पद्म को 'अनाहत चक्र' है। हृदयप्रदेश में 'प्राण' वायु स्थित होती है।

(च) विशुद्धि चक्र—

कण्ठ स्थित सोलह-दलीय कमल को 'विशुद्धि चक्र' कहा गया है। कण्ठप्रदेश में 'उदान' वायु स्थित होती है।

(छ) आज्ञा चक्र—

भ्रूमध्य स्थित दो-दलीय कमल को 'आज्ञा चक्र' कहते हैं।

योगचूडामण्युपनिषद्- 4.

“नाभौ दशदलं पद्मं हृदये द्वादशारकम्।

षोडशारं विशुद्धाख्यं भ्रूमध्ये द्विदलं तथा।।” योगचूडामण्युपनिषद्- 5.

⁶⁹ “नाभौ तु मणिवद्विम्बं यो जानाति स योगवित्।

तप्तमाचीकराभासं तडिल्लेखेव विस्फुरत्।।” योगचूडामण्युपनिषद्-9.

“त्रिकोणं तत्पुरं वह्नेरधोमेढ्रात्प्रतिष्ठितम्।

समाधौ परमं ज्योतिरनन्तं विश्वतोमुखम्।।” योगचूडामण्युपनिषद्-10.

⁷⁰ “तन्नाभिमण्डले चक्रं प्रोच्यते मणिपूरकम्।

द्वादशारे महाचक्रे पुण्यपापविवर्जिते।।” योगचूडामण्युपनिषद्-13.

“तावज्जीवो भ्रमत्येवं यावत्तत्त्वं न विन्दति।

ऊर्ध्वं मेढ्रादधो नाभेः कन्दे योनिः खगाण्डवत्।।” योगचूडामण्युपनिषद्-14.

(ज) सहस्रार चक्र—

ब्रह्मरन्ध्र के मार्ग में शीर्ष प्रदेश में स्थित हजार—दलों वाला पद्मचक्र 'सहस्रार चक्र' कहलाता है। संपूर्ण शरीर में 'व्यानवायु' स्थित रहती है।

3.5 अथर्ववेदीय शाखा के योगोपनिषदों में चक्र संबंधित अवधारणा

अथर्ववेदीय शाखा के योगोपनिषदों के अंतर्गत एकमात्र 'शाण्डिल्योपनिषद्' में ही चक्रों का वर्णन मिलता है। यहाँ प्रत्याहार हेतु विषय के रूप में चक्र स्थान तथा कुण्डलिनी के स्थान के अंतर्गत चक्रों का वर्णन किया गया है। अतः अथर्ववेदीय शाखा के योगोपनिषदों में शाण्डिल्योपनिषद् के अनुसार चक्र की संकल्पना अग्रानुसार है—

3.5.1 'शाण्डिल्योपनिषद्' में चक्र की अवधारणा

शाण्डिल्योपनिषद् अथर्ववेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् है। इस उपनिषद् में शाण्डिल्य और मुनि अथर्वा के मध्य प्रश्नोत्तरी के द्वारा 'योगविद्या' का विवेचन केन्द्रविषय है। इस उपनिषद् को कुल तीन अध्यायों में विभाजित कर इन अध्यायों को भी अन्य खण्डों में विभाजित किया गया है जिनमें कुल 127 मंत्रों के संकलन के माध्यम से इस उपनिषद् की शुरुआत में सर्वप्रथम आत्मा को प्राप्त करने के उपायस्वरूप अष्टांग योग की चर्चा की गयी है। अध्याय 1 में कुल ग्यारह खण्डों तथा 120 मंत्रों के माध्यम से आत्म उपलब्धि के उपाय स्वरूप अष्टांग योग सम्बन्धी विवेचना की गयी है जो कुछ रूपों में पातंजल योग दर्शन में वर्णित अष्टांग योग से विशेष है। अध्याय 2 में कुल छह मंत्रों के द्वारा ब्रह्मस्वरूप का विस्तृत वर्णन किया गया है। अन्तिम एवं तीसरे अध्याय को दो खण्डों में विभाजित कर कुल 21 मंत्रों के माध्यम से इस अध्याय में ब्रह्म के सकल एवं निष्कल रूप के भेदों का वर्णन मिलता है। इस उपनिषद् के अन्त में फलश्रुति की चर्चा कर शाण्डिल्योपनिषद् का समापन किया गया है।

विशेष रूप से प्रथम अध्याय के खण्ड आठ में मंत्र संख्या 2 में प्रत्याहार के अभ्यास हेतु विषय के रूप में शरीरस्थ अठारह स्थानों का वर्णन किया गया है जिनमें से कुछ स्थान चक्र प्रदेश कहलाते हैं। इसी प्रकार प्रथम अध्याय के खण्ड चार में मंत्र संख्या 8–10 में तथा खण्ड सात में मंत्र 36 के 1–3 में कुण्डलिनी के बारे में विशेष चर्चा की गयी है।

(i). प्रत्याहार हेतु विषय के रूप में चक्र स्थान—

“पैर का अंगूठा, गुल्फ, जंघा, जानु, ऊरु, गुदा, लिंग, नाभि, हृदय, गले का छिद्र, तालु, नाक, आँख, दोनों भौहों के बीच का स्थान, ललाट और मस्तक— इन अठारह स्थानों में क्रमशः आरोह—अवरोह के क्रम से प्रत्याहार करना चाहिए।”⁷¹

(ii). कुण्डलिनी के अंतर्गत चक्रों का वर्णन—

नाड़ी शुद्धि के अंतर्गत शण्डिल्योपनिषत् के अनुसार आठ प्रकार की प्रकृतियों वाली ‘कुण्डलिनी’ आठ आवृत्तियों से युक्त होकर नाभिप्रदेश के करीब तथा ऊर्ध्वभाग में स्थित रहती है। योग की अवस्था में यह कुण्डलिनी वायु के संचार को समायोजित कर, चारों तरफ से अन्न एवं जल आदि को कन्धों के पीछे के भाग में स्थिर करके, उसे फिर से अपने मुँह से लिये हुए अपान वायु एवं अग्नि के माध्यम से ब्रह्मरन्ध्र तक जागती है। हृदयप्रदेश में यहीं कुण्डलिनी अत्यन्त उज्ज्वल तथा ज्ञान का रूप हो जाती है।⁷²

इस मध्यस्थित कुण्डलिनी के आश्रय से चारों ओर 14 प्रमुख नाड़ियाँ स्थित हैं। योगियों के मतानुसार इन सभी चौदह नाड़ियों में प्रमुख नाड़ी के रूप में सुषुम्ना नाड़ी इस सृष्टि को धारण किये हुए मोक्षमार्गी है। यह सुषुम्ना नाड़ी अत्यन्त सूक्ष्म,

⁷¹ “पादाङ्गुष्ठगुल्फजङ्घाजानूपायुमेद्वनाभिहृदयकण्ठकूपतालुनासाक्षिभूमध्यललाटमूर्ध्निस्थानानि । तेषु क्रमादारोहावरोहक्रमेण प्रत्याहरेत् ।।” शण्डिल्योपनिषत्— 1/8/2.

⁷² “नाभेस्तिर्यगधोर्ध्वं कुण्डलिनीस्थानम् ।

अष्टप्रकृतिरुपाष्टधा कुण्डली—कृता कुण्डलिनी शक्तिर्भवति ।

यथावद्वायुसंचारं जलान्नादीनि परितः स्कन्धपाञ्चर्षु निरुध्यैनं मुखेनैष समावेष्ट्य ब्रह्मरन्ध्रं योगकालेऽपानेनाग्निना च स्फुरति । हृदयाकाशे महोज्ज्वला ज्ञानरूपा भवति ।।” शण्डिल्योपनिषत्— 1/4/8.

स्पष्ट तथा वैष्णवी के रूप में गुदाप्रदेश के पीछे की ओर से मस्तिष्क में स्थित ब्रह्मरन्ध्र को जाती हुई सीधी लम्बवत् स्थित है।⁷³

शण्डिल्योपनिषत् के अनुसार यदि कुण्डलिनी शक्ति कण्ठ के ऊपरी प्रदेश में सुप्तावस्था में रहती है, तब वह योगियों के लिए मुक्तिप्रदायक होती है। किन्तु जब यही कुण्डलिनी शक्ति यदि कण्ठ से नीचे स्थित प्रदेश में सुप्तावस्था में रहती है, तब वह अज्ञानीजनों के लिए बंधन का कारण होती है।⁷⁴

⁷³ “मध्यस्थकुण्डलिनीमाश्रित्य मुख्या नाडयश्चतुर्दश भवन्ति।” शण्डिल्योपनिषत्- 1/4/9.

“तत्र सुषुम्ना विश्वधारिणी मोक्षमार्गेति चाचक्षते।

गुदस्य पृष्ठभागे वीणादण्डाश्रिता मूर्धपर्यन्तं ब्रह्मरन्ध्रे विज्ञेया व्यक्ता सूक्ष्मा वैष्णवी भवति।।” शण्डिल्योपनिषत् - 1/4/10.

⁷⁴ “आकुञ्चनेन कुण्डलिन्याः कवाटमुद्घाटय मोक्षद्वारं विभेदयेत्।।” शण्डिल्योपनिषत् - 1/7/36-1

“येन मार्गेण गन्तव्यं तद्वारं मुखेनाच्छाद्य प्रसुप्ता कुण्डलिनी कुटिलाकारा सर्पवद्वेष्टिता भवति।।” शण्डिल्योपनिषत्- 1/7/36-2.

“सा शक्तिर्येन चालिता स्यात् स तु मुक्तो भवति।

सा कुण्डलिनी कण्ठोर्ध्वभागे सुप्ता चोद्योगिनां मुक्तये भवति। बन्धनायाधो मूढानाम्।।” शण्डिल्योपनिषत्- 1/7/36-3.

चतुर्थ अध्याय

योगोपनिषदों में कुण्डलिनी की अवधारणा

- 4.1 ऋग्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों में कुण्डलिनी संबंधित अवधारणा
- 4.2 कृष्णयजुर्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों में कुण्डलिनी संबंधित अवधारणा
- 4.3 शुक्लयजुर्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों में कुण्डलिनी संबंधित अवधारणा
- 4.4 सामवेदीय शाखा के योगोपनिषदों में कुण्डलिनी संबंधित अवधारणा
- 4.5 अथर्ववेदीय शाखा के योगोपनिषदों में कुण्डलिनी संबंधित अवधारणा

4. योगोपनिषदों में कुण्डलिनी की अवधारणा

योगोपनिषद् योग से संबंधित उपनिषदों का एक समूह है। 'मुक्तिका संकलन' में सूचीबद्ध एक सौ आठ उपनिषदों के संकलन में कुल बीस योगोपनिषद् हैं।¹ ये अलग वर्गीकृत बीस योगोपनिषद् वेदांत की दृष्टि से वैदिक शाखा से संबंधित हैं, अतः ऋग्वेद शाखा, कृष्णयजुर्वेद शाखा, शुक्लयजुर्वेद शाखा, सामवेद शाखा, अथर्ववेद शाखा के अंतर्गत कुल बीस योगोपनिषदों का वर्णन किया गया है। इन बीस योगपरक उपनिषदों में कुछ योगोपनिषद् अत्यंत लघु एवं कुछ दीर्घ योगोपनिषद् हैं। योग उपनिषद् प्रमुख रूप से यौगिक तकनीकों के सिद्धांतों एवं अभ्यासों से संबंधित है, जिसमें योग के विभिन्न पहलुओं और प्रकारों पर विस्तृत चर्चा की गई है जिनमें—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि सहित अन्य योग विषयक अवधारणाओं यथा नाद, नाड़ी संस्थान, चक्र एवं कुण्डलिनी स्थूल, सूक्ष्म एवं कारणादि शरीर रचना के संबंध में भी विस्तृत व्याख्या की गयी है।

इन योगोपनिषदों में योगपरक विषयों के साथ ही 'कुण्डलिनी' के विषय में सारगर्भित, विस्तृत एवं मूल्यपरक चर्चा की गयी है। जिसके अंतर्गत कुण्डलिनी शक्ति को परिभाषित करते हुए कुण्डलिनी के स्थान एवं प्रतीकात्मक स्वरूप का वर्णन अत्यंत स्पष्ट, सरल एवं सहज रूप से किया गया है। कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के उपायों एवं विधियों का वर्णन करते हुए कुण्डलिनी जागरण के फलस्वरूप साधक या योगी की स्थिति के साथ ही प्राप्त फलश्रुतियों का भी विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत शोधकार्य के उद्देश्यानुसार 'योगोपनिषदों में कुण्डलिनी की अवधारणा' की व्याख्या करने हेतु शोधार्थी द्वारा इन बीस योगोपनिषदों का गहन अध्ययन कर इनमें वर्णित 'कुण्डलिनी' की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है। अतएव ऋग्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों के अंतर्गत 'नादबिन्दूपनिषद्' कुण्डलिनी के विषय की विस्तृत चर्चा करता है। इसी प्रकार, कृष्णयजुर्वेदीय शाखा के योगोपनिषद् 'अमृतनादोपनिषद्', 'ब्रह्मविद्योपनिषद्', 'ध्यानबिन्दूपनिषद्', 'योगकुण्डलिन्युपनिषद्', 'वराहोपनिषद्', 'योगशिखोपनिषद्', 'योगतत्त्वोपनिषद्' आदि में कुण्डलिनी का वर्णन मिलता है। शुक्लयजुर्वेदीय

¹ आयंगर, टी. आर. श्रीनिवास (1938), योग उपनिषद्, अड्यार लाइब्रेरी।

शाखा के योगोपनिषद् जैसे— ‘त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्’, ‘मण्डलब्राह्मणोपनिषद्’, ‘अद्वयतारकोपनिषद्’ में भी कुण्डलिनी को समझाया गया है। सामवेदीय शाखा के योगोपनिषदों के अंतर्गत ‘दर्शनोपनिषद् (जबालदर्शनोपनिषद्)’, ‘योगचूडामण्युपनिषद्’, एवं अथर्ववेदीय शाखा के योगोपनिषदों के अंतर्गत एकमात्र ‘शाण्डिल्योपनिषद्’ में ही कुण्डलिनी का वर्णन मिलता है।

4.1 ऋग्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों में कुण्डलिनी संबंधित अवधारणा

चक्रों की ही भांति कुण्डलिनी जैसे अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय की चर्चा ऋग्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों के अंतर्गत केवल ‘नादबिन्दूपनिषद्’ में की गयी है, जिसकी विस्तृत व्याख्या इस प्रकार है—

4.1.1 नादबिन्दूपनिषद्

यह नादबिन्दूपनिषद् ऋग्वेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् है। कुल 56 मंत्रों के संकलन के माध्यम से इस उपनिषद् में वैराज—प्रणव के स्वरूप, वैराजविद्या से प्राप्त होने वाले फल, प्रणव की मुख्य चार मात्राओं का स्वरूप, व्यष्टि और समष्टि के भेद से प्रणव की बारह मात्रा—भेदों का कथन और उपासकों का उस मात्रा के काल के उत्क्रमण का फल, निर्विशेष ब्रह्मज्ञान का स्वरूप और उसके ज्ञान के फल की विस्तृत चर्चा की गई है। इसी के साथ ज्ञानी पुरुषों के पूर्व जन्मों के कर्मों के भाव एवं अभाव का विचार प्रस्तुत है एवं तुरीय की प्राप्ति के लिए नादानुसन्धान नामक उपाय का वर्णन किया गया है। अन्त में इस उपनिषद् में नाद के स्वरूप के बारे में वर्णन करते हुए नादारूढ़ योगियों के लिए विदेहमुक्ति के लाभ बताये गये हैं।

इसी के साथ तुरीय अवस्था को प्राप्त करने के उपायों के अंतर्गत नादानुसन्धान की विधि में शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास करने के लिए एकाग्रता हेतु सप्तचक्रों की चर्चा की गयी है।

शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास में एकाग्रता हेतु सप्तचक्रों एवं कुण्डलिनी की चर्चा— प्रस्तुत उपनिषद् में तुरीय अवस्था को प्राप्त करने के उपायों के अंतर्गत नादानुसन्धान की विधि में शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास वर्णित है। इस शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास के अंतर्गत प्राण तथा चित्त को लय करने हेतु शरीरस्थ प्रदेशों में स्थित सप्तचक्रों पर क्रमशः एकाग्रता करना चाहिए। 1. मूलाधार चक्र, 2. स्वाधिष्ठान चक्र, 3. मणिपुर चक्र, 4. अनाहत चक्र, 5. विशुद्धि चक्र, 6. आज्ञा चक्र, 7. सहस्रार चक्र ये सात प्रकार के चक्र हैं।²

साथ ही यह भी निर्देश दिया गया है कि ध्यानमग्न अवस्था में योगी को अपने दाहिने कर्ण में अनाहत नाद को हमेशा सुनना चाहिए। यह अनाहत नाद ही कुण्डलिनी शक्ति के व्यक्त होने का भी संकेत होता है।³

4.2 कृष्णयजुर्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों में कुण्डलिनी संबंधित अवधारणा—

कृष्णयजुर्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों के अंतर्गत मुख्य रूप से निम्न योगोपनिषदों जैसे— ‘अमृतनादोपनिषद्’, ‘ब्रह्मविद्योपनिषद्’, ‘ध्यानबिन्दूपनिषद्’, ‘योगकुण्डलिन्युपनिषद्’, ‘वराहोपनिषद्’, ‘योगशिखोपनिषद्’, एवं ‘योगतत्त्वोपनिषद्’ में कुण्डलिनी का वर्णन मिलता है।

4.2.1 अमृतनादोपनिषद्

कुल 39 मंत्रों के संकलन से युक्त यह अमृतनादोपनिषद् ‘कृष्णयजुर्वेदीय शाखा’ के योगोपनिषदों में से एक है। इस उपनिषद् के अनुसार उपनिषदों में वर्णित ज्ञान की महिमा का श्रवण चिंतन एवं मनन करने से व्यक्ति का मन एवं चित्त विशुद्ध तथा शांत हो जाता है फलस्वरूप ऐसे व्यक्ति को पुरुषार्थ करने पर सफलता प्राप्त होती है। जिन व्यक्तियों का मन पूरी तरह शुद्ध नहीं हैं, ऐसे व्यक्तियों के मन की शुद्धि के उपाय इस उपनिषद् में छह योगांग— प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि एवं तर्क (समीक्षा) तथा ब्रह्मोपासना अर्थात् प्रणव की उपासना वर्णित है।

²“सिद्धासने स्थितो योगी मुद्रां संधाय वैष्णवीम्।

शृणुयाद् दक्षिणे कर्णे नादमन्तर्गतं सदा।।” नादबिन्दूपनिषद्— 31.

³ शास्त्री, केशवलाल वी. (2014), उपनिषत्सञ्चयनम्: ईशाद्याष्टोत्तरशतोपनिषद्, नादबिन्दूपनिषद्, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, अनुच्छेद— 2, पृष्ठ संख्या 361.

ब्रह्मोपासना तथा योगांगों का साथ-साथ निरन्तर अभ्यास करने से मन की शुद्धि होती है एवं व्यक्ति द्वारा किये गये पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं, यही अमृतनादोपनिषद् में प्रतिपादित मुख्य विषय है।

अमृतनादोपनिषद् में चित्तशुद्धि के उपायों हेतु धारणा के अभ्यास पर बल दिया है। हृदय-पुण्डरीक की धारणा, 'समाधिसिद्धि के उपाय के अंतर्गत: प्रणव या ओंकार मंत्र का जाप करना वर्णित है। मन को स्थूल जगत् से सूक्ष्म जगत् में प्रवेश कराने हेतु नाभि से ऊपर मणिपुर चक्र, अनाहत या हृदय चक्र, आज्ञा या भ्रूमध्य चक्र एवं सहस्रार चक्र आदि में ध्यान करना, ये सात चक्र ही आत्मदर्शन के सात द्वार हैं। हृदयद्वार, वायुद्वार, मूर्धद्वार या सहस्रारद्वार, मोक्षद्वार के बिलद्वार, सुषिरद्वार एवं मण्डलद्वार तथा सातवाँ कैवल्यद्वार, 'चिंतन की विधि के अंतर्गत: हृदयाकाश में स्थित प्राणवायु तथा चेतना को निरन्तर जप और ध्यानादि के अभ्यास से ईश्वर के अभिमुख करना' तथा चक्रों से संबंधित क्षेत्र तथा इन क्षेत्रों में प्रमुख पंच वायु की स्थिति का वर्णन' किया गया है। साथ ही योगाभ्यास के उत्कृष्ट फल हेतु शरीरस्थ प्राण वायु को षट्चक्रों का भेदन करते हुए शरीर के शीर्ष प्रदेश में स्थित सहस्रारचक्र तक पहुँचाने से ज्ञानरूपी प्रसाद की प्राप्ति का विस्तृत वर्णन किया गया है। अमृतनादोपनिषद् के अन्त में षट्चक्र, सुषुम्ना नाड़ी तथा कुण्डलिनी संबंधित तथ्य एवं विचारों की विस्तृत विवेचना करते हुए इस उपनिषद् का समापन किया गया है।⁴

(i). कुण्डलिनी एवं षट्चक्र संबंधित विचार

अमृतनादोपनिषद् के अनुसार षट्चक्र, सुषुम्ना नाड़ी तथा कुण्डलिनी संबंधित अनेक तथ्य हैं⁵— मानवीय शरीर में षट्चक्रों के स्थान रीढ़ की हड्डी के मध्य में तथा रीढ़ की हड्डी के ऊपर सुषुम्ना नाड़ी में गुंथी हुई स्थिति में है। प्राणायाम के अभ्यास से योगाभ्यासी अपने शरीर में जिस प्रकार की अनुभूति एवं बोध करता है उससे चक्रों, नाड़ियों तथा कुण्डलिनी की शक्ति का संज्ञान होता है। श्रुति के अनुसार सामान्यतः सुषुम्ना नाड़ी हृदयचक्र से होती हुई ऊपर की दिशा में मस्तिष्क की ओर

⁴ शास्त्री, केशवलाल वी. (2014), उपनिषत्सञ्चयनम्: ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः, अमृतनादोपनिषद्, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, सूत्र संख्या 1-39, पृष्ठ संख्या 1-39.

⁵ शास्त्री, केशवलाल वी. (2014), उपनिषत्सञ्चयनम्: ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः, अमृतनादोपनिषद्, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 38-39.

जाती है। इस सुषुम्ना नाड़ी के दोनों तरफ इड़ा तथा पिंगला नाड़ियाँ स्थित हैं। यह नाड़ियाँ सूक्ष्म स्तर पर होती हैं भौतिक शरीरविज्ञान की दृष्टि से देख पाना संभव नहीं है। ये तीनों प्रमुख नाड़ियाँ शीर्ष प्रदेश में स्थित सहस्रार चक्र से स्नायुओं के रूप में रीढ़ की हड्डी के बीच से तथा बाहर से गुदाद्वार तक फैली हुई होती हैं। कुण्डलिनी शक्ति का वर्णन करते हुए यहाँ वर्णित किया गया है कि, मूलाधार स्थित कुण्डलिनी साढ़े तीन फेरे की कुण्डली सुप्तावस्था में पड़ी रहती है जिसे 'कुण्डलिनी शक्ति' कहा जाता है। कुण्डलिनी शक्ति को सजग एवं जाग्रत कर सहस्रार चक्र में ले जाकर बिन्दुस्वरूप परमशिव के साथ एकाकार करना ही 'कुण्डलिनी योग' कहलाता है। प्राणायाम तथा धारणा के अभ्यास के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को सहस्रार चक्र तक ले जाया जाता है। कुण्डलिनी जागरण के अन्य दो प्रधान उपाय— लययोग और हठयोग हैं। 'हठयोग' के अंतर्गत मूलबंध, उड्डीयान बंध इत्यादि अभ्यासों द्वारा मांसपेशियों और स्नायुओं का संकुचन करके कुण्डलिनी शक्ति को जगाया जाता है। 'लययोग' के अंतर्गत कुण्डलिनी जागरण हेतु 'नाद-धारणा' का अभ्यास वर्णित है। नाद के दो प्रकार हैं— आहत नाद और अनाहत नाद। 'वाक्यरूप आहत नाद के चार प्रकार हैं— 1. परा, 2. पश्यन्ती, 3. मध्यमा और 4. वैखरी। मूलाधार प्रदेश में परा नामक सूक्ष्म चेष्टा होती है जिससे श्वास और प्रश्वास में स्वाभाविक रूप से मूलाधार प्रदेश फैलता और सिकुड़ता है अतः यह परा-अवस्था काल्पनिक न होकर शब्दोच्चारण की आधारभूत प्रक्रिया है। पश्यन्तीरूप या उदर संकोचन रूप दूसरी क्रिया स्वाधिष्ठान चक्र में होती है। तत्पश्चात् मध्यमा नामक फेफड़ों के संकुचन के रूप में तीसरी क्रिया अनाहत चक्र या वक्षस्थल में होती है। अन्त में वैखरी या बोला जाने वाला वाक्य नामक चौथी क्रिया विशुद्धि चक्र आदि में होती है। इन सभी आहत नाद के प्रकारों के अंतर्गत संचालित होने वाले कार्यों को कुण्डलिनी शक्ति के काम कहा गया है। इस प्रकार आहत नाद का वाक्य के साथ संबंध रहने के कारण सर्वप्रथम 'हुम्' शब्द के उच्चारण के माध्यम से कुण्डलिनी शक्ति को जगाना चाहिये।

अनाहत नाद के दो प्रकार वर्णित हैं— 1. कान के द्वारा श्रवणीय अनाहतनाद, 2. संपूर्ण शरीर में ऊपर जाती हुई धारा के रूप में अनुभव अनाहतनाद। अनाहत नाद का प्रथम प्रकार 'कान के द्वारा श्रवणीय अनाहतनाद' षण्मुखी मुद्रा के अभ्यास से सुना

जा सकता है। प्राणायाम के अभ्यास तथा शरीरस्थ नाड़ी शुद्धि होने पर अत्यन्त सरलता से प्राकृतिक रूप में कान में अनाहत नाद सुनाई देता है। अनाहत नाद का दूसरा प्रकार 'संपूर्ण शरीर में ऊपर जाती हुई धारा के रूप में अनुभव अनाहतनाद' के माध्यम से ही कुण्डलिनी शक्ति को लंबे समय के अभ्यास के फलस्वरूप सहस्रार चक्र तक ले जाना होता है और वहाँ वह बिन्दुरूप में परिणत होता है। इस प्रकार तांत्रिकों द्वारा बिन्दु को शिव तथा नाद को शक्ति कहा गया है। तंत्रशास्त्रों में 'नाद की बिन्दुत्व प्राप्ति को ही शिव और शक्ति का योग' कहते हैं।

(ii). धारणा के अंतर्गत कुण्डलिनी शक्ति का वर्णन

अमृतनादोपनिषद् में कुल दो प्रकार की धारणाओं का वर्णन किया गया है— 1. तत्त्वज्ञानमय धारणा, 2. वैषयिक धारणा। 'तत्त्वज्ञानमय धारणा' की प्रक्रियाँ में व्यक्ति अपने मन को इन्द्रियगत विषयों से दूर कर ज्ञानस्वरूपी आत्मा में मन को स्थिर करने का प्रयास करता है। 'वैषयिक धारणा' में शब्द एवं ज्योति की धारणा को प्रमुखता दी गयी है। इसमें हृदयस्थ ज्योति की सहायता से बुद्धि को एकाग्र करने की धारणा प्रधान है तथा शब्द धारणाओं के अंतर्गत 'अनाहत नाद' की धारणा को प्रमुखता दी गयी है। इस शब्द धारणा का अभ्यास सदैव एकान्त एवं निःशब्द स्थान पर किया जाना चाहिए। इस निःशब्द स्थान पर धारणा के अंतर्गत चित्त को स्थिर करने तथा कुछ चयनित प्राणायाम एवं षण्मुखी मुद्रा का अभ्यास करने के फलस्वरूप साधक को कानों में गरजते हुए बादलों की आवाज, शंख के बजने की आवाज, घण्टे की ध्वनि इत्यादि आवाजें सुनायी देती हैं, इन ध्वनियों को ही अनाहत नाद कहा जाता है। ये अनाहत नाद कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा होते हैं।⁶

(iii). योगाभ्यास का उत्कृष्ट फल के अंतर्गत चक्र एवं कुण्डलिनी संबंधित विचार

मुक्ति के आकांक्षी योगी अपनी प्राण वायु को षट्चक्रों— मूलाधारचक्र, स्वाधिष्ठानचक्र, मणिपुरचक्र, अनाहतचक्र, विशुद्धिचक्र और आज्ञाचक्र का भेदन करते हुए शरीर के शीर्ष प्रदेश में स्थित सहस्रारचक्र तक पहुँचा देता है, उस समय वह

⁶ शास्त्री, केशवलाल वी. (2014), उपनिषत्सञ्चयनम्: ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्, अमृतनादोपनिषद्, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 30.

योगी ज्ञानरूपी प्रसाद की प्राप्ति करता है एवं साथ ही परवैराग्य के साथ पुरुषत्व को प्राप्त कर लोकातीत परमपद को प्राप्त होता है तथा इस प्रकार के सिद्ध योगी के द्वारा किसी भी स्थान पर अपना शरीर त्यागने पर भी वह कभी पुर्नजन्म को प्राप्त नहीं होता अर्थात् भव-बन्धन से परे हो जाता है।⁷

4.2.2 ब्रह्मविद्योपनिषद्

ब्रह्मविद्योपनिषद् मुख्यतः कृष्णयजुर्वेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् है। कुल 110 मंत्रों के संकलन के माध्यम से इस उपनिषद् में ब्रह्म के गुणों का वर्णन करते हुए, ब्रह्म को प्राप्त करने के उपायों का वर्णन किया गया है। ब्रह्म को प्रणव या ओंकार से संबोधित कर प्रणवब्रह्म की तीन मात्राओं के अंतर्गत— वेद, अग्नि, लोक एवं देवरूप के तीन-तीन रूपों का वर्णन किया है, यही ब्रह्मविद्योपनिषद् में प्रतिपादित मुख्य विषय है। ब्रह्मविद्योपनिषद् के उपदेशों के अनुसार जीवात्मा स्वभावतः अनवरत स्वयं प्रकाशित चैतन्य 'हंसः' ('ह' कार और 'म' कार) के रूप में प्रणव का जप करती है। यदि जीवात्मा प्राणायाम के अभ्यास के साथ 'हंस' को नियमपूर्वक जपती है तो वह जीवात्मा सिद्धि को प्राप्त करती है तथा अन्त में ज्ञान को प्राप्त स्वयं विलक्षणों से परिपूर्ण ब्रह्मरूप बन जाती है। अन्त में ब्रह्मरूप के विभिन्न लक्षणों का वर्णन करते हुए यह बताया गया है कि ऐसी जीवात्मा सच्चिदानन्द ज्ञानस्वरूप मुक्त ही हो जाती है।

ब्रह्मविद्योपनिषद् में प्राण के स्थान के रूप में नाभिप्रदेश, ब्रह्मतत्त्व के ध्यान के स्थान के रूप में हृदयप्रदेश या अनाहतचक्र, स्वप्रकाशित चिदानन्द के ध्यान के स्थान के हेतु आज्ञाचक्र एवं नाभिचक्र तथा विभिन्न चक्रों से संबंधित देवताओं का वर्णन किया गया है। साथ ही षट्चक्रों के भेदन के संबंध में मुख्य चर्चा की गई है जिसका प्रमुख उद्देश्य षट्चक्रमण्डल का भेदन कर ज्ञानरूपी दीपक को प्रकाशित करना है।

(i). कुण्डलिनी शक्ति के संबंध में मुख्य चर्चा

ब्रह्मविद्योपनिषद् के उपदेशानुसार, कुण्डलिनी शक्ति के मध्यस्थान में अग्नि तथा नाभिचक्र में सूर्य स्थित है। इस उपनिषद् में क्रमशः तीनों अग्नियों के संबंधित

⁷“यस्येदं मण्डलं भित्वा मारुतो याति मूर्धनि।
यत्र यत्र भ्रियेत् वापि न स भूयोऽभिजायते न स भूयोऽभिजायते।।” अमृतनादोपनिषद्-39.

स्थान तथा तीन ग्रंथियों का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार हैं— नासिकाग्र व दोनों नेत्रों में 'अकार—अग्नि' व 'ब्रह्मग्रंथि', हृदय प्रदेश में 'उकार—अग्नि' व 'विष्णुग्रंथि' तथा आज्ञा प्रदेश में 'मकार—अग्नि' व 'रुद्रग्रंथि' प्रतिष्ठित है। इन तीनों ग्रंथियों का भेदन 'हंसज्ञान' रूपी अक्षरवायु तथा बन्ध एवं मुद्रा के अभ्यास से किया जाता है। 'हंसः ('ह' कार और 'म' कार)' के रूप में प्रणव का जप करते समय 'अ' कार में 'ब्रह्म का, 'उ' कार में विष्णु का और 'म' कार में रुद्र का तथा अन्त में परब्रह्म का ध्यान करना चाहिए। 'आद्यशक्ति कुण्डलिनी' को स्तम्भित करने के लिए बंध का अभ्यास करते समय कण्ठप्रदेश को सिकोड़कर जालंधर बंध लगाना चाहिए। तत्पश्चात् "जीभ को दबाकर सुषुम्ना नाड़ी, प्राणों तथा कुण्डलिनी को चालित करके शशिमण्डल का भेदन करना चाहिए।"

सुषुम्ना नाड़ी को यहाँ सोलह आधार वाली, त्रिकुट अर्थात् इड़ा, पिंगला व सुषुम्ना का मिलन स्थान वाली, तीन प्रकारों वाली अतिसूक्ष्म, उर्ध्वगामिनी तथा ब्रह्मरन्ध्र को जानने वाली बताया गया है। इसी प्रकार कुण्डलिनी शक्ति को ओंकारयुक्त, ऊर्ध्वनाल, भ्रुकुटियों की दिशा में गमनीय, ओंकार त्रिकुट अर्थात् सुख, दुःख व सुख—दुःख तीनों को खाने वाली है। सुषुम्ना नाड़ी, प्राणों तथा कुण्डलिनी की इस व्याख्या से तात्पर्य यह है कि इन तीनों शक्तियों को चालित करके शशिमण्डल अर्थात् सहस्रार चक्र का भेदन करना चाहिए।" इस समय साधक को सदैव के लिए कुण्डलिनी के पूर्वभाग में अधोलिङ्ग का ध्यान तथा शिखास्थान में पश्चिमलिङ्ग का ध्यान और भौंहों के बीच में ज्योतिर्लिङ्ग का ध्यान करना चाहिए।⁸

⁸ "पावकः शक्तिमध्ये तु नाभिचक्रे रविः स्थितः।।" ब्रह्मविद्योपनिषद्-68.

"बन्धमुद्रा कृता येन नासाग्रे तु स्वलोचन।

अकारे वह्निर्नरित्याहुरुकारे हृदि संस्थितः।।" ब्रह्मविद्योपनिषद्-69.

"मकारे च भ्रुवोर्मध्ये प्राणशक्त्या प्रबोधयेत्।

ब्रह्मग्रन्थिरकारे तु विष्णुग्रन्थिर्हृदि स्थितः।।" ब्रह्मविद्योपनिषद्-70.

"रुद्रग्रन्थिर्भ्रुवोर्मध्ये भिद्यतंऽक्षरवायुना।

अकारे संस्थितो ब्रह्मा उकारे विष्णुरास्थितः।।" ब्रह्मविद्योपनिषद्-71.

"मकारे संस्थितो रुद्रस्ततोऽस्यान्तः परात्परः।

कण्ठं संकुच्य नाड्यादौ स्तम्भिते येन शक्तिः।।" ब्रह्मविद्योपनिषद्-72.

"रसना पीडयमानेयं षोडशी चोर्ध्वगामिनी।

त्रिकुटं त्रिविधा चैव गोलाखं निखरं तथा।।" ब्रह्मविद्योपनिषद्-73.

"त्रिशखं वज्रमोकारमूर्ध्वनालं भ्रुवोर्मुखम्।

कुण्डलीं चालयन्प्राणं भेदयन् शशिमण्डलम्।।" ब्रह्मविद्योपनिषद्-74.

(ii). कुण्डलिनी स्थान

ब्रह्मविद्योपनिषद् के अनुसार जिस समय “प्राणवायु पिंगला नाड़ी के मार्ग से ‘कुण्डलिनीस्थान’ में प्रवेश करता है, उसे सूर्यग्रहण कहते हैं। जिस प्रकार जल में जल मिल जाता है, वैसे ही इस ज्ञान से सायुज्यपद प्राप्त होता है।”⁹

(iii). षट्चक्रों के भेदन के संबंध में कुण्डलिनी की चर्चा

ब्रह्मविद्योपनिषद् के उपदेशानुसार— कुण्डलिनी, सुषुम्ना नाड़ी तथा प्राण रूपी इन तीनों शक्तियों को चालित करके शशिमण्डल अर्थात् सहस्रार चक्र का भेदन करना चाहिए।¹⁰ साथ ही मानव शरीरस्थ नवद्वारों को बंद कर वज्रकुम्भक का अभ्यास करने तथा प्रसन्न एवं स्वस्थ मन से स्वाभाविक स्थिति में गुणरहित होकर प्राणायाम के अभ्यास द्वारा षट्चक्रों का भेदन करना चाहिए। इस प्रकार प्राणायाम के अभ्यास द्वारा षट्चक्रों का भेदन करते हुए ध्यानस्त होने से ब्रह्मस्थान में नाद श्रवणीय होता है एवं ब्रह्मरन्ध्र स्थित शंकिनी नाड़ी से अमृत का स्राव होने लगता है। षट्चक्रमण्डल का भेदन होने पर ज्ञानरूपी दीपक प्रकाशित हो उठता है।¹¹

4.2.3 ध्यानबिन्दूपनिषद्

ध्यानबिन्दूपनिषद् कृष्णयजुर्वेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् है। इसमें ध्यान केन्द्रविषय है। कुल 106 मंत्रों के संकलन के माध्यम से इस उपनिषद् की शुरुआत ‘ब्रह्म के ध्यानयोग की महिमा’ बताकर ब्रह्म को सूक्ष्मत्व और सर्वव्यापकत्व बताया है। ध्यानबिन्दूपनिषद् के अनुसार एकमात्र ध्यानयोग ही वह उपाय है जिसके द्वारा ब्रह्म में ध्यानस्त होने से योगियों के असंख्य जन्मों के समस्त पापों का नाश हो जाता है। ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप व नाम ‘निःशब्द प्रणव या ओंकार’ ही है, इसीलिये ध्यानस्थ अवस्था में प्रणव या ओंकार का मानसिक जप परमपद या कैवल्य प्रदान करता है।

⁹ “सूर्यस्य ग्रहणं वत्स प्रत्यक्षयजनं स्मृतम्।

ज्ञानात्सायुज्यमेवोक्तं तोयं तोयं यथा तथा।।” ब्रह्मविद्योपनिषद्— 57.

¹⁰ “त्रिशङ्खं. वज्रमोँकारमूर्ध्वनालं भ्रूवोर्मुखम्।

कुण्डलीं चालयन्प्रणान् भेदयन् शशिमण्डलम्।।” ब्रह्मविद्योपनिषद्—74.

¹¹ “साधयन्वज्रकुम्भानि नव द्वाराणि बन्धयेत्।

सुमनः पवनारूढः सरागो निर्गुणस्तथा।।” ब्रह्मविद्योपनिषद्—75.

ब्रह्मस्थाने तु नादः स्याच्छङ्खि.कन्यमृतवर्षिणी।

षट्चक्रमण्डलोद्धारं ज्ञानदीपं प्रकाशयेत्।।” ब्रह्मविद्योपनिषद्—76.

इस प्रणव या ओंकार को ही बीजाक्षर कहा गया है 'अ, उ और म्' के मिलने से 'ओउम्' की उत्पत्ति होती है तथा इस 'ओउम्' के ऊपर अनाहत नाद का एक अंश आने पर ही यह सशब्द या उच्चारण करने योग्य होता है। अतः अनाहत नाद का सशब्द रूप ही प्रणव या ओंकार कहलाता है। यह नित्य अनाहत नाद की उत्पत्ति हृदय में होती है।

ब्रह्म का वर्णन अत्यन्त सूक्ष्म तथा सर्वव्यापी के रूप में करते हुए प्रणव का स्वरूप, प्रणव ध्यान की विधि, प्राणायाम और अन्य प्रकार से प्रणवध्यान, ब्रह्मध्यान, त्रिमूर्तिध्यान और उसका फल बताया गया है। तदुपरान्त षडंगयोग, चार प्रकार के आसन, योनिस्थान, मूलाधारादि चक्र, नाडीचक्र, प्राणादि दशावयव इत्यादि ध्यानबिन्दूपनिषद् में प्रतिपादित मुख्य विषय हैं। यौगिक क्रियाओं के द्वारा योगी प्राण को अलग-अलग चक्रों में से क्रमशः सुषुम्ना नाडी के द्वारा ऊपर चढ़ाता है। जिससे योगी को अनेक प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति होती है। अन्त में उस योगी को ब्रह्म की अनुभूति प्राप्त होती है। इस उपनिषद् में योग की अनेकानेक क्रियाओं का भी सविस्तार वर्णन किया गया है।

(i). मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी की स्थिति

ध्यानबिन्दूपनिषद् के अनुसार मानवीय शरीरस्थ छः चक्रों में प्रथम स्थान चार-दलीय कमल रूपी 'मूलाधार चक्र' का है, जो गुदाद्वार के समीप स्थित है। यह अग्निमण्डल से चार अंगुल ऊपर है तथा मेढ्र अर्थात् लिंगमूल के नीचे है। प्रतीकात्मक रूप से मूलाधार चक्र तपती हुई स्वर्ण धातु के समान कांतिमय एवं बिजली जैसी चमक धारण किये हुए है।

मूलाधार चक्र और स्वाधिष्ठान चक्र के मध्य में कामरूप योनिस्थान कहा जाता है।¹² मूलाधार चक्र के मध्य में कामरूपी योनि स्थित है, जिसे सिद्ध पुरुषों द्वारा 'कुण्डलिनी शक्ति' कहा गया है। यह कुण्डलिनी योनि के बीच में पश्चिम की ओर अपना मुंह किये हुए मणि की तरह स्वप्रकाशित रूप से विद्यमान है। यह कुण्डलिनी

¹²“स्वशब्देन भवेत् प्राणः स्वाधिष्ठानं तदाश्रयम्।।” ध्यानबिन्दूपनिषद्-47.
“स्वाधिष्ठानं ततश्चक्रं मेढ्रमेव निगद्यते।।” ध्यानबिन्दूपनिषद्-48.

ही व्यक्ति को प्रवृत्ति मार्ग अर्थात् सांसारिक मोह—माया एवं निवृत्ति मार्ग अर्थात् मोक्ष एवं वैराग्य का मार्ग प्रशस्त करती है।

जब यह कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना नाड़ी रूपी मार्ग से ऊपर की ओर उठते हुए षट्चक्रों का भेदन कर सहस्रार चक्र में पहुँचती है तब यह मनुष्य के निवृत्ति मार्ग को प्रशस्त करती है और यदि यह कुण्डलिनी शक्ति सुप्तावस्था में मूलाधार चक्र में ही रहती है तब यह व्यक्ति को सांसारिक बंधनों में फंसाए रहती है। इसे जानने वाला व्यक्ति ही योग का ज्ञाता माना जाता है।¹³

इस प्रकार ध्यानबिन्दूपनिषद् में षट्चक्र संबंधी मुख्य अवधारणा का विवेचन करते हुए विशुद्धि चक्र एवं सहस्रार चक्र के बारे में 'आत्मदर्शन के उपायों के अंतर्गत केवल इन चक्रों के नामों का ही वर्णन मिलता है जिनसे होकर कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार चक्र में पहुँचकर योगी को आत्मदर्शन कराती है।

(ii). कुण्डलिनी संबंधी मुख्य अवधारणा

ध्यानबिन्दूपनिषद् के अनुसार— ब्रह्म का ध्यान तथा प्रणव का ध्यान एवं प्राणायाम के सिद्ध हो जाने के बाद चक्रों तथा 'कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से आत्मदर्शन' होते हैं। जिस प्रकार प्रकाश की किरणों के स्पर्शमात्र से कमल के फूल खिल जाते हैं उसी प्रकार मन की रश्मियों के द्वारा शरीरस्थ आभ्यान्तरिक केंद्र या चक्र प्रकाशित होकर दृश्यगत होने लगते हैं, कदाचित इसी आधार पर इन केंद्रों या चक्रों को कमल की संज्ञा दी गयी है। स्थूल शरीर में इन चक्रों को बिना बिजली के दीपों की संज्ञा दी गयी है किन्तु जैसे ही इन दीपों में बिजलीधारा प्रवाहित होती है तब ये दीप प्रज्वलित हो उठते हैं, इसी प्रकार सुप्तावस्था में स्थित कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती

¹³ "आधारं प्रथमं चक्रं स्वाधिष्ठानं द्वितीयकम् ।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्-43.

"योनिस्थानं तयोर्मध्ये कामरूपं निगद्यते ।

आधारस्थे गुदास्थाने पंकजं यच्चतुर्दलम् ।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्-44.

"तन्मध्ये प्रोच्यते योनिः कामाख्या सिद्धवन्दिता ।

योनिमध्ये स्थितं लिंगं पश्चिमाभिमुखं तथा ।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्-45.

"मस्तके मणिवद् भिन्नं यो जानाति स योगवित् ।

तप्तचामीकराकारं तडिल्लेखेव विस्फुरत् ।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्-46.

"चतुरस्त्रमुपर्यग्रेरधो मेढ्रात् प्रतिष्ठितम् ।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्-47.

है तदुपरान्त शरीरस्थ चक्र अपने वर्णों के साथ प्रकाशित दिखाई पड़ने लगते हैं।¹⁴ दिव्यदृष्टि प्राप्त योगी को ही इन प्रकाशित चक्रों के स्वरूप का अनुभव प्राप्त होता है।

(iii). कुण्डलिनी

ध्यानबिन्दूपनिषद् उपनिषद् के अनुसार बिजली के समान चमक लिये हुए कुण्डलिनी शक्ति योनिस्थान में स्थित सुषुम्ना नाड़ी के मुँख पर साढ़े तीन फेरे या कुण्डलियाँ मारे हुये सर्प की भाँति कन्द स्थान के ऊपरी ओर सुप्तावस्था में पड़ी रहती है। इस सुप्तावस्था में स्थित कुण्डलिनी शक्ति को यौगिक क्रियाओं के माध्यम से जाग्रत कर शीर्ष प्रदेश में स्थित ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाने की प्रक्रिया को 'कुण्डलिनी योग' कहते हैं।

ध्यानबिन्दूपनिषद् में दिये गये संदर्भ के अनुसार, 'तैजस तत्त्व प्रधान सुषुम्ना के साथ मानसिक रश्मियों के संघर्षण से उत्पन्न विद्युत् जैसी ज्योति का आलंकारिक रूप ही कुण्डलिनी है।'¹⁵

प्रत्येक मनुष्य की नासिका के दायीं ओर पिंगला नाड़ी तथा बायीं ओर इडा नाड़ी के माध्यम से श्वसन क्रिया संपन्न होती है। इन दोनों नाड़ियों के बीच सुषुम्ना नाड़ी स्थित है तथा सुषुम्ना के मध्य स्थित अनेकों सूक्ष्म नाड़ियों में चित्राणी नाड़ी का स्थान भी है। इस चित्राणी नाड़ी को कुण्डलिनी शक्ति का मार्ग कहा गया है। इडा तथा पिंगला नाड़ियों को कुण्डलिनी शक्ति के दो कुण्डलों की उपमा दी गयी है जिसके कारण ही इस शक्ति का नामकरण 'कुण्डलिनी' पड़ा। यह अव्यक्त शक्ति ही संपूर्ण विश्व की संचालक है। इसी प्रकार जीवात्मा की संचालक होने पर इसे व्यक्त शक्ति कहा जाता है। कुण्डलिनी शक्ति जब जाग्रत होती है तो वेग उत्पन्न करती है। इस वेग से उत्पन्न होने वाले प्रथम विस्फोट को 'नाद' कहा जाता है।

¹⁴ शास्त्री, केशवलाल वी. (2014), उपनिषत्सञ्चयनम्: ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः, ध्यानबिन्दूपनिषद्, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 250, अनुच्छेद-2.

¹⁵ शास्त्री, केशवलाल वी. (2014), उपनिषत्सञ्चयनम्: ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः, ध्यानबिन्दूपनिषद्, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 250, अनुच्छेद-2.

योगाभ्यासी, शक्तिचालिनी क्रिया के निरन्तर अभ्यास के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर सुषुम्ना मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचाता है।¹⁶

(iv). कुण्डलिनी जागरण से मोक्षद्वार को खोलना¹⁷

मणिपुर चक्र से जाती हुई सुषुम्ना नाड़ी के जिस मार्ग से होकर पाप—पुण्यों एवं जन्म—मरण के क्रम में उलझी हुई जीवात्मा मुक्ति हेतु ब्रह्म साक्षात्कार के लिये ब्रह्मरन्ध्र या ब्रह्मस्थान में पहुँचती है, उसी द्वार के मुँख बंद किये हुये सुप्तावस्था में कुण्डलिनी शक्ति विद्यमान रहती है। इस कुण्डलिनी के जागरण हेतु दो उपायों का वर्णन किया गया है— 1. मन की एकाग्रता 2. केवल कुम्भक प्राणायाम।

एकाग्र मन के साथ केवल कुम्भक प्राणायाम के अभ्यास से अपानवायु की धौंकनी से दहकती हुई अग्नि की गर्माहट से कुण्डलिनी शक्ति जागती है। जाग्रत कुण्डलिनी सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से होते हुए ब्रह्मरन्ध्र तक उसी प्रकार चली जाती है— ‘जैसे सुई में पिरोया हुआ धागा कपड़े में’ जाता है। जिस प्रकार ‘चाबी से ताले को खोलकर बंद दरवाजा खोला जाता है’, उसी प्रकार कुण्डलिनी शक्ति को ब्रह्मद्वार में पहुँचाकर योगी मोक्ष का द्वार खोलता है।

(v). कुण्डलिनी जागरण के उपाय

ध्यानबिन्दू उपनिषद् में कुण्डलिनी जागरण के विभिन्न उपाय बताए गए हैं—

(क) शक्तिचालन मुद्रा

पद्मासन की स्थिति में बैठकर हाथों में भैरवी मुद्रा लगाकर जालन्धर बंध का अभ्यास करते हुए मन को परमात्म्य ध्यानस्त कर, मूलाधार बंध का पुनः—पुनः अभ्यास करते हुए अपान वायु को प्राणवायु से मिलाते हैं। जब यह प्राणतत्त्व कुण्डलिनी में

¹⁶ शास्त्री, केशवलाल वी. (2014), उपनिषत्सञ्चयनम्: ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः, ध्यानबिन्दूपनिषद्, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 250.

¹⁷ “येन मार्गेण गन्तव्यं ब्रह्मस्थानं निरामयम्।।” ध्यानबिन्दूपनिषद्—65.

“मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी।

प्रबुद्धा वहिन्योगेन मनसा मरुता सह।।” ध्यानबिन्दूपनिषद्—66.

“सूचिवद् गुणमादाय ब्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्नया।

उदघाटयेत् कपाटं तु यथा कुञ्चिकया हठात्।।” ध्यानबिन्दूपनिषद्—67.

“कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत्।।” ध्यानबिन्दूपनिषद्—68.

प्रविष्ट होता है तब योगी को कुण्डलिनी शक्ति के प्रभाव के कारण 'अयमात्म ब्रह्म' के रूप में आत्मबोध की अनुभूति होती है।¹⁸

(ख) ब्रह्मचर्य आदि से कुण्डलिनी जागरण

पद्मासन में स्थित योगी सूर्य तथा चंद्र नाड़ियों से श्वसन द्वारा प्राणवायु को लेकर कुम्भक के अभ्यास से फेफड़ों में रोके रखकर ध्यानात्मक अवस्था में होता है वह योगी मुक्ति को प्राप्त करता है।¹⁹ शक्तिचालिनी मुद्रा के अभ्यास के फलस्वरूप निकले स्वेद से शरीरस्थ अंग-मर्दन करना चाहिए। कुण्डलिनी शक्ति जागरण हेतु प्रयत्नरत योगी द्वारा खट्टे, कटुक, नमकीन एवं तिक्त पदार्थों का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए, मात्र दुग्ध का सेवन करना चाहिए।²⁰ कुण्डलिनी जागरण हेतु योगी को ब्रह्मचारी, मिताहारी, योगाभ्यासी होना चाहिए, इस प्रकार निरन्तर एक वर्ष तक साधना करने पर निश्चित रूप से कुण्डलिनी शक्ति कन्द के ऊपर स्थित सुषुम्ना नाड़ी में प्रविष्ट कर जाती है जिससे साधक सिद्धि को प्राप्त करता है।²¹

4.2.4 योगकुण्डलिन्युपनिषद्

योगकुण्डलिन्युपनिषद् कृष्णयजुर्वेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् है। कुल तीन अध्यायों में प्रथम अध्याय में 87 सूत्र, द्वितीय अध्याय में 49 सूत्र तथा तृतीय अध्याय में 35 सूत्रों के साथ यह कुल 171 सूत्रों का संकलन है। प्रस्तुत शोधकार्य के उद्देश्यानुसार इस उपनिषद् के प्रथम अध्याय के विषयों में प्राणायाम तथा इसकी सिद्धि हेतु तीन उपायों के रूप में मिताहार, आसन और शक्तिचालिनी मुद्रा का वर्णन किया गया है। साथ ही प्राणायाम के प्रकार, तीन प्रकार के बन्ध, योगाभ्यास के दौरान आने वाली बाधाएँ तथा उनसे बचने के उपाय, कुण्डलिनी जागरण, ग्रन्थिभेदन, कुण्डलिनी शक्ति का सहस्रार चक्र में प्रवेश तथा प्राणादि का विलीनीकरण एवं

¹⁸ "कृत्वा सम्पुटितौ करौ दृढतरं बध्वाऽथ पद्मासनम् गाढं-वक्षसि सन्निधाय चुबुकं ध्यानं च तच्चेतसि।

वारंवारमपानमूर्ध्वमनिलं प्रोच्चारयन् पूरितं मुञ्चन् प्राणमुपैति बोधमतुलं शक्तिप्रभावात्ररः।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्-69.

¹⁹ "पद्मासनस्थितो योगी नाडीद्वारेषु पूरयन्।

मारुतं कुम्भयेत् यस्तु स मुक्तो नात्र संशयः।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्-70.

²⁰ "अङ्गानां मर्दनं कृत्वा श्रमजातेन वारिणा।

कटुअम्ललवणत्यागी क्षीरपानपतः सुखी।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्-71.

²¹ "ब्रह्मचारी मिताहारी योगी योगपरायणः।

अब्दादूर्ध्वं भवेत् सिद्धो नात्र कार्या विचारणा।।" ध्यानबिन्दूपनिषद्-72.

"कन्दोर्ध्वं कुण्डली शक्तिः स योगी सिद्धिभाजनम्। ध्यानबिन्दूपनिषद्-73.

समाधि योग आदि के बारे में विस्तृत चर्चा की गयी है। द्वितीय अध्याय में खेचरीमुद्रा के स्वरूप, लाभ तथा सिद्धियों एवं तृतीय अध्याय में खेचरी मुद्रा तथा साधक के दृष्टिकोण का सउदाहरण वर्णन किया गया है।

(i). योगकुण्डलिन्युपनिषद् में वर्णित कुण्डलिनी संबंधित अवधारणा

योगकुण्डलिन्युपनिषद् के अनुसार मानवीय शरीर में स्थित मुख्यशक्ति 'कुण्डलिनी' कहलाती है। प्राचीनकालिक विद्वानों द्वारा इस कुण्डलिनी को 'अरुन्धती' कहा गया है। कुण्डलिनी के जागरण या इसे नीचे मूलाधार से ऊपर आज्ञाचक्र तक लाने हेतु यहाँ दो मुख्य उपाय वर्णित हैं— 1. सरस्वतीचालन क्रिया, 2. अभ्यास के माध्यम से प्राण का निरोध करना। सरस्वतीचालन क्रिया के अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति स्वयं ही गतिमान होने लगती है। दो मुहुर्त तक इस सरस्वतीचालन क्रिया का अभ्यास करने के फलस्वरूप यह कुण्डलिनी सुषुम्ना नाड़ी के मुख में प्रवेश कर ऊपर की ओर उठने लगती है। इन दोनों साधनों के फलस्वरूप लिपटी हुई कुण्डलिनी सीध में आ जाती है।²²

जिस काल में अपान वायु ऊपर की ओर पहुँचकर अग्निमण्डल के साथ युग्मन करती है, तब इस अपान वायु से टकराकर यह अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है। प्राण के साथ इस अपान वायु और अग्नि के मिलने के प्रभावस्वरूप शरीररस्थ सभी प्रकार के विकार दग्ध हो जाते हैं तथा इस अग्नि की उष्मा से सुप्तावस्था में स्थित कुण्डलिनी जाग उठती है और फटकारी हुई सर्पिणी की तरह फुटकार मारती हुई सीध में आ जाती है।²³

²² "कुण्डल्येव भवेच्छक्तिस्तां तु संचालयेद्बुधः।
स्वस्थज्ञानादभ्रुवोर्मध्यं शक्तिचालनमुच्यते।।" योगकुण्डलिन्युपनिषद्- 1/7.
"तत्साधने द्वयं मुख्यं सरस्वत्यास्तु चालनम्।
प्राणरोधमध्यासादृज्जी कुण्डलिनी भवेत्।।" योगकुण्डलिन्युपनिषद्-1/8.
"तयोरादौ सरस्वत्याश्चालनं कथयामि ते।
अरुन्धत्येव कथिता पुराविद्धिः सरस्वती।।" योगकुण्डलिन्युपनिषद्-1/9.
"यस्याः संचालनेनैव स्वयं चलति कुण्डली।" योगकुण्डलिन्युपनिषद्-1/10.
"मुहुर्तद्वयपर्यन्तं निर्भयाच्चालयेत्सुधीः।
ऊर्ध्वमाकर्षयेत्किञ्चित्सुषुम्नां कुण्डलीगताम्।।" योगकुण्डलिन्युपनिषद्-1/13.
"तेन कुण्डलिनी तस्यां सुषुम्नाया मुखं व्रजेत्।
जहाति तस्मात्प्राणोऽयं सुषुम्नां व्रजति स्वतः।।" योगकुण्डलिन्युपनिषद्-1/1.
²³ "अपाने चोर्ध्वगे याते संप्राप्ते वह्निमण्डले।
ततोऽनलशिखा दीर्घा वर्धते वायुना हता।।" योगकुण्डलिन्युपनिषद्- 1/43.
"ततो यातौ वहन्यपानौ प्राणमुष्णस्वरूपकम्।
तेनात्यन्तप्रदीप्तेन ज्वलनो देहजस्तथा।।" योगकुण्डलिन्युपनिषद्- 1/44.

जाग्रत अवस्था में कुण्डलिनी एक सीधी रेखा में होकर सुषुम्ना नाड़ी के मुँख पर आकर उसमें प्रविष्ट हो जाती है। इस समय यह कुण्डलिनी शक्ति रजोगुण उत्पादित ब्रह्मग्रंथि को भेदकर बिजली की भाँति सुषुम्ना नाड़ी के मुँह के अन्दर अवरोहण करती हुई शीघ्रता से हृदयचक्र स्थित विष्णुग्रंथि को भेदकर आगे बढ़ती हुई ऊपर स्थित आज्ञाचक्र में स्थित रुद्रग्रंथि तक पहुँचती है।²⁴

भौहों के मध्य स्थित आज्ञाचक्र को भेदकर यह कुण्डलिनी चन्द्रस्थान स्थित सोलह-दलीय अनाहतचक्र में पहुँचती है। इस स्थान पर यह कुण्डलिनी शक्ति शुक्लरूप चंद्र को तपाते हुए क्षुब्धावस्था में वहीं घूमती रहती है।²⁵ कुण्डलिनी के इस क्षुब्धावस्था में होने की स्थिति में मन को अमृतरसास्वाद प्राप्त होता है, जिससे यह मन पूरी तरह से बाह्य विषयों से विरक्त होकर अंतर्मुखी हो जाता है एवं स्वयंमात्मा में ही आनन्द की अनुभूति करने लगता है। इस प्रकार 'यह कुण्डलिनी शक्ति आठ प्रकृतियों (पंच तत्व, मन, बुद्धि और अहंकार) में से व्याप्त होती हुई अन्त में शिव से एकाकार होती है और उन्हीं में विलीन हो जाती है।' इस प्रकार प्राण वायु एवं अपान वायु एवं नीचे की ओर स्थित रजोगुण व ऊपर स्थित सतोगुण भी वायु के वेग से उस परम शिव में मिल जाते हैं। अग्नि के तेज से गली हुई स्वर्ण धातु जिस प्रकार चहुँओर फैल जाती है, ठीक वैसे ही जाग्रत कुण्डलिनी शक्ति की ऊष्मा पाकर यह पंचतत्वों से बना भौतिक शरीर भी दिव्यशक्तिमय हो जाता है।²⁶

“तेन कुण्डलिनी सुप्ता संतप्ता सम्प्रबुध्यते।

दण्डातमुजडगीव निःश्रवस्य ऋजुतां ब्रजेत्॥” योगकुण्डलिन्युपनिषद्- 1/45.

²⁴ “प्राणस्थानं ततो वह्निः प्राणापानौ च सत्वरम्।

मिलित्वा कुण्डलीं याति प्रसुप्ता कुण्डलाकृतिः॥” योगकुण्डलिन्युपनिषद्- 1/65.

“तेनाग्निना च सन्तप्ता पवनेनैव चालिता।

प्रसार्य स्वशरीरं तु सुषुम्ना वदनान्तरे॥” योगकुण्डलिन्युपनिषद्- 1/66.

“ब्रह्मग्रन्थिं ततो भित्त्वा रजोगुणसमुद्धवम्।

सुषुम्नावदने शीघ्रं विद्युल्लेखेव संस्फुरेत्॥” योगकुण्डलिन्युपनिषद्- 1/67.

विष्णुग्रन्थिं प्रयात्युच्चैः सत्वरं हृदि संस्थिता।

ऊर्ध्वं गच्छति यच्चान्ते रुद्रग्रन्थिं तदुद्धवम्॥” योगकुण्डलिन्युपनिषद्- 1/68.

²⁵ “भ्रुवोर्मध्यं तु सम्मिद्य याति शीतांशुमण्डलम्।

अनाहताख्यं यच्चक्रं दलैः षोडशभिर्युतम्॥” योगकुण्डलिन्युपनिषद्- 1/69.

“तत्र शीतांशुसञ्जातं द्रवं शोषयति स्वयम्।

चलिते प्राणवेगेन रक्तं पित्तं रवेर्गहात्॥” योगकुण्डलिन्युपनिषद्- 1/70.

“यातेन्दुचक्रं यत्रास्ते शुद्धश्लेष्मद्रवात्मकम्।

तत्र सिक्तं ग्रसत्युष्णं कथं शीतस्वभावकम्॥” योगकुण्डलिन्युपनिषद्- 1/71.

“तथैव रभसा शुक्लं चन्द्ररूपं हि तप्यते।

ऊर्ध्वं प्रवहति क्षुब्धा तदैवं भ्रमतेतराम्॥” योगकुण्डलिन्युपनिषद्- 1/72.

²⁶ “तस्यास्वादवशाच्चित्तं बहिष्कृतं विषयेषु यत्।

तदेव परमं भुक्त्वा स्वस्थः स्वात्मरतो युवा॥” योगकुण्डलिन्युपनिषद्- 1/73.

“प्रकृत्यष्टकरूपं च स्थानं गच्छति कुण्डली।

क्रोडीकृत्य शिवं याति क्रोडीकृत्य विलीयते॥” योगकुण्डलिन्युपनिषद्- 1/74.

(ii). जाग्रत कुण्डलिनी के दिव्यप्रभाव

इस जाग्रत कुण्डलिनी शक्ति के दिव्यप्रभाव से साधक का शरीर अत्यंत पवित्र होकर, आदिभौतिक शरीर का आधिदैविक शरीर में रूपान्तरण हो जाता है। मानवीय शरीर जड़ता के भाव से परे अत्यंत चिन्मय हो जाता है। अन्य जनों की तुलना में साधक का शरीर ज्ञानमय हो जाता है। साधक 'स्व' का जानकार हो जाता है। साधक को भव-बंधनों से मुक्ति मिल जाती है। साधक काल की सीमा से परे चला जाता है। साधक को यह भौतिक जगत रस्सी में सांप की भाँति मिथ्या ही दिखाई पड़ता है।²⁷

इस प्रकार ब्रह्माण्ड और पिण्ड एवं सूक्ष्म शरीर तथा सूत्रात्मा का एकरूप होने के फलस्वरूप साधक को स्वयं की आत्मा और परमचेतना की एकरूपता का ज्ञान होता है। कुण्डलिनी शक्ति को कमल के पौधे की नाल की उपमा दी गयी है। कमलकन्द की भाँति ही यह कुण्डलिनी मूलकन्द को अपने फणा के आगे के भाग से देखकर अपनी पूँछ को मुँख में दबाकर सुषुम्ना नाड़ी के प्रवेश मार्ग या ब्रह्मरन्ध्र को ढँककर सुप्तावस्था में रहती है। इस कुण्डलिनी के जागरण हेतु एक अन्य उपाय के रूप में यहाँ पद्मासन का वर्णन किया गया है अतः पद्मासन में बैठकर गुदा भाग को सिकोड़ते हुए कुम्भक का अभ्यास करके वायु को ऊपर की ओर स्वाधिष्ठान चक्र में उपस्थित अग्नि की ओर ले जाते हैं तथा उस वायु के आघात द्वारा अग्नि को प्रज्वलित करने से सुप्तावस्था में स्थित यह कुण्डलिनी जाग उठती है तथा तीनों नाड़ियों— ब्रह्मा नाड़ी, विष्णु नाड़ी, रुद्र नाड़ी को भेदकर षट्चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार चक्र या कमल तक पहुँचती है और वहाँ स्थित शिव के साथ यह शक्ति

“इत्यधोर्ध्वरजः शुक्लं शिवे तदनु मारुतः।

प्राणापानौ समौ याति सदा, जातौ तथैव च॥” योगकुण्डलिन्युपनिषद्— 1/75.

“भूतेऽल्पे चाप्यनल्पे वा वाचके त्वतिवर्धते।

धावयत्यखिला वाता अग्निमूषाहिरण्यवत्॥” योगकुण्डलिन्युपनिषद्— 1/76.

²⁷“आधिभौतिकदेहं तु आधिदैविकविग्रहे।

देहोऽतिविमलं याति चातिवाहिकतामियात्॥” योगकुण्डलिन्युपनिषद्— 1/77.

“जाडयभावविनिर्मुक्तममलं चिन्मयात्मकम्।

तस्यातिवाहिकं मुख्यं सर्वेषां तु मदात्मकम्॥” योगकुण्डलिन्युपनिषद्— 1/78.

“जायाभवविनिर्मुक्तिः कालरूपस्य विभ्रमः।

इति तं स्वरूपा हि मती रज्जुभुजङ्गवत्॥” योगकुण्डलिन्युपनिषद्— 1/79.

“मृषैवोदेति सकलं मृषैव प्रविलीयते।

रौप्यबुद्धिः शुक्तिकायां स्त्रीपुंसोर्भ्रमतो यथा॥” योगकुण्डलिन्युपनिषद्— 1/80.

एक होकर आनन्दावस्था प्राप्त करती है। यह आनन्दावस्था ही परमानन्द मुक्ति-प्रदाता कहलाती है।²⁸

4.2.5 वराहोपनिषद्

वराहोपनिषद् कृष्णयजुर्वेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् है। इस उपनिषद् में ऋभु द्वारा भगवान् वराह से ब्रह्मविद्या का उपदेश लिया गया है। इसे पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। पहले अध्याय में तत्त्वों की संख्या, तत्त्वातीत भगवद् बुद्धि तथा उस बुद्धि के फल के बारे में वर्णन किया गया है। दूसरे अध्याय में चार प्रकार के साधनों, आत्मानुसन्धान, आत्मज्ञानी की स्थिति, आत्म स्वरूप, ज्ञानी और अज्ञानी की स्थिति वैलक्षण्य, जीवन्मुक्ति आदि विषयों का विवेचन किया गया है। तृतीय अध्याय में चिन्मात्रभाव प्राप्ति, मोक्ष आदि विषयों पर चर्चा की गयी है। चौथे अध्याय में प्रणव की सात भूमिकाएँ, अकारादि की विकृति के प्रकार, जीवन्मुक्ति के प्रकार वर्णित हैं। पाँचवे व अन्तिम अध्याय में योग संबंधित विषय एवं नाड़ियों के वर्णन के साथ ही षट्चक्र एवं कुण्डलिनी की भी व्याख्या की गयी है।

षट्चक्र एवं कुण्डलिनी

मूलाधार चक्र सहित स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपुर चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्धि चक्र, आज्ञा चक्र इत्यादि षट्चक्रों को शक्तिस्थान कहा गया है। वराहोपनिषद् के अनुसार गुदाद्वार एवं लिंगमूल के मध्य में त्रिकोणीय संरचना वाला 'मूलाधार चक्र' स्थित है जिसे बिन्दुस्वरूप शिव का प्रकाशक स्थान भी कहा गया है। इस मूलाधार चक्र में 'कुण्डलिनी' नाम की परा-शक्ति का स्थान वर्णित है। इसी स्थान से वायु,

²⁸ "पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं लिङ्गसूत्रात्मनोरपि।
स्वापाव्याकृतयोरैक्यं स्वप्रकाशचिदात्मनोः॥" योगकुण्डलिन्युपनिषद्- 1/81.
"शक्तिः कुण्डलिनी नाम बिसतन्तुनिभा शुभा।
मूलकन्दं फणाग्रेण दृष्ट्वा कमलकन्दवत्॥" योगकुण्डलिन्युपनिषद्- 1/82.
"मुखेन पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रसमन्विता।
पदमासनगतः स्वस्थो गुदमाकुञ्चय साधकः॥" योगकुण्डलिन्युपनिषद्- 1/83.
"वायुमूर्ध्वगतं कुर्वन्कुम्भकाविष्टमानसः।
वायवाघातवशादग्निः स्वाधिष्ठानगतो ज्वलन्॥" योगकुण्डलिन्युपनिषद्- 1/84.
"ज्वलनाघातपवनाघातैरुन्निद्रितोऽहिराट्।
ब्रह्मग्रन्थिं ततो भित्त्वा विष्णुग्रन्थिं भिनत्त्यतः॥" योगकुण्डलिन्युपनिषद्- 1/85.
"रुद्रग्रन्थिं च भित्त्वा कमलानि भिनत्ति षट्।
सहस्रत्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते॥" योगकुण्डलिन्युपनिषद्- 1/86.
"सैवावस्थज्ञा परा ज्ञेया सैव निर्वृत्तिकारिणी॥" योगकुण्डलिन्युपनिषद्- 1/87.

अग्नि, बिन्दु, नाद, सोऽहं मंत्र या हंस तथा मन की उत्पत्ति होती है। “कण्ठ से ऊपर मस्तिष्क तक ‘शांभव स्थान’—आत्मा का स्थान कहलाता है।”²⁹

कुण्डलिनी

वराहोपनिषद् में बारह आरों से युक्त नाड़ी चक्र की व्याख्या की गयी है तथा इस नाड़ी चक्र को ही शरीर धारण करने का आधार बताया गया है। इस नाड़ी चक्र में ‘कुण्डली’ को अवस्थित माना गया है। नाड़ी चक्र में स्थित प्रमुख नाड़ी अर्थात् सुषुम्ना नाड़ी अपने मुँह से ब्रह्मरन्ध्र को ढँके हुए है।³⁰ इस ब्रह्मरन्ध्र के मध्य भाग को ‘कुण्डली’ सदैव ढँके हुए रहती है। नाभि क्षेत्र के मध्य स्थान को ‘नाभि चक्र’ कहा गया है।³¹

4.2.6 योगशिखोपनिषद्

योगशिखोपनिषद् कृष्णयजुर्वेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् है। यह हिरण्यगर्भ तथा महादेव के मध्य संवाद के रूप में है। जिसके अंतर्गत तत्त्वज्ञान एवं योग संबंधित ज्ञान पर चर्चा मुख्य विषय है। इस उपनिषद् को कुल छह अध्यायों में विभक्त कर मोक्ष प्राप्ति के साधन स्वरूप द्विमार्गी— ज्ञान तथा योग पर मुख्य रूप से विषद् चर्चा की गयी है। इन दो मार्गों पर चलने से जीवात्मा दोषमुक्त होकर शिव स्वरूप हो जाती है। साथ ही इस उपनिषद् में योगांगों के अंतर्गत आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा चक्रों तथा नाड़ियों आदि विस्तारपूर्वक वर्णित है। इस उपनिषद् के उपदेशानुसार, साधक को सर्वप्रथम पद्मासन में बैठकर शरीर को स्थिर रखते हुए

²⁹ “गुदमेढान्तरालस्थं मूलाधारं त्रिकोणकम्।
शिवस्य बिन्दुरूपस्य स्थानं तद्धि प्रकाशकम्।।” वराहोपनिषद्— 5/50.
“यत्र कुण्डलिनी नाम परा शक्तिः प्रतिष्ठिता।
यस्मादुत्पद्यते वायुर्यस्माद्ब्रह्मिन् प्रवर्धते।।” वराहोपनिषद्— 5/51.
“यस्मादुत्पद्यते बिन्दुर्यस्मान्नादः प्रवर्धते।
यस्मादुत्पद्यते हंसो यस्मादुत्पद्यते मनः।।” वराहोपनिषद्— 5/52.
“मूलाधारादिषट्चक्रं शक्तिस्थानमुदीरितम्।
कण्ठादुपरि मूर्धान्तं शाम्भवं स्थानमुच्चयते।।” वराहोपनिषद्— 5/53.
“नाडीनामाश्रयः पिण्डो नाड्यः प्राणस्य चाश्रयः।
जीवस्य निलयः प्राणो जीवो हंसस्य चाश्रयः।।” वराहोपनिषद्— 5/54.
³⁰ “तत्रैव नाडीचक्रं तु द्वादशारं प्रतिष्ठितम्।
शरीरं ध्रियते येन वर्तते तत्र कुण्डली।।” वराहोपनिषद्— 5/22.
“ब्रह्मरन्ध्रं सुषुम्णा या बदनेन पिधाय सा।।” वराहोपनिषद्— 5/23.
³¹ “पटमध्यं तु यत्स्थानं नाभिचक्रं तदुच्चयते।
नादाधारा समाख्याता ज्वलन्ती नादरूपिणी।।” वराहोपनिषद्— 5/29.
“पररन्ध्रा सुषुम्णा च चत्वारो रत्नपूरिताः।
कुण्डल्या पिहितं शश्वद्ब्रह्मरन्ध्रस्य मध्यमम्।।” वराहोपनिषद्— 5/30.

मन को किसी स्थान विशेष पर एकाग्रचित्त कर प्रणव अर्थात् ओंकार जप करते हुए हृदय प्रदेश में दीप की शिखा की भाँति ब्रह्म का ध्यान करना चाहिए। साधक के शरीर में एक स्तम्भ रूपी रीढ़ की हड्डी, नौ दरवाजों के रूप में चक्रों, तीन खूंटों के रूप में तीन प्रमुख नाड़ियाँ तथा पंच देवताओं के रूप में पाँच प्राण उपस्थित हैं। साधक जब पापों से मुक्त हो जाता है उस समय योगसाधना के माध्यम से वह संसार के बंधनों को काँटता हुआ परब्रह्म की अनुभूति करता है।

कुण्डलिनी एवं चक्र संबंधित अवधारणा

योगशिखोपनिषद् के अनुसार सृष्टि में उपस्थित सभी प्राणियों के लिए 'देह' को सिद्धि प्रदान करने वाला कहा गया है। इस उपनिषद् में मानवीय देह को षट्चक्रों के आधार रूपी पर्दों के रूप में वर्णित किया गया है। यह छह चक्ररूपी आधार इस शरीर को घेरे हुए हैं, इस देह में कामरूपादि चार पीठ स्थित हैं। इसी देह में वेद स्वरूपी दीपक प्रकाशमान है, बिन्दु, नाद, महालिंग, विष्णु एवं लक्ष्मी रूपी अधिदेवताओं का यह देह निवासस्थान है।³²

योगशिखोपनिषद् के अनुसार इन षट्चक्रों को भलिभाँति जानकर उनका भेदन कर सुखमण्डल में प्रवेश कराना अर्थात् मनोविलय करना चाहिए।³³ इन छह चक्रों का भेदन करने हेतु साधक को चाहिए कि वह प्रत्येक चक्र के अलंकारभूत जो अधिदेव या मूर्तियाँ हैं जैसे आधार प्रदेश के पश्चिम भाग में ब्रह्मादि उनका ध्यान करते हुए इन षट्चक्रों का भेदन कर ब्रह्मरन्ध्र या सुषुम्नारन्ध्र स्थित प्राण को सहस्रार चक्र तक पहुँचाकर उज्ज्वल तुरीय अवस्था को प्राप्त होता है। इस प्रकार चक्रों के भेदन के फलस्वरूप साधक परमगति को प्राप्त करता है।³⁴

³² "पुनर्योगं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्मस्वरूपकम्।
समाहितमना भूत्वा शृणु ब्रह्मन् यथाक्रमम्॥" योगशिखोपनिषत्- 5/1.

"दशद्वारपुरं देहं दशनाडीमहापथम्।
दशभिर्वायुभिर्व्याप्तं दशेन्द्रियपरिच्छदम्॥" योगशिखोपनिषत्- 5/2.

"षडधारापवरकं षडन्वयमहावनम्।
चतुष्पीठसमाकीर्णं चतुराम्नायदीपकम्॥ योगशिखोपनिषत्- 5/3.

"बिन्दुनादमहालिंगविष्णुलक्ष्मीनिकेतनम्।
देहं विष्णुवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम्॥" योगशिखोपनिषत्- 5/4.

³³ "षट् चक्राणि परिज्ञात्वा प्रविशेत् सुखमण्डलम्।
प्रविशेद्वायुमाकृष्य तथैवोर्ध्वं नियोजयेत्॥" योगशिखोपनिषत्- 6/74.

³⁴ "आधारपश्चिमे भागे मूर्तिस्तित्ति संज्ञया।
षट्चक्राणि च निर्भिद्य ब्रह्मरन्धादबहिर्गतम्॥" योगशिखोपनिषत्- 6/33.
"वामदक्षे निरुद्धन्ति प्रविशन्ति सुषुम्नया।

मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी की स्थिति

शरीरस्थ गुदाद्वार एवं शिश्न के मध्य स्थित त्रिकोण आकृति वाले चक्र को 'मूलाधार चक्र' कहते हैं। इस स्थान को जीवस्वरूप लिये हुए शिव का स्थान कहा गया है। इसी मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी नामक परा-शक्ति को उच्चपदस्थ माना गया है। इस मूलाधार प्रदेश से ही प्राणवायु, अग्नि या तेज, बिन्दु एवं नाद की उत्पत्ति होती है।³⁵

योगियों द्वारा कुण्डलिनी जागरण के माध्यम से कन्दस्थान में स्थित यह कुण्डली जब कन्द से अवरोहण करते हुए ऊपर की ओर जाती है उस समय यह कुण्डलिनी शक्ति मुक्तिप्रदायक होती है। किंतु जब यह कुण्डलिनी शक्ति सुप्तावस्था में अपने कन्दस्थान में ही पड़ी रहती है तब यही कुण्डलिनी मूढ़ व्यक्तियों के लिए भवबंधन का कारण बनती है तथा जो इस सत्य को जान लेता है, वही योगवित् कहलाता है।³⁶

4.2.7 योगतत्त्वोपनिषद्—

योगतत्त्वोपनिषद् कृष्णयजुर्वेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् है। यह ब्रह्म पितामह एवं श्रीहरि विष्णु के मध्य योगांग विषय पर आधारित चर्चा रूपी उपदेश है। यह उपनिषद् मुख्य रूप से योग के भिन्न-भिन्न प्रकारों एवं उपादानों से संबंधित व्याख्यान पर केंद्रित है तथा कैवल्यपद की प्राप्ति के श्रेष्ठतम साधन के रूप में योगमार्ग का वर्णन करता है। इस उपनिषद् में योग के चार प्रकार— मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग, राजयोग तथा उनकी चार अवस्थाओं— आरंभावस्था, घटावस्था, परिचयावस्था और निष्पत्ति अवस्था का वर्णन है। साथ ही यहाँ योग साधना हेतु आवश्यक निर्देशों के अंतर्गत आहार-विहार, स्थान एवं दिनचर्या इत्यादि की भी चर्चा

ब्रह्मरन्ध्रं प्रविश्यन्ति ते यान्ति परमां गतिम्।।" योगशिखोपनिषद्— 6/34.

³⁵ "देहं शिवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम्।

गुदमेढ्रान्तरालस्थं मूलाधारं त्रिकोणकम्।।" योगशिखोपनिषद्— 1/168, 5/5.

"शिवस्य जीवरूपस्य स्थानं तद्धि प्रचक्षते।

यत्र कुण्डलिनी नाम परा शक्तिः प्रतिष्ठिता।।" योगशिखोपनिषद्— 1/169, 5/6.

"यस्मादुत्पद्यते वायुर्यस्माद्बहिः प्रवर्तते।

यसमादुत्पद्यते बिन्दुर्यस्मात्त्रादः प्रवर्तते।।" योगशिखोपनिषद्— 1/170, 5/7.

³⁶ "कन्दोर्ध्वं कुण्डली भाक्तिर्मुक्तिरूपाथ योगिनाम्।

बन्धनाय च मूढानां यस्तां वेत्ति स योगवित्।।" योगशिखोपनिषद्— 6/55.

की गयी है। योग साधना के अंतिम लक्ष्य के रूप में सिद्धियों की निःसंदिग्धता बताते हुए आत्मतत्त्व के साक्षात्कार को ही परम लक्ष्य बताया गया है। “यह सूचित करते हुए कहा गया है कि निर्वात दीपशिखा की तरह अन्तःकरण में आत्मतत्त्व का साक्षात्कार करके संसार चक्र से मुक्त हो जाना ही परम लक्ष्य है। सभी उपनिषदों की तरह इस उपनिषद् की फलश्रुति तो यही है।”

कुण्डलिनी

परिचय अवस्था की प्राप्ति हेतु योगतत्त्वोपनिषद् में कुण्डलिनी शक्ति का वर्णन किया गया है। योग की चार अवस्थाओं के अंतर्गत चौथी अवस्था जिसे ‘परिचयावस्था’ कहा जाता है, इस अवस्था को प्राप्त करने हेतु साधक को निरन्तर अभ्यास करना चाहिए। “अग्नि तत्त्व के साथ कुण्डलिनी शक्ति की भावना करके, निरोधरहित होकर सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश होता है, तब यह परिचय की अवस्था होती है।”³⁷

4.3 शुक्लयजुर्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों में कुण्डलिनी संबंधित अवधारणा

शुक्लयजुर्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों में ‘त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्’, ‘मण्डलब्राह्मणोपनिषद्’ एवं ‘अद्वयतारकोपनिषद्’ में कुण्डलिनी को समझाया गया है। शुक्लयजुर्वेदीय शाखा के इन योगोपनिषदों में वर्णित कुण्डलिनी संप्रत्यय को यहाँ निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत विस्तृत रूप से समझाया गया है—

4.3.1 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् शुक्लयजुर्वेद शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् एक लघु उपनिषद् है। यह दो भागों में विभक्त है— एक ब्राह्मण भाग और दूसरा मंत्र भाग तथा जिसमें कुल 165 मंत्रों का वर्णन है। त्रिशिखी नाम के ब्राह्मण और भगवान् आदित्य के बीच आत्मा और ब्रह्म विषयक प्रश्नोत्तर से इस उपनिषद् का आरंभ होता है। इस उपनिषद् में आध्यात्मिक वास्तविकता अर्थात् ब्राह्मण और आत्मा की गैर-सापेक्ष प्रकृति

³⁷ “वायुः परिचितो यत्नादग्निना सह कुण्डलीम्।
भावयित्वा सुषुम्नायां प्रविशेदनिरोधतः॥” योगतत्त्वोपनिषद्— 82.

पर चर्चा की गयी है। आत्मज्ञान के साधन के रूप में एवं ब्रह्मप्राप्ति के उपायभूत योग के आठ अंगों— यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का वर्णन किया गया है। यह योगाभ्यास के माध्यम से गैर-द्वैतवादी वेदांत के विचारों को प्रस्तुत करता है। अतः इस प्रकार इस उपनिषद् की अधिकांश चर्चा योग पर केंद्रित है। अन्य विषयों में शिवतत्त्व की सर्वव्यापकता, ब्रह्म का जगत्कारणत्व, एक का बहुधा होना, ब्रह्म से लेकर पञ्चीकरण तक की सृष्टि का वर्णन, चार अवस्थाएँ, दक्षिण—उत्तर पथ, ज्ञान द्वारा सद्योमुक्ति, ज्ञानोपायरूप योग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, अष्टांगयोग, हठयोग, अग्निमण्डल, नाड़ीचक्र में जीव का भ्रमण, कुण्डलिनी स्थान नाड़ीकेन्द्र की स्थिति, नाड़ी विचरण, योगाभ्यास का स्थान और विधि, षण्मुखीमुद्रा, मनोजय, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और उनके भेदोपभेद आदि अनेकानेक विषयों का विशद वर्णन किया गया है।

(i). कुण्डलिनी का स्थान एवं कार्य³⁸

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार— “तेजस तत्त्व प्रधान सुषुम्ना के साथ मानसिक रश्मियों के संघर्षण से उत्पन्न विद्युत जैसी ज्योति का आलंकारिक रूप ही ‘कुण्डलिनी’ है।” सर्पाकार कुण्डलिनी शक्ति को गुदा एवं लिंगमूल के मध्य सीवनी स्थान पर स्थित योनिस्थान में सुप्तावस्था में माना गया है। नाभि के चारों तरफ तथा ऊपर व नीचे स्थित नाड़ीचक्र के ऊपर कुण्डलिनी को स्थित माना गया है। यह कुण्डलिनी शक्ति नाड़ीचक्र के मध्य में कन्द के ऊपर स्थित सुषुम्ना नाड़ी या ब्रह्मरन्ध्र के मुँह पर सर्प की भाँति आठ लपेटे मारकर सुप्तावस्था में रहती है। गीता के अनुसार— इन आठ कुण्डल या लपेटों की तुलना प्रकृति के आठ प्रकार के स्वरूपों से की गई हैं— प्रकृति के आठ प्रकार क्रमशः— पंच महाभूत व बुद्धि, अहंकार तथा मन हैं। उसी प्रकार कुण्डलिनी शक्ति भी आठ लपेटे मारकर सुप्तावस्था में रहती है।³⁹

³⁸“तस्योर्ध्वे कुण्डलीस्थानं नाभेस्तिर्यगोर्ध्वतः॥” त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्— 62.

“अष्टप्रकृतिरूपा सा चाष्टधा कुण्डलीकृता।

यथावत् वायुसंचारं ज्वलनादि च नित्यशः॥” त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्— 63.

“परितः कन्दपार्श्वे तु निरुध्यैव सदा स्थिता।

मुखेनैव समावेष्टय ब्रह्मरन्ध्रमुखं तथा॥” त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्— 64.

“योगकालेन मरुता साग्निना बोधिता सती।

स्फुरिता हृदयाकाशे नागरूपा महोज्ज्वला॥” त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्— 65.

³⁹ भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च। अहंकार इतीयं में प्रकृतिरष्टधा॥ श्रीमद्भगवद् गीता— 7/4.

कुण्डलिनी शक्ति संपूर्ण संसार की संचालक होने के कारण यह 'महाकुण्डलिनी' कहलाती है, जिसे व्यक्त नहीं किया जा सकता है अर्थात् यह अव्यक्त है। किंतु जीवात्मा का संचालन करने वाली इस कुण्डलिनी शक्ति को व्यक्त कहा गया है। कुण्डलिनी शक्ति जब जाग्रत होती है तो सर्वप्रथम वेग उत्पन्न करती है। इस वेग से उत्पन्न होने वाले प्रथम विस्फोट को 'नाद' कहा जाता है। यह नाद प्रकाशमान होता है। यह उत्पन्न नाद ही 'ओंकार' है जिसे 'शब्द ब्रह्म' भी कहा गया है। इस स्थान पर मन को स्थिर करने के उपरान्त शरीर में नाद सुनाई देते हैं। यह नाद सर्वप्रथम दाँये कान में तत्पश्चात् लगातार अभ्यासरत रहने से हृदय, मस्तिष्क एवं संपूर्ण शरीर में अनुभव होने लगता है।

मानवीय शरीर के मस्तिष्क क्षेत्र में सहस्रार चक्र का स्थान है। चैतन्य जीवात्मा को सहस्रार चक्र से अनाहत चक्र में आने पर ही जीवन में चैतन्यता आती है। सहस्रार चक्र में जो अव्यक्त नाद होता है वही आज्ञाचक्र में ओंकार या प्रणव के रूप में व्यक्त होता है। आज्ञाचक्र का स्थान भ्रूमध्य में वर्णित है। सहस्रार चक्र में इस ओंकार से उत्पन्न होने वाली 50 मातृकाओं की अव्यक्त स्थिति का स्थान है। आज्ञाचक्र के निम्न क्रम में क्रमशः विशुद्धि चक्र, अनाहत चक्र, मणिपुर चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र एवं मूलाधार चक्र में विभिन्न वर्णों की उत्पत्ति के स्थान है। जिस प्रकार प्रकाश की किरणों के स्पर्शमात्र से कमल के फूल खिल जाते हैं उसी प्रकार मन की रश्मियों के द्वारा शरीरस्थ आभ्यान्तरिक केंद्र या चक्र प्रकाशित होकर दृश्यगत होने लगते हैं, कदाचित् इसी आधार पर इन केंद्रों या चक्रों को कमल की संज्ञा दी गयी है।

(ii). कुण्डलिनी शक्ति का पथ

कुण्डलिनी शक्ति के मार्ग का वर्णन करते हुए यहाँ नासिका के दायी तथा बायीं ओर क्रमशः पिंगला एवं इडा नाड़ी का स्थान बताया गया है जिसके माध्यम से योगी एवं सामान्यजन श्वसन क्रिया को संपन्न करते हैं। इन दोनों नाड़ियों को कुण्डलिनी शक्ति के दो कुण्डलों की उपमा दी गयी है तथा यह माना गया है कि इन कुण्डलों के कारण ही इसे कुण्डलिनी कहा गया है। इन दोनों नाड़ियों के मध्य

में सुषुम्ना नाड़ी तथा इस सुषुम्ना के अंदर अनेकों सूक्ष्म नाड़ियाँ विद्यमान रहती हैं जिनमें प्रमुख चित्रिणी नाड़ी को माना गया है। इस चित्रिणी नाड़ी को ही कुण्डलिनी शक्ति का पथ कहा गया है।

(iii). कुण्डलिनी जागरण के उपाय

योगाभ्यास के अंतर्गत प्राणायाम के अभ्यास के फलस्वरूप योगी द्वारा प्राणवायु के माध्यम से शरीरस्थ अग्नि को प्रज्वलित करता है। इसकी गर्मी के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है। सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से आगे की ओर बढ़ते हुए सहस्रार चक्र की तरफ ऊर्ध्वरोहण करती है। कुण्डलिनी के जाग्रत कर योगी प्राण वायु तथा अपान वायु का मिलन कराते हैं।

इस सुप्तावस्था में स्थित कुण्डलिनी शक्ति को यौगिक क्रियाओं के माध्यम से जाग्रत कर शीर्ष प्रदेश में स्थित ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाने की प्रक्रिया को 'कुण्डलिनी योग' कहते हैं। योगाभ्यासी, शक्तिचालिनी क्रिया के निरन्तर अभ्यास के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर सुषुम्ना मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचाता है।

(iv). कुण्डलिनी के अन्य नाम

'शक्ति, अरुन्धती, ईश्वरी, बालविधवा या बालरण्डा आदि अनेकों नाम से कुण्डलिनी को जाना जाता है'⁴⁰

4.3.2 मण्डलब्राह्मणोपनिषद्

शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध इस उपनिषद् में पाँच ब्राह्मण तथा प्रत्येक ब्राह्मण के अन्य खण्डों के सहित कुल 88 मंत्रों का संकलन है। जिसमें ब्राह्मण 1 में कुल 4 खण्ड तथा कुल 35 मंत्रों के माध्यम से तत्त्वज्ञान को प्राप्त करने के लिए अष्टांग योग, आत्मनिष्ठता इत्यादि का निरूपण किया गया है। इसी प्रकार ब्राह्मण 2 में कुल 5 खण्ड तथा कुल 31 मंत्रों के माध्यम से सर्वसाधारण ज्योति का आत्मरूप में वर्णन के साथ ही इसी प्रकार अन्य कई विषयों का विस्तृत वर्णन किया गया है। ब्राह्मण 3

⁴⁰ विद्यालंकार सुभाष, योग उपनिषदः (2018), (20 योग उपनिषदों का संस्कृत मूल एवं विद्यालंकृता हिन्दी व्याख्या तथा श्लोकानुक्रमणिका सहित) प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली पृष्ठ संख्या 147.

में कुल 2 खण्ड तथा कुल 8 मंत्रों में परमात्मा के साक्षात्कार से उन्मनी-भाव को प्राप्त करना, सांसारिक बन्धनों से मुक्ति आदि विषयों को प्रतिपादित किया गया है। ब्राह्मण 4 में कुल 1 खण्ड तथा कुल 5 मंत्रों के माध्यम से व्योम पंचक का ज्ञान, फल तथा राजयोग का सार वर्णित है। ब्राह्मण 5 में कुल 1 खण्ड तथा कुल 9 मंत्रों में मन का परमात्मा में लय करने का अभ्यास इत्यादि विषयों पर चर्चा की गई है। ऋषि याज्ञवल्क्य और भगवान् सूर्यनारायण के मध्य प्रश्नोत्तर रूप में आत्मतत्त्व के बारे में विस्तृत विवेचन ही इस उपनिषद् का केंद्रीय विषय है।

साथ ही ब्राह्मण 1 के खण्ड 2 में मंत्र 6 के अंतर्गत सुषुम्ना नाड़ी, चक्र एवं कुण्डलिनी शक्ति संबंधित अवधारणा दी गयी है। इसी प्रकार ब्राह्मण 1 के खण्ड 4 में मंत्र 1 के माध्यम से सहस्रार चक्र एवं ब्राह्मण 4 के खण्ड 1 में मंत्र 5 के अंतर्गत नवचक्रों की महिमा की व्याख्या की गयी है।

कुण्डलिनी शक्ति संबंधित अवधारणा

साधक के शरीर के मध्य में सूर्य रूपिणी सुषुम्ना नाड़ी स्थित है जिसे सूर्य समान तेजोमय आभायुक्त ब्रह्मनाड़ी कहा गया है। यह सुषुम्ना नाड़ी मूलाधार चक्र से ब्रह्मरन्ध्र अर्थात् सहस्रार चक्र तक गमन करती है। इस सुषुम्ना नाड़ी के मध्य में बिजली स्वरूप कांति सदृश तेजोमय कोटि गुनी मृणाल के तंतु के समान अत्यन्त सूक्ष्म आकृतिमय कुण्डलिनी विद्यमान है। इस कुण्डलिनी शक्ति के ज्ञानमात्र से साधक के तमोगुण नष्ट हो जाते हैं तथा इस कुण्डलिनी शक्ति के दर्शनमात्र से साधक सभी पापों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है।⁴¹

⁴¹ “मूलाधारादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं सुषुम्ना सूर्याभा ।
तन्मध्ये तडित्कोटिसमा मृणालतन्तुसूक्ष्मा कुण्डलिनी ।
तत्र तमोनिवृत्तिः । तद्दर्शनात्सर्वपापनिवृत्तिः ॥” मण्डलब्राह्मणोपनिषद्— ब्राह्मण 1: खण्ड 2: मंत्र 6.

4.3.3 अद्वयतारकोपनिषद्

अद्वयतारकोपनिषद्, शुक्लयजुर्वेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् हैं। इस उपनिषद् में कुल 19 मंत्रों के माध्यम से उपदेश देते हुए सांसारिक भव-बंधन तथा गर्भ-वृद्धावस्था-मृत्यु रूपी भयावह डर से मानव मात्र को तारने वाले 'तारक' के रूप में ब्रह्म को सर्वेसर्वा माना गया है। इसमें केन्द्रीय विषय के रूप में जीव द्वारा ईष्टदेव को मायारूपी मानकर 'नेति-नेति' कहकर त्याग करते हुए अवशिष्ट के रूप में बचे हुए अद्वयब्रह्म को प्राप्त करने हेतु, आन्तर-बाह्य-मध्यम इस प्रकार तीन लक्ष्यों का अनुसन्धान करके, शरीरस्थ मूलाधार चक्र से ब्रह्मरन्ध्र तक जाती हुई सुषुम्ना नाड़ी में स्थित अत्यन्त सूक्ष्म एवं प्रकाशवान कुण्डलिनी शक्ति विद्यमान है, उसे मन के माध्यम से देखा जाना चाहिए। ऐसा करने पर मानव मुक्ति को प्राप्त करता है। अतः इस प्रकार गुरु के उपदेश के अनुसार इन तीनों लक्ष्यों का अनुसंधान करने से मनुष्य परमब्रह्म, सर्वश्रेष्ठ विद्या, परमगति इत्यादि सभी कुछ प्राप्त कर लेता है।

कुण्डलिनी शक्ति संबंधित अवधारणा

योगमार्गी साधक के शरीर के मध्य में सूर्यरूपिणी सुषुम्ना नाड़ी स्थित है जिसे पूर्णचन्द्र समान तेजोमय ब्रह्मनाड़ी कहा गया है। यह सुषुम्ना नाड़ी मूलाधार चक्र से ब्रह्मरन्ध्र अर्थात् सहस्रार चक्र तक गमन करती है। इस सुषुम्ना नाड़ी के मध्य में बिजली स्वरूप कांति सदृश तेजोमय एवं मृणाल के सूत्र के समान अत्यन्त सूक्ष्म आकृतिमय कुण्डलिनी शक्ति विद्यमान रहती है। इस कुण्डलिनी शक्ति का मनोदर्शन मात्र करने पर साधक सभी पापों से मुक्ति प्राप्त कर मोक्षाधिकारी बन जाता है।⁴²

⁴² "देहमध्ये ब्रह्मनाडी सुषुम्ना सूर्यरूपिणी पूर्णचन्द्राभा वर्तते। सा तु मूलाधारादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रगामिनी भवति। तन्मध्ये तडित्कोटिसमानकान्त्या मृणालसूत्रवत्सूक्ष्माङ्गी कुण्डलिनीति प्रसिद्धास्ति। तां दृष्ट्वा मनसैव नरः सर्वपापविनाशद्वारा मुक्तो भवति। फालार्ध्वगललाटविशेषमण्डले निरन्तरं तेजस्तारकयोगविस्फुरणेन पश्यति चेत्सिद्धो भवति। तर्जन्यग्रोन्मीलितकर्णरन्ध्रद्वये तत्र फूटकारशब्दो जायते। तत्र स्थिते मनसि चक्षुर्मध्यगतनीलज्योतिःस्थलं विलोक्यान्तर्दृष्ट्या निरतिशयसुखं प्राप्नोति। एवं हृदये पश्यति। एवमन्तर्लक्ष्यलक्षणं मुमुक्षुभिरुपास्यम्।।" अद्वयतारकोपनिषद्-5.

4.4 सामवेदीय शाखा के योगोपनिषदों में कुण्डलिनी संबंधित अवधारणा

कुण्डलिनी की व्याख्या सामवेदीय शाखा के योगोपनिषदों के अंतर्गत वर्णित 'दर्शनोपनिषद् (जबालदर्शनोपनिषद्)' एवं 'योगचूडामण्युपनिषद्' में की गयी है। अतएव दर्शनोपनिषद् एवं योगचूडामण्युपनिषद् के अनुरूप कुण्डलिनी का वर्णन इस प्रकार है—

4.4.1 दर्शनोपनिषद् या जाबालदर्शनोपनिषद्

'दर्शनोपनिषद्' को 'जाबालदर्शनोपनिषद्' नाम से भी जाना जाता है। यह उपनिषद् सामवेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् है। दर्शनोपनिषद् में कुल 224 मंत्र सहित दस खण्ड है। यह भगवान् दत्तात्रेय एवं मुनिश्रेष्ठ सांकृति के मध्य अष्टांग योग पर आधारित प्रश्नोत्तरी के रूप में संवाद है। इस दर्शन के प्रथम खण्ड में कुल 25 मंत्रों के रूप में अष्टांग योग, द्वितीय खण्ड में कुल 16 मंत्रों के द्वारा यम, तृतीय खण्ड में कुल 13 मंत्रों के द्वारा नियम, चतुर्थ खण्ड में कुल 63 मंत्रों के द्वारा नाड़ियाँ एवं आत्म ज्ञान की महिमा, पंचम खण्ड में कुल 14 मंत्रों के द्वारा नाड़ीशुद्धि व आत्मशुद्धि प्रक्रिया, छठवें खण्ड में कुल 51 मंत्रों के द्वारा प्राणायाम, सातवें खण्ड में कुल 14 मंत्रों के द्वारा प्रत्याहार तथा उसके प्रकार आठवें खण्ड में कुल 9 मंत्रों के द्वारा धारणा, नौवें खण्ड में कुल 6 मंत्रों के द्वारा ध्यान एवं दसवें व अंतिम खण्ड में कुल 13 मंत्रों के द्वारा समाधि की विस्तृत विवेचना की गयी है। इस प्रकार यह उपनिषद् पूर्णतः योगपरक है।

दर्शनोपनिषद् के चतुर्थ खण्ड में नाड़ियों की विस्तृत विवेचना के साथ ही मंत्र 2 से 12 तक चक्रों एवं कुण्डलिनी की अवधारणा को भी वर्णित किया गया है। इसी चतुर्थ खण्ड में मंत्र 48—53 के माध्यम से चक्रों से संबंधित प्रमुख तीर्थस्थान भी कहे गये हैं तथा खण्ड सात में मंत्र 6—14 के द्वारा प्रत्याहार हेतु क्षेत्र विशेष के रूप में कुण्डलिनी एवं चक्रों की चर्चा की गयी है।

प्रत्याहार हेतु क्षेत्र विशेष के रूप में चक्रों एवं कुण्डलिनी की चर्चा

दर्शनोपनिषद् के अनुसार स्थान विशेष से वायु को खींचकर अन्य दूसरे स्थान में रोककर रखना भी प्रत्याहार कहलाता है। प्रत्याहार के अभ्यास हेतु स्थान विशेष के रूप में चक्रों एवं कुण्डलिनी का वर्णन है— सर्वप्रथम दाँतों में मूलभाग से वायु को खींचकर उस वायु को कण्ठ प्रदेश में रोके रखना, कण्ठ प्रदेश से छाती के मध्य में, छाती प्रदेश से वायु को खींचकर मूलाधार में रोकना चाहिए। तत्पश्चात् नाभिप्रदेश से वायु को खींचकर कुण्डलिनी में रोककर रखा जाए, फिर पुनः कुण्डलिनी क्षेत्र से वायु को खींचकर मूलाधार प्रदेश में रोकना चाहिए, उसके बाद गुदास्थान में से वायु को खींचकर कमर के दोनों ओर दोनों भुजाओं में, मध्यभाग में, दोनों घुटनों में, जंघाओं में, पाँव के अँगूठों में वायु को रोका जाये तब इस वायुनिरोध को भी प्रत्याहार कहा जाता है। इस प्रकार वायुनिरोध के माध्यम से प्रत्याहार का अभ्यासी सांसारिक कष्टों एवं रोगों से मुक्ति पा जाता है।⁴³

कन्दयोनि एवं कुण्डलिनी स्थान

शिव संहिता के समान ही दर्शनोपनिषद् में कन्दस्थान एवं कुण्डलिनी का वर्णन किया गया है जिसके अनुसार गुदाक्षेत्र से दो अंगुली ऊपर एवं लिंगमूल से दो अंगुली नीचे तथा इन दोनों के मध्य में स्थित मूलाधार से नौ अंगुली की दूरी पर कन्द स्थान है, ऐसा मुनियों का मत है तथा योगियों के मतानुसार मूलाधार से नौ अंगुली की दूरी के मध्य में नाभिस्थान माना गया है। इस कन्द के मध्य में आने वाली नाड़ी को सुषुम्ना नाड़ी कहा गया है। वेदान्तज्ञों के अनुसार यही 'ब्रह्मनाड़ी' कहलाती है। इस सुषुम्ना नाड़ी को चारों तरफ से लगभग 72,000 नाड़ियाँ घेरे हुए हैं। इन सभी में केवल 14 नाड़ियों को प्रमुख माना गया है तथा इनमें से भी केवल तीन नाड़ियाँ ही प्रमुख हैं। इन तीन नाड़ियों में भी एकमात्र सर्वश्रेष्ठ नाड़ी सुषुम्ना ही मानी

⁴³ "दन्तमूलात्तथा कण्ठे कण्ठादुरसि मारुतम्।
उरोदेशात्समाकृष्य नाभिदेशे निरोधयेत्॥" दर्शनोपनिषद्—खण्ड: 7/6.
"नाभिदेशात्समाकृष्य कुण्डल्यां तु निरोधयेत्।
कुण्डलीदेशतो विद्वान्मूलाधारे निरोधयेत्॥" दर्शनोपनिषद्—खण्ड: 7/7.
"अथापानात्कटिद्वन्द्वे तथोरौ च सुमध्यमे।
तस्माज्जानुद्वये जडधे पादादङ्गुष्ठे निरोधयेत्॥" दर्शनोपनिषद्—खण्ड: 7/8.
"प्रत्याहारोऽयमुक्तस्तु प्रत्याहारस्मरैः पुरा।
एवमभ्यासयुक्तस्तु पुरुषस्सय महात्मनः॥" दर्शनोपनिषद्—खण्ड: 7/9.
"सर्वपापानि नश्यन्ति भवरोगश्च सुव्रत।
नासाभ्यां वायुमाकृष्य निश्चलः स्वस्तिकासनः॥" दर्शनोपनिषद्—खण्ड: 7/10.

गयी है जो शरीर के पृष्ठभाग के मध्य में स्थित रीढ़ की हड्डी में से होते हुए मस्तिष्क तक जाती है। नाभिकन्द के नीचे दो अंगुली जितना कुण्डलिनी स्थान है। यह कुण्डलिनी आठ प्रकृतिरूप वाली है। इन आठ प्रकृतिरूप से तात्पर्य— पंच तत्व, मन, बुद्धि एवं अहंकार से है। यह कुण्डलिनी प्राण तथा अपान वायु की चेष्टाओं के संतुलन का कार्य करती है तथा अन्न एवं जल इत्यादि को कन्दस्थान के चहुँ ओर रोकने का कार्य करती है।⁴⁴

4.4.2 योगचूड़ामण्युपनिषद्/योगचूड़ामणि उपनिषद्

योगचूड़ामण्युपनिषद् सामवेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् है। इसमें योग साधना से आत्म-शक्ति जगाने की प्रक्रिया का वर्णन केन्द्र विषय है। कुल 121 मंत्रों के संकलन के माध्यम से इस उपनिषद् की शुरुआत में सर्वप्रथम योग के छः अंगों आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का वर्णन किया गया है। तदुपरान्त योग में मिलने वाली सिद्धि के लिए आवश्यक देहतत्त्व का ज्ञान, मूलाधार चक्र (आधार), स्वाधिष्ठान चक्र, आदि चक्रों का ज्ञान, योनि स्थान (कुण्डलिनी) में परम ज्योति के दर्शन, नाड़ीचक्र, नाड़ी स्थान, नाड़ियों में संचरित प्राणवायु और उनकी क्रियाएं प्राणों के साथ जीव की गतिमयता, अजपा-गायत्री, कुण्डलिनी द्वारा मोक्ष द्वार का भेदन करना तीन बन्ध: मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध, तथा उड्डियान बन्ध, खेचरी मुद्रा, वज्रोली आदि, विशेष योग साधना के लक्षण, महामुद्रा का स्वरूप, प्रणव (ओंकार) जप की प्रक्रिया, प्रणव एवं ब्रह्म की एकरूपता, प्रणव एवं हंस साधना, कैवल्यबोध, आत्मज्ञान का प्रकाशक प्रणव जप, प्रणव मन्त्रानुष्ठान के साधक के लिए प्राणजय आवश्यक, नाड़ी शुद्धि से प्राणायाम सिद्धि, योगांगों में से प्रत्येक के अलग-अलग फल

⁴⁴ "गुदात्तु द्वयड.गुलादूर्ध्व मेढात्तु द्वयड.गुलादधः।।" दर्शनोपनिषद्-खण्ड: 4/2.

"देहमध्यं मुनिप्रोक्तमनुजानीहि सांकृते।

कन्दस्थानं मुनिश्रेष्ठ मूलाधारान्नवाड.गुलम्।।" दर्शनोपनिषद्-खण्ड: 4/3.

"तन्मध्ये नाभिरित्युक्तं योगज्ञैर्मुनिपुड.गव।

कन्दमध्यस्थिता नाडी सुषुम्नेति प्रकीर्तिता।।" दर्शनोपनिषद्-खण्ड: 4/5.

"तिष्ठन्ति परितस्तस्या नाडयो मुनिपुड.गव।

द्विसप्ततिसहस्राणि तासां मुख्याश्चतुर्दश।।" दर्शनोपनिषद्-खण्ड: 4/6.

"आसां मुख्यतमास्तिस्त्रस्तिसृष्वेकोत्तमोत्तमा।

ब्रह्मनाडीति सा प्रोक्ता मुने वेदान्तवेदभिः।।" दर्शनोपनिषद्-खण्ड: 4/9.

"पृष्ठमध्यस्थितेनास्थना वीणादण्डेन सुव्रत।

सह मस्तकपर्यन्तं सुषुम्ना सुप्रतिष्ठिता।।" दर्शनोपनिषद्-खण्ड: 4/10.

"नाभिकन्दाधः स्थानं कुण्डल्या द्वयड.गुल मुने।

अष्टप्रकृतिरूपा सा कुण्डली मुनिसत्तम।।" दर्शनोपनिषद्-खण्ड: 4/11.

यथावद्वायुचेष्टां च जलान्नादीनि नित्यशः।

परितः कन्दपार्श्वेषु निरुध्यैव सदा स्थिता।।" दर्शनोपनिषद्-खण्ड: 4/12.

और उनकी तारतम्यता, षण्मुखी मुद्रा के अभ्यास से नादभिव्यक्ति प्राणायाम का अभ्यास सर्वरोग निवारक प्राण के निरोधाभ्यास में इन्द्रियों का प्रत्याहार आवश्यक इत्यादि अनेक विषयों का बड़ा विशद विवेचन किया गया है। निःसन्देह इस उपनिषद् के अनुसार साधना के मार्ग पर चलकर साधक योग के क्षेत्र में पूजनीय हो सकता है।

(i). योगसिद्धि के लिए आवश्यक 'मूलाधारादिचक्रज्ञान' एवं कुण्डलिनी का वर्णन

योगचूडामण्युपनिषद् के अनुसार— जो साधक अपने शरीरस्थ स्थित छह चक्रों, सोलह आधारों, तीन प्रकार के वर्णित लक्ष्यों एवं पाँच आकाशों को भलीभाँति नहीं जानता, उस साधक को योग के मार्ग में सिद्धि भला कैसे प्राप्त हो सकती है?⁴⁵ इसी प्रश्न के समाधान हेतु इस उपनिषद् में सर्वप्रथम शरीरस्थ षट्चक्रों के साथ कुण्डलिनी शक्ति की व्याख्या⁴⁶ की गयी है।

(क) मूलाधार चक्र एवं कुण्डलिनी

मानवीय शरीरस्थ छह चक्रों में प्रथम तथा आधार या गुदा प्रदेश में स्थित चार—दलीय पद्म 'मूलाधार चक्र' है जिसे अन्य नाम 'आधार चक्र' से भी जाना जाता है तथा इसे 'काम' भी कहा गया है। सिद्ध पुरुषों ने इस काम नामक पद्म के मध्य में पश्चिम दिशा की ओर मुख किये हुए वन्दनीय महालिंग को स्थित बताया है। मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र के मध्य योनिस्थान है। जिसे 'कुण्डलिनी' भी कहा गया है। इस कुण्डलिनी को ही सृष्टि की उत्पत्ति का कारण कहा गया है, इसी कारण से यह 'कामरूप' भी कहलाती है। गुदाप्रदेश में 'अपान' वायु स्थित होती है।⁴⁷

⁴⁵ "षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।।" योगचूडामण्युपनिषद्— 3.

"स्वदेहे यो न जानाति तस्य सिद्धिः कथं भवेत्।

चतुर्दलं स्यादाधारं स्वाधिष्ठानं च षड्दलम्।।" योगचूडामण्युपनिषद्— 4.

"नाभौ दशदलं पद्मं हृदये द्वादशारकम्।

षोडशारं विशुद्धाख्यं भूमध्ये द्विदलं तथा।।" योगचूडामण्युपनिषद्— 5.

⁴⁶ "हृदि प्राणः स्थितो नित्यमपानो गुदमण्डले।।" योगचूडामण्युपनिषद्—23.

स्मानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यगः।

व्यानः सर्वशरीरे तु प्रधानाः पञ्च वायवः।।" योगचूडामण्युपनिषद्—24.

⁴⁷ "सहस्रत्रदलसंख्यातं ब्रह्मरन्ध्रे महापथि।

आधारं प्रथमं चक्रं स्वाधिष्ठानं द्वितीयकम्।।" योगचूडामण्युपनिषद्—6.

"योनिस्थानं द्वयोर्मध्ये कामरूपं निगद्यते।

कामाख्यं तु गुदस्थाने पङ्कजं तु चतुर्दलम्।।" योगचूडामण्युपनिषद्—7.

"तन्मध्ये प्रोच्यते योनिः कामाख्या सिद्धवन्दिता।

तस्य मध्ये महालिङ्गं पश्चिमाभिमुखं स्थितम्।।" योगचूडामण्युपनिषद्—8.

(ग) मणिपुर चक्र एवं कुण्डलिनी

तीसरे स्थान पर नाभिप्रदेश में स्थित मणि सदृश आकृति वाले दश-दलीय कमल को 'मणिपुर चक्र' कहा गया है। यह अत्यन्त ही कान्तिमय, बिजली की भाँति चमकदार एवं त्रिकोण आकृति वाला तथा अग्नि रूपी मेरू में प्रतिष्ठित रहता है। इसे जानने वाला योगी ही सही मायने में योगवेत्ता कहलाता है।⁴⁸ इसी नाभि स्थान व मेरू के मध्य में पक्षी के अण्डे की आकृति के सदृश योनि अर्थात् कुण्डलिनी स्थित है। साथ ही इसी स्थान पर 72000 नाड़ियों का समूह संपूर्ण शरीर में फैला है, जिनमें से कुल तीन नाड़ियों को प्रमुख माना गया है। नाभिप्रदेश में 'समान' वायु स्थित होती है।⁴⁹

(ii). कुण्डलिनी संबंधित मुख्य अवधारणा

योगचूडामण्युपनिषद् में कहा गया है कि कुण्डलिनी की साधना को करने वाला साधक अपने संकल्प मात्र से सर्वपापों से मुक्त हो जाता है। योगचूडामण्युपनिषद् के अनुसार, प्राणों को धारण करने वाली कुण्डलिनी शक्ति की उत्पत्ति गायत्री से हुई है। कुण्डलिनी को ही महाविद्या एवं प्राणविद्या कहा गया है जो साधक इस तथ्य को जान लेता है, वही वेदज्ञ कहलाता है। यह कुण्डलिनी शक्ति, आठ कुण्डल या फेरे लगाकर कन्द के ऊर्ध्व भाग में स्थित सुषुम्ना नाड़ी जिसे ब्रह्मद्वार कहा है उसके मुँह को अपने मुख से ढक कर सोई हुई अवस्था में रहती है। यहाँ इस कुण्डलिनी शक्ति को 'परमेश्वरी शक्ति' भी कहा गया है। अग्नि-योग के माध्यम से यह कुण्डलिनी शक्ति जागकर प्रकाश रूप में प्राणवायु तथा मन के साथ सुषुम्ना में प्रवेश कर सुई की भाँति आरोहण करती है। "जिस प्रकार चाभी से ताला खोला जाता है, ठीक उसी तरह कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा योगीजन मुक्ति का द्वार

⁴⁸ "नाभौ तु मणिवद्विम्बं यो जानाति स योगवित्।
तप्तमाचीकराभासं तडिल्लेखेव विस्फुरत्॥" योगचूडामण्युपनिषद्-9.

"त्रिकोणं तत्पुरं वह्नेरधोमेढ्रात्प्रतिष्ठितम्।
समाधौ परमं ज्योतिरनन्तं विश्वतोमुखम्॥" योगचूडामण्युपनिषद्-10.

⁴⁹ "तन्नाभिमण्डले चक्रं प्रोच्यते मणिपूरकम्।
द्वादशारे महाचक्रे पुण्यपापविवर्जिते॥" योगचूडामण्युपनिषद्-13.

"तावज्जीवो भ्रमत्येवं यावत्तत्त्वं न विन्दति।
ऊर्ध्वं मेढ्रादधो नाभेः कन्दे योनिः खगाण्डवत्॥" योगचूडामण्युपनिषद्-14.

खोल लेते हैं।⁵⁰ यह आठ फेरे लगाए हुए कन्द के ऊपर स्थित कुण्डलिनी शक्ति योगियों के लिए मोक्ष प्रदाता कही गयी है, तथा अज्ञानीजनों के लिए यह कुण्डलिनी शक्ति ही बन्धन का कारण कही गयी है।⁵¹

4.5 अथर्ववेदीय शाखा के योगोपनिषदों में कुण्डलिनी संबंधित अवधारणा

शोधकर्ता द्वारा यह पाया गया कि अथर्ववेदीय शाखा के योगोपनिषदों के अंतर्गत एकमात्र 'शाण्डिल्योपनिषद्' में ही कुण्डलिनी का वर्णन किया गया है।

4.5.1 शाण्डिल्योपनिषद्

शाण्डिल्योपनिषद् अथर्ववेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् है। इस उपनिषद् में शाण्डिल्य और मुनि अथर्वा के मध्य प्रश्नोत्तरी के द्वारा 'योगविद्या' का विवेचन केन्द्रीय विषय है। इस उपनिषद् को कुल तीन अध्यायों में विभाजित कर इन अध्यायों को भी अन्य खण्डों में विभाजित किया गया है जिनमें कुल 127 मंत्रों के संकलन के माध्यम से इस उपनिषद् की शुरुआत में सर्वप्रथम आत्मा को प्राप्त करने के उपाय स्वरूप अष्टांग योग की चर्चा की गयी है। प्रथम अध्याय में कुल ग्यारह खण्डों तथा 120 मंत्रों के माध्यम से आत्म उपलब्धि के उपाय स्वरूप अष्टांग योग सम्बन्धी विवेचना की गयी है जो कुछ रूपों में पातंजल योग दर्शन में वर्णित अष्टांग योग से विशेष है। द्वितीय अध्याय में कुल छह मंत्रों के द्वारा ब्रह्मस्वरूप का विस्तृत वर्णन किया गया है। अन्तिम एवं तीसरे अध्याय को दो खण्डों में विभाजित कर कुल 21 मंत्रों के माध्यम से इस अध्याय में ब्रह्म के सकल एवं निष्कल रूप के भेदों का वर्णन मिलता है। इस उपनिषद् के अन्त में फलश्रुति की चर्चा कर शाण्डिल्योपनिषद् का समापन किया गया है।

⁵⁰ "कुण्डलिन्या समुद्रूता गायत्री प्राणधारिणी।
प्राणविद्या महाविद्या यस्तां वेत्ति स वेदवित्।।" योगचूडामण्युपनिषद्-35.
"कन्दोर्ध्वं कुण्डलीशक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः।
ब्रह्मद्वारमुखं नित्यं मुखेनाच्छाद्य तिष्ठति।।" योगचूडामण्युपनिषद्-36.
"येन द्वारेण गन्तव्यं ब्रह्मद्वारं मनोमयम्।
मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी।।" योगचूडामण्युपनिषद्-37.
"प्रबुद्धा वह्नियोगेन मनसा मरुता सह।
सूचीवदगात्रमादाय व्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्नया।।" योगचूडामण्युपनिषद्-38.
"उद्घाटयेत्कवाटं तु याथ कुञ्जिकया गृहम्।
कुण्डलिन्यां तथा योगी मोक्षद्वारं प्रभेदयेत्।।" योगचूडामण्युपनिषद्-39.
⁵¹"कन्दोर्ध्वं कुण्डलीशक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः।
बन्धनाय च मूढानां योगिनां मोक्षदा सदा।।" योगचूडामण्युपनिषद्-44.

विशेष रूप से प्रथम अध्याय के खण्ड आठ में मंत्र संख्या दो में प्रत्याहार के अभ्यास हेतु विषय के रूप में शरीरस्थ अठारह स्थानों का वर्णन किया गया है जिनमें से कुछ स्थान चक्र प्रदेश कहलाते हैं। इसी प्रकार प्रथम अध्याय के खण्ड चार में मंत्र संख्या 8–10 में तथा खण्ड सात में मंत्र 36 के 1–3 में कुण्डलिनी के बारे में विशेष चर्चा की गयी है।

(i). कुण्डलिनी का वर्णन

नाड़ी शुद्धि के अंतर्गत शण्डिल्योपनिषत् के अनुसार आठ प्रकार की प्रकृतियों वाली 'कुण्डलिनी' आठ आवृत्तियों से युक्त होकर नाभिप्रदेश के करीब तथा ऊर्ध्वभाग में स्थित रहती है। योग की अवस्था में यह कुण्डलिनी वायु के संचार को समायोजित कर चारों तरफ से अन्न एवं जल आदि को कन्धों के पीछे के भाग में स्थिर करके, उसे फिर से अपने मुख से लिये हुए अपान वायु एवं अग्नि के माध्यम से ब्रह्मरन्ध्र तक जागती है। हृदयप्रदेश में यहीं कुण्डलिनी अत्यन्त उज्ज्वल तथा ज्ञान का रूप हो जाती है।⁵²

इस मध्यस्थित में कुण्डलिनी के आश्रय से चारों ओर 14 प्रमुख नाड़ियाँ स्थित हैं। योगियों के मतानुसार इन सभी चौदह नाड़ियों में प्रमुख नाड़ी के रूप में सुषुम्ना नाड़ी इस सृष्टि को धारण किये हुए मोक्षमार्गी है। यह सुषुम्ना नाड़ी अत्यन्त सूक्ष्म, स्पष्ट तथा वैष्णवी के रूप में गुदाप्रदेश के पीछे की ओर से मस्तिष्क में स्थित ब्रह्मरन्ध्र को जाती हुई सीधी लम्बवत् स्थित है।⁵³

शाण्डिल्योपनिषत् के अनुसार यह टेढ़ी-मेढ़ी आकृति वाली कुण्डलिनी शक्ति सर्प की भाँति मोक्ष को जाने वाले मार्ग से लिपटकर उसे अपने मुँह से ढँककर सुप्तावस्था में रहती है। जो साधक इस कुण्डलिनी शक्ति को चलित करता है वह मुक्त को प्राप्त करता है। अतः साधक को चाहिए कि वह इस कुण्डलिनी शक्ति को

⁵² "नाभेस्तिर्यगधोर्ध्वं कुण्डलिनीस्थानम्।

अष्टप्रकृतिरुपाष्टधा कुण्डली-कृता कुण्डलिनी शक्तिर्भवति।

यथावद्वायुसंचारं जलान्नादीनि परितः स्कन्धपात्रेषु निरुद्ध्यैनं मुखेनैष समावेष्ट्य ब्रह्मरन्ध्रं योगकालेऽपानेनाग्निना च स्फुरति।

हृदयाकाशे महोज्ज्वला ज्ञानरूपा भवति।।" शण्डिल्योपनिषत् - 1/4/8.

⁵³ "मध्यस्थकुण्डलिनीमाश्रित्य मुख्या नाडयश्चतुर्दश भवन्ति।" शण्डिल्योपनिषत् - 1/4/9.

"तत्र सुषुम्ना विश्वधारिणी मोक्षमार्गतिं चाचक्षते।

गुदस्य पृष्ठभागे वीणादण्डाश्रिता मूर्धपर्यन्तं ब्रह्मरन्ध्रे विज्ञेया व्यक्ता सूक्ष्मा वैष्णवी भवति।।"

शण्डिल्योपनिषत् - 1/4/10.

संकोचित कर ऊपर की तरफ खींचकर, मोक्ष मार्ग का भेदन कर इस द्वार को खोलने का प्रयास करता है। अगर कुण्डलिनी शक्ति कण्ठ के ऊपरी प्रदेश में सुप्तावस्था में रहती है, तब वह योगियों के लिए मुक्तिप्रदायक होती है। किन्तु जब यही कुण्डलिनी शक्ति यदि कण्ठ से नीचे स्थित प्रदेश में सुप्तावस्था में रहती है, तब वह अज्ञानीजनों के लिए बंधन का कारण होती है।⁵⁴

⁵⁴ “आकुञ्चनेन कुण्डलिन्याः कवाटमुदघाटय मोक्षद्वारं विभेदयेत्।।” शण्डिल्योपनिषत् – 1/7/36-1.

“येन मार्गेण गन्तव्यं तदद्वारं मुखेनाच्छाद्य प्रसुप्ता कुण्डलिनी कुटिलाकारा सर्पवद्वेष्टिता भवति।।” शण्डिल्योपनिषत् – 1/7/36-2.

“सा शक्तिर्येन चालिता स्यात् स तु मुक्तो भवति।

सा कुण्डलिनी कण्ठोर्ध्वभागे सुप्ता चोद्योगिनां मुक्तये भवति।

बन्धनायाधो मूढानाम्।।” शण्डिल्योपनिषत् – 1/7/36-3.

पंचम अध्याय

चक्र और कुण्डलिनी की वर्तमान में
प्रासंगिकता

- 5.1 चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा का विश्लेषण
- 5.2 आध्यत्मिक प्रगति में चक्र और कुण्डलिनी साधना की उपयोगिता

5. चक्र एवं कुण्डलिनी की वर्तमान में प्रासांगिकता

भारत के प्रसिद्ध योगमहर्षियों द्वारा योग के प्रमुख ग्रंथों एवं योगोपनिषदों के माध्यम से चक्र एवं कुण्डलिनी जैसे अत्यन्त ही गूढ़ विषयों को सरलतम रूप में स्पष्ट करने के साथ ही व्यवहारिक स्तर पर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में चक्र एवं कुण्डलिनी की साधना की उपयोगिता पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया है। इसी क्रम में स्वामी सत्यानंद सरस्वती द्वारा व्यवहारिक रूप में यह स्पष्ट किया है कि चक्र एवं कुण्डलिनी जागरण एक मनो-शारीरिक घटना होने के साथ-साथ एक आध्यात्मिक वास्तविकता भी है। इसकी विशाल क्षमता की जाँच विज्ञान की नवीनतम सीमा है। जब वैज्ञानिक रूप से यह पता चला है कि विशिष्ट ध्वनियों (मंत्र) और ज्यामितीय आकृति (यंत्र) शारीरिक तथा मानसिक प्रणालियों को सक्रिय कर सकते हैं, उस समय से रोगों के उपचार में दूरगामी लाभों की कल्पना कर वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों में चक्र तथा कुण्डलिनी साधना उपयोग में लायी जाने लगी।^{1, 2}

यद्यपि मानव शरीरस्थ चक्र, सूक्ष्म शरीर स्थित प्राण ऊर्जा के केंद्र रूप होते हैं, तदर्थ स्थूल शरीर के स्तर पर यह चक्र शरीर की भौतिक संरचनाओं जैसे— तंत्रिका तंत्र, धमनियों एवं शिराओं से सम्बद्ध होते हैं।³ अतएव जब कभी व्यक्ति की प्राणऊर्जा या जीवनी शक्ति में अवरुद्धता आती है तब इस अवरुद्धता को विमुक्त करने हेतु योगचिकित्सा एवं अन्य वैकल्पिक चिकित्साओं में चक्रों की साधना का प्रयोग किया जाता है, जो अत्यन्त लाभकारी प्रभाव प्रदान करते हैं।⁴ उदाहरण के लिए योगचिकित्सा के अंतर्गत चक्र साधना हेतु उपयुक्त यौगिक तकनीकों के अभ्यास के माध्यम से शरीरस्थ नकारात्मक ऊर्जा को विमुक्त कर संपूर्ण शरीर में सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है, फलस्वरूप शीघ्र एवं स्थायी स्वास्थ्य लाभ की प्राप्ति होती है।⁵

¹ मोटोयामा, एच. (2014), *थ्योरिस ऑफ द चक्रास: ब्रीज टू हायर कान्शियन्सेस*, मोतिलाल बनारसीदास पब्लिकेशन्स, पृष्ठ संख्या— 23.

² रुबिक, बी. (2004), साइंटिफिक एनालिसिस ऑफ ह्यूमन औरा, मेशरिंग एनर्जी फिल्ड्स स्टेट ऑफ द साईंस, फेअर लॉन, एन. जे., बेकबोन, 157–170.

³ जुडिथ, ए. (2012), *व्हील्स ऑफ लाइफ: अ युजर्स गाइड टू द चक्रा सिस्टम*, लेवेलिन वर्ल्डवाइड पब्लिकेशन्स.

⁴ सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द (2012), *घेरण्ड संहिता: कर्मेंट्री आन द योगा टीचिंग ऑफ महर्षि घेरण्ड*, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— 385.

⁵ लोरेंजी, ई. ए. (1999), काम्लमेन्ट्री/अल्टरनेटिव थिरेपीस: सो मेनी च्वाइसेस, जेरिएट्रिक नर्सिंग, 20 (3), 125–133.

अतएव प्रस्तुत शोध अध्ययन के इस अध्याय में योगोपनिषदों, हठयोगिक ग्रंथों एवं वर्तमान में किये गये शोधकार्यों के समीक्षात्मक अध्ययन से प्राप्त तथ्यों एवं साक्ष्यों के आधार पर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा की विस्तृत विवेचना दो खण्डों में की गयी है। प्रथम खण्ड में 'चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा का विश्लेषण' निम्न उपखण्डों— चक्र एवं कुण्डलिनी का तीन शरीरों, दस वायु, प्रमुख नाड़ियों, पंचकोशों, ग्रन्थियों तथा साधक की अवस्थाओं के अंतर्गत जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया अवस्था से संबंध के माध्यम से किया गया है। द्वितीय खंड के अंतर्गत प्रमुख व नवीनतम यौगिक ग्रंथों एवं वर्तमान में किये गये शोधकार्यों के आधार पर 'समग्र स्वास्थ्य एवं आध्यत्मिक प्रगति में चक्र और कुण्डलिनी की उपयोगिता' पर प्रकाश डाला गया है।

5.1 चक्र एवं कुण्डलिनी की अवधारणा का विश्लेषण

चक्र एवं कुण्डलिनी के मर्म अर्थात् तत्त्वज्ञान को समझने हेतु सर्वप्रथम यह जानना अति आवश्यक है कि मनुष्य के अस्तित्व को तीन विभागों में विभक्त किया जा सकता है जिन्हें तीन शरीरों के नाम से जाना जाता है एवं साथ ही मानवीय शरीर में पंचकोश होते हैं। यह पंचकोश एवं तीन शरीर किस प्रकार चक्रों एवं कुण्डलिनी से अंतर्संबंधित है—

5.1.1 चक्र एवं कुण्डलिनी का तीन शरीरों से संबंध

शरीर की उपयोगिता

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्", अर्थात् यह मानवीय शरीर सभी प्रकार के कर्म एवं धर्म को प्रतिपादित करने का प्रथम एवं प्रमुख साधन है।⁶ इस प्रकार भौतिक तत्वों के संयोजन से विनिर्मित यह मानवीय शरीर चेतन तत्त्व रूपी जीवात्मा की सहकार्यता से सक्रिय एवं कार्यरत रहता है।

ध्यानबिन्दुपनिषद् के अनुसार प्रणव के स्वरूप 'ओंकार' में आठ अंग, पंच देवता इत्यादि के साथ ही 'तीन स्थानों' को अन्तर्भूत माना गया है। तदर्थ इस त्रिस्थान के

⁶ पुरुषार्थी, डॉ., योगेन्द्र और सरस्वती, स्वामी शिवानन्द, (1983), *वेदों में योगविद्या*, वैगिक शोध संस्थान, योगधाम, ज्वालापुर, हरिद्वार, पृष्ठ संख्या— 56.

अंतर्गत 'तीन देह— स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर' का वर्णन किया गया है। इस उपनिषद् के अनुसार जो साधक ओंकार के इस वर्णित स्वरूप को भली-भाँति जान लेता है वह साधक ब्रह्मनिष्ठ और जीवनमुक्त अवस्था को प्राप्त हो जाता है।⁷

सामवेद की ऋचा के अनुसार— “जब तक जीवात्मा शरीर में रहती है, तभी तक योग—साधनाओं के कारण परमात्मा को पा सकता है। बिना शरीर के न साधनाएँ हो सकती हैं और न परमेश्वर को ही पाया जा सकता है।”⁸

सामवेद के इसी दृढ़ कथन को योगबीज में वर्णित किया गया है कि— ‘हे विधे! बिना इस मानव—देह के अधिकृत योग के ज्ञानी, विरक्त, जितेन्द्रिय, धर्मज्ञ भी मोक्ष नहीं पा सकता।’⁹

यह भौतिक या स्थूल शरीर ही अन्य दोनों शरीरों अर्थात् सूक्ष्म शरीर एवं कारण शरीर का आवास स्थान होता है तथा इन तीनों शरीरों अर्थात् स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर एवं कारण शरीर का आपस में घनिष्ठ संबंध रहता है, इन तीनों शरीरों के आपस में संबंध से सही मानव को भोग, योग एवं मोक्ष सिद्ध होता है।

शरीर के भेद

प्रमुख जड़ तत्वों से निर्मित मानवीय शरीर को मुख्य तीन भागों में विभाजित किया गया है— 1. स्थूल शरीर, 2. सूक्ष्म शरीर, एवं 3. कारण शरीर।

(i). स्थूल शरीर—

सामान्यतः स्थूल शरीर को त्रिदोष — वात, पित्त एवं कफ वाला कहा जाता है। अन्नमय और प्राणमय कोश दोनों एक साथ मिलकर स्थूल शरीर का संचालन करते हैं, तदर्थ अन्नमय और प्राणमय कोश को स्थूल शरीर का मूल—आधार कहा जाता है। स्थूल शरीर की स्वस्थता के मुख्य तीन आधार— आहार, निद्रा, एवं ब्रह्मचर्य है। इसी

⁷“उकारः सात्त्विकः शुक्लो मकारः कृष्ण तामसः।

अष्टांग च चतुष्पादं त्रिस्थानं पञ्चदैवतम्।।” ध्यानबिन्दुपनिषद्—13.

⁸“यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरश्विकुः।

विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे।।” सामवेद— 933.

⁹“ज्ञाननिष्ठो विरक्तोऽपि, धर्मज्ञो विजितेन्द्रियः।

विना देहेऽपि योगेन, न मोक्षं लभते विधे।।” योगबीज— 31.

प्रकार प्राणों के नियमित व्यापार करते रहने से ही स्थूलशरीर स्वस्थ बना रह सकता है। अतः संक्षिप्त में यहाँ मानव-शरीर की रचना को स्पष्ट किया गया है जो इस प्रकार हैं—

अथर्ववेद के अनुसार— आकाश में व्याप्त समष्टि के 21 तत्व स्थूल शरीर के सभी रूपों को धारण करते हैं। यह 21 तत्व निम्न हैं— पंच सूक्ष्मभूत, पंच स्थूलभूत, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच कर्मेन्द्रियाँ व वीर्यशक्ति।¹⁰

सांख्यदर्शन में विकासवाद के सिद्धांत के अंतर्गत स्थूल शरीर को धारण करने वाले इन तत्वों की संख्या 25 वर्णित है। यह 25 तत्व निम्न हैं— प्रकृति, पुरुष, बुद्धि या महत् तत्व, अहंकार, पंच महाभूत, पंच तन्मात्राये, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच कर्मेन्द्रियाँ व मन।¹¹ वैदिक साहित्यों में स्थूल शरीर हेतु उपयुक्त अन्य पर्यायवाची शब्द निम्न हैं— काया, देह, शरीर, अयोध्या, पिण्ड, देवपूरी इत्यादि पर्यायवाची नामों से भी शरीर को जाना जाता है।

चक्र एवं कुण्डलिनी साधना में स्थूल शरीर के सहायक अंग— चक्र एवं कुण्डलिनी साधना में स्थूल शरीर के विशेष उपयोगी अंग— मेरुदण्ड, हृदय, तथा कपाल हैं। यह विशेष उपयोगी अंग निम्न प्रकार से चक्र एवं कुण्डलिनी साधना हेतु आवश्यक हैं—

(क) मेरुदण्ड

मानव शरीरस्थ 33 हड्डियों से मिलकर बनी मेरुदण्ड या रीढ़ की हड्डी, ग्रीवा प्रदेश की पहली कशेरु से लेकर नीचे स्थित त्रिकोण हड्डी या सेक्रम तक ये सभी कशेरुकायें खोखली होती हैं। योगोपनिषदों के अनुसार— मेरुदण्ड के इस खोखले छिद्र में ही 'सुषुम्ना नाड़ी' की स्थिति होती है। इस सुषुम्ना नाड़ी के मुख पर

¹⁰“ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।

वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य वधातु मे।।” अथर्ववेद— 1/1/1

¹¹ पुरुषार्थी, डॉ., योगेन्द्र, और सरस्वती, स्वामी शिवानन्द, (1983), *वेदों में योगविद्या*, 'श्रुतिप्रतिपादित अन्नमयकोश की साधना', वैगिक शोध संस्थान, योगधाम, ज्वालापुर, हरिद्वार, पृष्ठ संख्या— 60.

“सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं, तन्मात्रेभ्यः, स्थूलभूतानि, पुरुष, इति पञ्चविंशतिर्गणः।।”

कुण्डलिनी शक्ति सुप्तावस्था में पड़ी रहती है, तथा मेरुदण्ड के आधार पर 'मूलाधार चक्र' की स्थिति होती है।

(ख) हृदय

मानवीय शरीरस्थ वक्षप्रदेश के मध्य स्थित दोनों फेफड़ों के बीच, स्वसंचालित मुख्य रक्तवाहक केंद्र के रूप में हृदय स्थित है। योगोपनिषदों के दृष्टिकोण से हृदय प्रदेश में 'अनाहत या हृदय चक्र' को स्थित माना गया है। यौगिक दृष्टि से योगी के हृदयस्थल ही योगी का 'देवालय' है, जहाँ वह योगी नित्य-प्रतिदिन अपने आराध्य के दर्शन कर आनन्द से पूरित रहता है।

(ग) कपाल

मानव शरीर के शीर्ष प्रदेश स्थित, आठ हड्डियों के विनिर्मित एक गोलाकार खोपड़ी कपाल कहलाती है, जो मस्तिष्क को सुरक्षित रखे रहती है। यौगिक दृष्टिकोण से, मस्तिष्क में ही 'संपूर्ण शरीर में ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति के साधनरूपी मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों का निवास है। तदर्थ मस्तिष्क जो कि ज्ञानप्रधान है एवं भावना प्रधान हृदय अपने भाव, ज्ञान और क्रिया को निष्पादित करने हेतु प्रमुखरूप से 'सुषुम्ना नाड़ी पथ' का प्रयोग करते हैं। अतः शरीर के साथ हृदय और मस्तिष्क को मिलाने का प्रमुख साधन 'सुषुम्ना नाड़ी' को माना गया है। योगोपनिषदों में, कपाल के ऊपर मध्यभाग में ब्रह्मरन्ध्र को स्थित माना गया है, जहाँ 'सहस्रार चक्र' की स्थिति होती है। कपाल के सामने की ओर स्थित हड्डी को 'ललाटस्थि' कहते हैं। इस ललाटस्थि के भूमध्य में 'आज्ञाचक्र' की स्थिति होती है। मनोमयकोश और विज्ञानमयकोश वृत्ताकार कोष्ठ रूपी मस्तिष्क में स्थित होकर ज्ञान प्राप्त कर कार्य संपन्न करते हैं। सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से होते हुए जाग्रत कुण्डलिनी शक्ति क्रमशः प्रमुख चक्रों का भेदन करते हुए कपाल प्रदेश में स्थित अपने गंतव्य स्थान अर्थात् सहस्रार चक्र में पहुँचकर परमसत्ता के साथ एकाकार हो जाती है।

(ii). सूक्ष्म शरीर

सूक्ष्म शरीर को स्थूलशरीर की आत्मा कहा जा सकता है। सूक्ष्म शरीर को मनोवैज्ञानिक, भावनात्मक, मन तथा गैर-भौतिक शरीर भी कहा जा सकता है।¹² प्रकाशमय सूक्ष्मतत्त्वों से विनिर्मित 'सूक्ष्मशरीर' को शक्ति-प्रसारण का केन्द्र कहा जाता है। सूक्ष्म शरीर को ऊर्जा के रूप में भी जाना जाता है। सूक्ष्मशरीर जन्म-मरण इत्यादि में जीवात्मा के साथ ही बना रहता है।

सूक्ष्म शरीर के विभाग

सूक्ष्मशरीर को 17 तत्त्वों से संयुक्त विनिर्मित माना गया है— पंच प्राण, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच सूक्ष्मभूत, मन एवं बुद्धि।

सूक्ष्म शरीर के भेद— सूक्ष्म शरीर के दो भाग हैं—

(क) भौतिक शरीर—

जो पंचसूक्ष्मभूतों या पंचतन्मात्राओं— शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध से बनता है।

(ख) स्वाभाविक / अभौतिक शरीर—

यह जीवात्मा का स्वाभाविक गुण एवं रूप है। यह अभौतिक शरीर मुक्ति के समय भी जीवात्मा के साथ ही रहता है। इसी शरीर के आश्रित जीव मुक्ति में सुखभोग करता है। कोशों की दृष्टि से सूक्ष्मशरीर के तीन भाग निम्नानुसार हैं—

(क) प्राणमय कोश

(ख) मनोमय कोश

(ग) विज्ञानमय कोश।

¹² शर्मा, ए., (2006), *अ प्राइमल पर्सपेक्टिव ऑन द फिलॉसफी ऑफ रिलिजन*, स्प्रिंगर, पृष्ठ संख्या— 193–196.

चक्र एवं कुण्डलिनी साधना में सूक्ष्म शरीर की उपयोगिता— भारत में विकसित शास्त्रीय पूर्वी परंपराएँ मुख्य रूप से 'सूक्ष्म शरीर' के संदर्भ में नाड़ी और चक्रों का वर्णन करती हैं। सूक्ष्म शरीर में नाड़ी संस्थान या ऊर्जा चैनल विद्यमान होते हैं जो मानसिक ऊर्जा केंद्रों के रूप में शरीरस्थ प्रमुख चक्रों से जुड़े होते हैं।¹³ इस प्रकार ये प्रमुख चक्र सूक्ष्म शरीर से संबंधित होते हैं, जिसमें कुण्डलिनी की स्थिति है।

(iii). कारण शरीर

सामान्यतः कारण शरीर उच्चतम एवं अंतरम् शरीर को संदर्भित करता है जो आत्मसंस्थान से संबंधित होता है। कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर का कारण बीज है। यह सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर के भीतर सह-अस्तित्व में रहता है, तथा यह कारण शरीर सूक्ष्म शरीर से बड़ा और अधिक सूक्ष्म होता है। यह व्यक्ति की बीज अवस्था को एक जन्म से दूसरे जन्म तक ले जाता है। भारतीय परंपरा में इसे आनन्दमय कोश एवं गहरी नींद की स्थिति के द्वारा संदर्भित किया जाता है।

चक्र एवं कुण्डलिनी का कारण शरीर से संबंध— कुण्डलिनी योग साधना में साधक इन तीनों शरीरों पर कार्य कर इन सभी शरीरों को शुद्ध करते हैं। जब यह तीनों शरीर शुद्ध हो जाते हैं, उस समय साधक सामंजस्यपूर्ण और कांतिवान हो जाता है, एक सुखद सुगन्ध उत्सर्जित करता है। योगी पूर्ण-हृदय, ऊर्जावान और बलवान हो जाता है। योगी का नाड़ी तंत्र शुद्ध होने के फलस्वरूप संकेत के रूप में शरीर का दुबलापन और चमक प्राप्त कर कांतिमान् हो जाता है।¹⁴ परिशुद्ध नाड़ी संस्थान से प्राणतत्त्व बिना किसी अवरोध के संपूर्ण शरीर में प्रवाहित होता है तथा कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के फलस्वरूप यह कुण्डलिनी बिना किसी रुकावट के परिशुद्ध सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से होते हुए क्रमशः प्रमुख चक्रों का भेदन करते हुए सहस्रार चक्र स्थित अपने गनतव्य स्थान को पहुँचकर परमसत्ता के साथ एकाकार हो जाती है।

¹³ सेमुअल, ज्योफी और जॉनसन, जे., (2013), *रीलिजन एन्ड द सटल बॉडी इन एशिया एन्ड द वेस्ट*: राउटलेज, पृष्ठ संख्या- 5-8, 38-45, 187-190.

¹⁴ स्वामी दिगम्बर, और झा, पीताम्बर (2001), *स्वात्माराम-कृत: हठप्रदीपिका*, द्वितीय उपदेश, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, पुणे, महाराष्ट्र, सूत्र संख्या- 19, पृष्ठ संख्या- 44.

“यदा तु नाडीशुद्धिः स्यात्तदा चिह्नानि बाह्यतः।

कायस्य कृशता कान्तिस्तथा जायेत निश्चितम्।।” हठ प्रदीपिका- 2/19.

तीन शरीर और तीन मन

(क) भौतिक शरीर और उसका मन, वह चेतना जो भौतिक शरीर के साथ मिलकर काम करती है।

(ख) सूक्ष्म शरीर और उसका मन, अर्थात् वह चेतना जिसे हम मुख्य रूप से मनोभावों एवं भावनाओं के रूप में अनुभव करते हैं।

(ग) कारण शरीर और उसका मन, अर्थात् चेतना जो मुख्य रूप से बुद्धि और ज्ञान के रूप में व्यक्त की जाती है।

तीन शरीरों/मन का समूह विद्यमान होकर विभिन्न आयामों में कार्य करते हैं, प्रत्येक शरीर को उस आयाम के लिए आवश्यक और उपयुक्त प्राण ऊर्जा द्वारा बनाए रखा जाता है। प्रत्येक शरीर-मन में प्राण के प्रवाह और ऊर्जा चैनलों की एक प्रणाली को नियंत्रित करने के लिए ऊर्जा केंद्र होते हैं। इन चैनलों को 'नाड़ी' कहा जाता है, और उन्हें नियंत्रित करने वाले केंद्रों को 'चक्र' के रूप में जाना जाता है।¹⁵ जैसे-जैसे चक्र सक्रिय और जागृत होते हैं, मनुष्य न केवल अस्तित्व के उच्च क्षेत्रों के बारे में जागरूक हो जाता है, बल्कि उन क्षेत्रों में प्रवेश करने की शक्ति भी प्राप्त कर लेता है और फिर निचले आयामों का समर्थन करता है और उन्हें जीवन देता है।

अतः इस प्रकार शरीरत्रयी या मानवीय-शरीर के तीन भेदों के रूप में स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर की महत्ता को स्पष्ट करते हुए, सामवेद में भी कहा गया है कि— "शरीरगृह को वात, पित्त, कफ रूपी त्रिदोष या तत्त्वों वाला एवं स्थूल, सूक्ष्म, कारण इन तीन आवरणों वाला बताया गया है तथा परमात्मा की कृपा से ही यह शरीर विभिन्न आध्यात्मिक विभूतियों को धारण करने में समर्थ होता है।"¹⁶

¹⁵ मोटोयामा, एच., (2014), *थ्योरिस ऑफ द चक्रास: ब्रीज टू हायर कान्शियस्नेस*, मोतिलाल बनारसीदास पब्लिकेशन्स, पृष्ठ संख्या— 23.

¹⁶ "इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरुथं स्वस्तये।" सामवेद— 266.

5.1.2 चक्र एवं कुण्डलिनी का पंचकोशों से संबंध

योगविज्ञान के संदर्भ में, मानवीय देह में 'ऊर्जा एवं चेतना के प्रमुख पाँच स्तर' होते हैं, जिन्हें 'पंचकोश' कहा जाता है। पंचकोश के अंतर्गत प्रत्येक कोश एक-दूसरे से घनिष्ठता से संबंधित होते हैं तथा एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। जब कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती हैं, तो वह प्रमुख चक्रों से होकर गुजरती है। ये प्रमुख चक्र संख्या में सात हैं जो पाँच शरीरों से संबंधित हैं। इन पाँच शरीरों या निकायों को 'कोश' कहा जाता है, मानवीय शरीर में स्थित मानव चेतना रूपी ये पाँच कोश या आवरण क्रमशः स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर की ओर निम्न हैं—

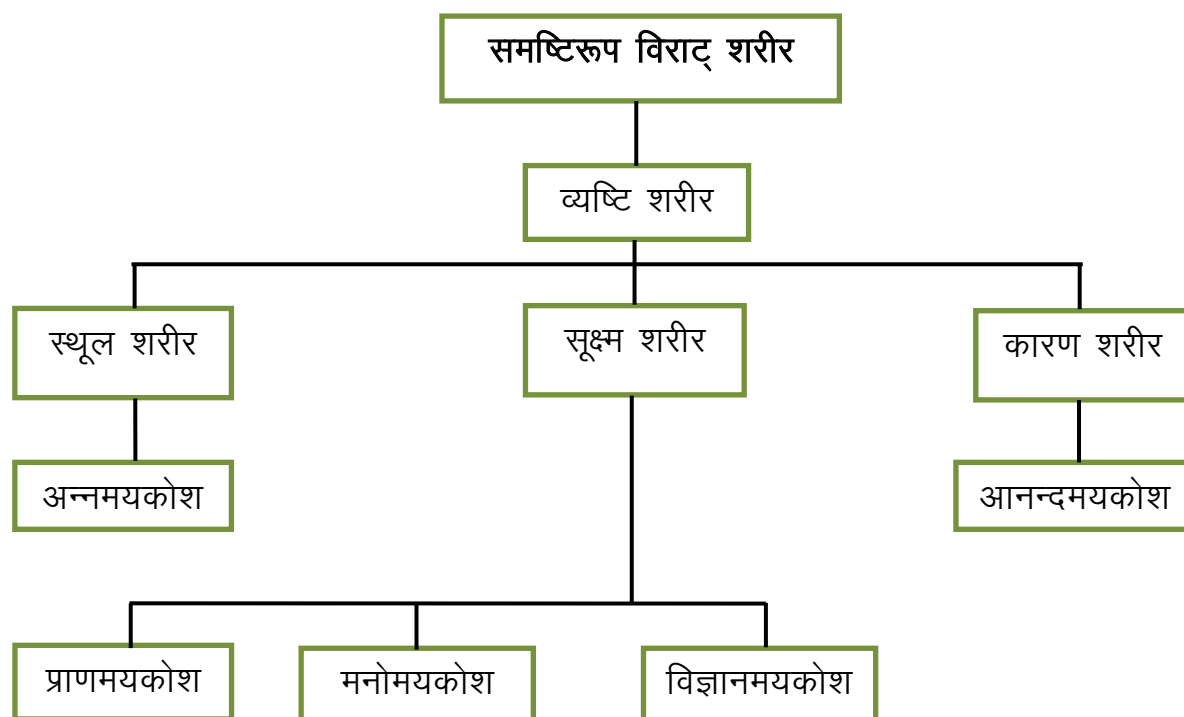


1. अन्नमय कोश (अन्न से निर्मित)
2. प्राणमय कोश (प्राणों के प्रवाह से निर्मित)
3. मनोमय कोश (मन से निर्मित)
4. विज्ञानमय कोश (भाव के प्रवाह से निर्मित)
5. आनन्दमय कोश (चेतना के प्रवाह से निर्मित)

ये सभी कोश प्रत्येक मानवीय काया में एक साथ मौजूद होते हैं तथा इन पंचकोशों का क्षेत्र अत्यंत स्थूल से अत्यंत सूक्ष्म तक होता है, जिसे चित्र रूप में यहाँ दर्शाया गया है। इन पंचकोशों का संचालन 'प्राणतत्त्व' के माध्यम से होता है। मनुष्य एवं प्राणियों के स्तर का विकास इन पंचकोश रूपी चेतना की परतों के सादृश्य ही होता है तथा ये पाँचों कोश या निकाय संवाददाता के रूप में मानवीय शरीर के तीनों भेदों से निम्न प्रकार संबंधित हैं—

तीनो शरीरों में समाविष्ट पंचकोश

जीवात्मा को प्राप्त शरीर के तीन स्तरों तथा इन तीनों शरीरों से संबंधित पंचकोशों को भली-भांति समझने के लिए विभिन्न संदर्भों के आधार पर यहाँ निम्न तालिका दी गयी हैं—



(क) अन्नमयकोश

मानवीय देह में 'ऊर्जा के प्रमुख पाँच स्तरों में से प्रथम स्तर' होता है। पंच महाभूतों से बना हुआ यह स्थूल शरीर अन्न से निर्मित वीर्य एवं रज से उत्पन्न होकर, अन्न के माध्यम से ही बढ़ता भी है, अतएव इसे अन्नमय कोश कहते हैं। घेरण्ड संहिता के अनुसार— "अन्न, जल एवं वायु पर, जो कि प्राण के स्थूल रूप हैं, अपनी निर्भरता के कारण यह कोश अन्नमय कोश कहलाता है।"¹⁷ अन्नमय कोश को 'इन्द्रिय चेतना' भी कहा जाता है। अन्नमय कोश का अस्तित्व प्राणतत्त्व पर निर्भर रहता है।

¹⁷सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द (2012), घेरण्ड संहिता: कमेंट्री आन द योगा टीचिंग ऑफ महर्षि घेरण्ड, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— 394.

स्थूल शरीर के अधीनस्थ अन्नमयकोश के अंग-प्रत्यंगों का वर्णन वेदों में स्पष्ट एवं वृहद रूप से गर्भित है— “पीतं भुक्तान्नाद् वीर्याद् जातो ऽन्नेनैव वर्धते। देहः सोऽन्नमयो नात्मा, प्राक् चोर्ध्वं तदभावतः।।” अर्थात् पंचमहाभूतों— पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश से निर्मित इस अन्नमयकोश को स्थूल शरीर भी कहा जाता है। सप्तधातुएँ— अस्थि, मांस, मज्जा, वीर्य आदि भी इसी के रूप है।¹⁸

अन्नमयकोश के कार्य—

“साधक का साधना-पथ अन्नमयकोश से ही प्रारम्भ होता है। यही मुख्य आवरण जीवात्मा के बंधन का प्रमुख हेतु बना हुआ है। जब तक इस कोश का बाह्य तथा आन्तरिक रूप से साक्षात्कार नहीं हो जाता तब तक इसके व्यामोह से वैराग्य होना असम्भव है।”¹⁹

अन्नमयकोश की साधना का चक्र एवं कुण्डलिनी पर पड़ने वाले प्रभाव—

अन्नमय कोश की साधना के द्वारा योगी या साधक ध्यानयोग के दिव्य दीपक के साथ शरीररूपी अयोध्या नगरी में प्रविष्ट होता है। तत्पश्चात् मूलाधार चक्र से सहस्रार चक्र तक सुषुम्णा नाड़ी में स्थित अत्यन्त सूक्ष्म गतिवाहक एवं ज्ञानवाहक नाड़ी युगल के रूप में मेरुदण्ड के अंदर प्रत्यक्षण करता है। अतएव स्थूलशरीर के प्रमुख आधार रूपी अन्नमय कोश की साधना प्रथम साधनीय है।

(ख) प्राणमयकोश

प्राणमय कोश मानवीय देह में ‘ऊर्जा के प्रमुख पाँच स्तरों में से द्वितीय स्तर’ है। प्राणमय कोश को ‘जीवनी शक्ति’ तथा ‘प्राणिक शरीर’ भी कहते हैं, इसे ‘आत्मपुरी’ नाम से भी जाना जाता है। यह भौतिक/स्थूल शरीर से अत्यंत सूक्ष्म एवं भौतिक शरीर में व्याप्त होता है। एक सूक्ष्म आवरण के रूप में प्राणमयकोश सत्त्वप्रधान वायु से विनिर्मित है, जो स्वयं के प्रभाव से अन्य तीन कोशों— मनोमय, विज्ञानमय एवं

¹⁸ पुरुषार्थी, डॉ., योगेन्द्र और सरस्वती, स्वामी शिवानन्द, (1983), *वेदों में योगविद्या*, वैगिक शोध संस्थान, योगधाम, ज्वालापुर, हरिद्वार, पृष्ठ संख्या— 73, पृष्ठदशी— 3/3.

¹⁹ पुरुषार्थी, डॉ., योगेन्द्र और सरस्वती, स्वामी शिवानन्द, (1983), *वेदों में योगविद्या*, वैगिक शोध संस्थान, योगधाम, ज्वालापुर, हरिद्वार, पृष्ठ संख्या— 76.

आनन्दमय कोशों का आवरक होता है। स्थूलशरीर के साथ मुख्य रूप से सूक्ष्मशरीर प्राणमयकोश का आश्रयभूत होता है। अन्नमय और प्राणमय कोश दोनों एक साथ मिलकर स्थूल शरीर का संचालन करते हैं, तदर्थ अन्नमय और प्राणमय कोश को स्थूल शरीर का मूल-आधार कहा जाता है। ये दोनों कोश एक-दूसरे के पूरक होने के साथ-साथ, सापेक्ष संबंधित होते हुए, मृत्युपर्यन्त अंतर्संबंधित रहते हैं। दश प्रकार के प्राणों से संयुक्त प्राणमय कोश को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. पाँच मुख्य प्राण— प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान।
2. पाँच गौण प्राण— नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय।

प्राणमयकोश के कार्य—

जिस समय जीवात्मा की स्थिति पंचावरणों से आवृत्त आनन्दमय कोश में होती है, उस समय जीवात्मा को कर्ता, दाता, भोक्ता, वक्ता, पिपासाकुल, क्षुधातुर आदि विकारयुक्त प्रदर्शित करना इस प्राणमय कोश का धर्म है। प्राणमय कोश के द्वारा जीवात्मा भूख, प्यास, विषय-विकलता इत्यादि कष्टों को भोगती है। प्राणमय कोश के माध्यम से ही विषयसुख जैसे— निवृत्तिजन्यतृप्ति एवं रतिसुख इत्यादि का उपभोग भी मिलता है। प्राणमय कोश के सभी अंगों एवं उपांगों के कार्य शरीर में विभाजित रहते हैं।

प्राणमयकोश की साधना का चक्र एवं कुण्डलिनी पर पड़ने वाले प्रभाव—

साधक अपने स्थूल शरीर में उपस्थित सक्रिय प्राणों को जानकर, उन्हीं प्राणों के कार्यों को धारणा एवं ध्यान के अभ्यास के द्वारा विकसित करके अंगों का स्वेच्छा से विकास, अंगों से विकारों का निवारण एवं रोगों का नाश कर सकता है। प्राणमय कोश के भाग के रूप में स्थित मुख्य पंचप्राणों का शरीरस्थ चक्रों से विशिष्ट संबंध होता है। सूक्ष्म चेतना को जाग्रत करने हेतु प्राणमय कोश की साधना अत्यंत फलदायी होती है। चक्र एवं कुण्डलिनी जागरण की साधना के समय 'प्राणतत्त्व' के सक्रिय होने के फलस्वरूप यह वर्णोच्चारण में सहयोग प्रदान करने के साथ ही, अन्न-द्रव्यों को आमाशय तक पहुँचाना, रूधिर को उष्ण एवं लाल बनाये रखना, तथा भूख-प्यास का अहसास कराना इस प्राणतत्त्व के कार्यों के अंतर्गत आते हैं।

(ग) मनोमयकोश

मनोमय कोश मानवीय देह में 'ऊर्जा के प्रमुख पाँच स्तरों में से तृतीय स्तर' है। यह मनोमय कोश, अन्नमय तथा प्राणमय कोश रूपी दो स्थूल कोशों को एकीकृत ईकाई के रूप में बनाये रखता है। 'मन' से निर्मित होने के कारण इसे मनोमय कोश कहा जाता है। मनोमय कोश को 'विचार बुद्धि' भी कहते हैं। मननशील प्राणी ही मनोमय कोश की स्थिति में होते हैं।

मनोमयकोश के कार्य—

मनोमयकोश अनेकों क्रियाओं को एक साथ संपादित करता है। यह कोश भौतिक एवं प्राणिक शरीर के बीच संदेश पहुँचाने का कार्य करता है। घेरण्ड संहिता के अनुसार— 'मनोमय कोश बाह्य जगत् के अनुभवों एवं संवेदनाओं को अन्तर्दर्शी शरीर तक पहुँचाता है तथा कारण एवं अन्तर्दर्शी शरीरों के प्रभावों को स्थूल शरीर तक पहुँचाता है।'²⁰

(घ) विज्ञानमयकोश

व्यक्तित्व के मूलभूत आधार के रूप में विज्ञानमय कोश मानवीय देह में 'ऊर्जा के प्रमुख पाँच स्तरों में से चतुर्थ स्तर' है। इसे 'अंतःकरण', 'चेतना का परिष्कृत स्तर', 'सुपर अचेतन' एवं 'ईगो' इत्यादि नामों से भी जाना जाता है। विज्ञानमय कोश से तात्पर्य 'अचेतन सत्ता एवं भाव प्रवाह' से है। विज्ञानमय कोश का स्तर 'भाव-संवेदनात्मक' होता है। मनोमयकोश में व्याप्त होने के साथ ही यह विज्ञानमयकोश अत्यंत सूक्ष्म होता है।

विज्ञानमयकोश के कार्य—

इस स्तर पर व्यक्ति आत्मभाव व आत्मीयता को विस्तारित करता है। विज्ञानमय कोश के जागरण के फलस्वरूप व्यक्ति में दयालुता, सज्जनता, उदारता, संयमशीलता, परोपकारिता एवं शालीनता रूपी गुणों का विकास होता है। चेतना के

²⁰ सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द, (2012) घेरण्ड संहिता: कमेंट्री आन द योगा टीचिंग ऑफ महर्षि घेरण्ड, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— 394.

इस स्तर पर अज्ञात हलचल, असामान्य संभावनाएँ एवं अप्रत्यक्ष आत्माओं की स्थिति का आभास होता है।

विज्ञानमयकोश की साधना का चक्र एवं कुण्डलिनी पर पड़ने वाले प्रभाव—

विज्ञानमयकोश के जाग्रत होने के फलस्वरूप व्यक्ति को अन्तर्ज्ञान होता है। विज्ञानमयकोश के जागरण से व्यक्ति की 'प्रज्ञा' जाग्रत होती है।

(च) आनन्दमयकोश

आत्मा की मूलभूत स्थिति के अनुभव के रूप में आनन्दमय कोश मानवीय देह में 'ऊर्जा के प्रमुख पाँच स्तरों में अंतिम पाँचवाँ स्तर' है। आनन्दमय कोश से तात्पर्य 'आत्म-जागृति एवं आत्म-बोध' से है, अतः आनन्दमय कोश को आत्मज्ञान की स्थिति भी कहा जाता है। यह कारण शरीर से संबंधित होता है, जो कि अनुभवातीत है। आनन्दमय कोश को सर्वाधिक सूक्ष्म प्राणों का निवास स्थल कहा जाता है।

आनन्दमयकोश के कार्य—

आनन्दमय कोश की स्थिति में मनुष्य उल्लास रहित एवं संतुष्ट रहता है। इस स्थिति में मनुष्य भक्तियोग, ज्ञान, विचारणाएँ एवं कर्मयोग जैसी उच्च चेतना के स्तर को प्राप्त करता है। यह सत्-चित्-आनन्द की अवस्था होती है। इस स्तर पर मनुष्य को आत्म-साक्षात्कार, देवत्व की प्राप्ति, ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति, ईश्वर दर्शन लाभ, जीवन मुक्ति की प्राप्ति होती है।

आनन्दमयकोश की साधना का चक्र एवं कुण्डलिनी पर पड़ने वाले प्रभाव—

आनन्दमयकोश के जागरण के फलस्वरूप साधक परम संतोष एवं परम आनंद को प्राप्त करता है। आनन्दमयकोश की स्थिति में साधक का व्यक्तित्व परिष्कृत हो जाता है तथा वह हाड-माँस के शरीर में निवासरत होते हुए भी देवत्व, ऋषि, परमात्मस्वरूप एवं तत्त्वदर्शी हो जाता है। इस अवस्था में साधक स्वयं आनन्दित रहते हुए अन्य जनों को मध्य ज्ञान के प्रकाश को वितरित करता है।

इस प्रकार जीवन चेतना का क्रमशः विकास ही पंचकोशों का जागरण एवं पंचकोश की साधना कहलाती है। इसे भौतिक विकासवाद भी कहा जा सकता है।

5.1.3 चक्र एवं कुण्डलिनी का नाड़ियों से संबंध

योगविज्ञान में वर्णित नाड़ी के शाब्दिक अर्थ 'धारा या प्रवाह' के अनुसार मनुष्य के अतीन्द्रिय या सूक्ष्म शरीर में स्थित सूक्ष्म वाहिकाओं को 'नाड़ी' कहा जाता है, जिनके माध्यम से व्यक्ति के शरीर में 'प्राण शक्ति' प्रवाहित होती है। मनुष्य के स्थूल शरीर में यह नाड़ियाँ तंत्रिकाओं से संबंधित रहती है। घेरण्ड संहिता नामक हठयौगिक ग्रंथ में इन नाड़ियों की संख्या बहत्तर हजार वर्णित है, इनमें से चक्र एवं कुण्डलिनी साधना के दृष्टिकोण से तीन नाड़ियों को प्रमुख एवं महत्वपूर्ण माना गया है। ये तीन प्रमुख नाड़ियाँ निम्न हैं— 1. इड़ा, 2. पिंगला, 3. सुषुम्ना। इन तीन नाड़ियों में भी अत्यधिक प्रमुख नाड़ी 'सुषुम्ना' है क्योंकि संपूर्ण नाड़ियों के साथ इड़ा तथा पिंगला नाड़ी भी इस सुषुम्ना नाड़ी के अधिनस्थ रहती है।²¹

सुषुम्ना नाड़ी की स्थिति

“सुषुम्ना नाड़ी का निवास मेरुदण्ड—नलिका में है। कपालप्रदेश के पीछे की ओर की हड्डी या पश्चादस्थि में उपस्थित लघु—मस्तिष्क के मध्यभाग के समक्ष चतुर्थ कोष्ठ तथा सेतु के निम्नभाग से सुषुम्ना नाड़ी का निकास होता है। पश्चादस्थि के निम्नभाग से निकलकर मेरुदण्ड एवं ग्रीवा के प्रथम कशेरु के बीच होती हुई सुषुम्ना नाड़ी, ग्रीवा—पृष्ठवंश के कशेरुओं में से गुजरती हुई कटिप्रदेश के प्रथम द्वितीय कशेरु के सम्मुख 'शंकु' के आकार की हो जाती है, यही 'शंकु शिखर' कहलाता है। यहाँ से आगे इसी शंकु की नोक से एक पतला श्वेतसूत्र निकलकर 7—8 इंच नीचे जाकर गुदास्थि से जा मिला है। यह सुषुम्ना नाड़ी का मध्य—बंधन कहलाता है।”²²

²¹ सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द, (2012) घेरण्ड संहिता: कमेंट्री आन द योगा टीचिंग ऑफ महर्षि घेरण्ड, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— 391.

²² पुरुषार्थी, डॉ., योगेन्द्र और सरस्वती, स्वामी शिवानन्द, (1983), वेदों में योगविद्या, वैगिक शोध संस्थान, योगधाम, ज्वालापुर, हरिद्वार, पृष्ठ संख्या— 70.

पिंगला एवं इडा नाड़ी की स्थिति

“सुषुम्ना के दोनों ओर गाठोंवाली दो नाड़ियाँ हैं, जो गुदास्थि के सम्मुख जा मिलती हैं। इन गाँठों का रंग कुछ लालिमा लिये हुए धूसर या पिंगल वर्ण है, इसी के आधार पर, इस नाड़ीजाल का नाम ‘पिंगल नाड़ी मण्डल’ रखा गया है। सुषुम्ना के दक्षिण भाग में स्थित नाड़ी ‘पिंगला नाड़ी’ तथा वामभाग में स्थित ‘इडा नाड़ी’ कहलाती है। अन्नमार्ग-सम्बन्धी ग्रंथियों को जानेवाली नाड़ियाँ ‘इडा नाड़ियाँ’ कहलाती हैं। पिंगला-माला के समस्त नाड़ीजाल का सम्बन्ध सुषुम्ना तथा मस्तिष्क नाड़ी सूत्रों से बड़ी घनिष्टता से है।”²³

नाड़ी-मण्डल के कार्य

नाड़ी-मण्डल के अंतर्गत सभी नाड़ियाँ विद्युत्-तार की भाँति संदेशवाहक के रूप में शरीरस्थ कार्यरत रहती हैं। शरीर में जीवनी-शक्ति के संचार में सहायक होती हैं। नाड़ियाँ, संदेशवाहक एवं संवेदनिक वाहक के रूप में ऐच्छिक एवं अनैच्छिक क्रियाओं को सम्पन्न करती हैं। ये नाड़ी-सूत्र ही शरीर के रक्षकरूपी हृदय एवं मस्तिष्क के संचालन का कार्य करती हैं। अमृतनोपनिषद् के दृष्टिकोण से, संपूर्ण नाड़ी संस्थान दो प्रकार के तारों से बने हुए हैं— प्रथम ‘केन्द्रगामी तार’ जो की सांवेदनिक होते हैं और द्वितीय ‘केन्द्रत्यागी सूत्र’ जो गति-उत्पादक होते हैं।²⁴ योगोपनिषद् के अनुसार— “यह नाड़ी-सूत्र ही शरीर के विभिन्न अंगों से प्रारम्भ होकर शरीर की गतिविधियों के समाचारों को लेकर सुषुम्ना-मार्ग से मस्तिष्क तक पहुँचाते हैं, इसलिए इन्हें ‘केन्द्रगामी-सूत्र’ कहते हैं। दूसरे ‘केन्द्रत्यागी-सूत्र’ हैं, जो मस्तिष्क और सुषुम्ना से आरंभ होकर मस्तिष्क की अनुमति और ज्ञान को लेकर शरीर में प्रसारण कर देते हैं।”²⁵

²³ पुरुषार्थी, डॉ., योगेन्द्र, और सरस्वती, स्वामी शिवानन्द, (1983), *वेदों में योगविद्या*, वैगिक शोध संस्थान, योगधाम, ज्वालापुर, हरिद्वार, पृष्ठ संख्या— 71.

²⁴ शास्त्री, केशवलाल. वी., (2014), *उपनिषत्सञ्चयनम्: ईशाद्व्यष्टोत्तरशतोपनिषदः* चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, पृष्ठ संख्या— 38.

²⁵ पुरुषार्थी, डॉ., योगेन्द्र, और सरस्वती, स्वामी शिवानन्द, (1983), *वेदों में योगविद्या*, वैगिक शोध संस्थान, योगधाम, ज्वालापुर, हरिद्वार, पृष्ठ संख्या— 72.

चक्र एवं कुण्डलिनी साधना में नाड़ियों का महत्व

अमृतनोपनिषद् के अनुसार मेरुदण्ड के मध्य में और मेरुदण्ड के ऊपर स्थित मुख्य नाड़ी सुषुम्ना में प्रमुख छः चक्र गुंथे हुए अवस्थित हैं।²⁶ ये चक्र ऊर्जा के सूक्ष्म विद्युत चुम्बकीय चैनलों, सुषुम्ना नाड़ी से जुड़े होते हैं। यह सुषुम्ना नाड़ी ही कुण्डलिनी का पथ कहलाती है। व्यक्ति के शरीर में 'प्राण शक्ति' को प्रवाहित करने के फलस्वरूप चक्र एवं कुण्डलिनी साधना में नाड़ियाँ विशेष संबंध रखते हुए अपना महत्व सुनिश्चित करती हैं। योगविज्ञान के संदर्भ में नाड़ी से तात्पर्य उस पथ से है जिससे होकर शरीरस्थ ऊर्जा प्रवाहित होती है, साथ ही ये नाड़ियाँ शरीरस्थ प्रमुख नाड़ीचक्रों को संयुक्त करती हैं।

अमृतनोपनिषद् के अनुसार क्रमशः अपने दाहिने तथा बायें भाग में पिंगला तथा इड़ा नाड़ियों को लिये हुए मेरुदण्ड के केंद्र में स्थित सुषुम्ना नाड़ी एक 'आध्यात्मिक-मार्ग' स्वरूप होती है, जो मूलाधार चक्र से आरम्भ होकर सहस्रार चक्र तक जाती है। इसी प्रकार क्रमशः मूलाधार चक्र के दाहिने तथा बायें भाग में पिंगला तथा इड़ा नाड़ियाँ निकलकर एक दूसरे के विपरीत दिशा में एक वक्राकार पथ को निर्मित करते हुए मेरुदण्ड में सर्पिल गति से ऊपर की ओर चढ़ती हुई आज्ञा चक्र के दाहिने भाग में पिंगला नाड़ी एवं आज्ञा चक्र के बायें भाग में इड़ा नाड़ी समाप्त होती है। इस प्रकार शरीरस्थ प्रमुख चक्रों को आपस में संयोजित करते हुए नाड़ियाँ कुण्डलिनी शक्ति के अवरोहण हेतु पथ निर्मित करती हैं। इस सुषुम्ना नाड़ी में ही प्रमुख चक्र स्थित रहते हैं।²⁷

ध्यान में सफलता प्राप्त करने हेतु परिशुद्ध इड़ा तथा पिंगला नाड़ियाँ अति आवश्यक होती हैं। इन दोनों नाड़ियों के शुद्ध एवं संतुलित होने से मन नियंत्रित होता है, तब सुषुम्ना नाड़ी प्रवाहमान हो जाती है, फलस्वरूप कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होकर चक्रों का भेदन करते हुए उर्ध्वरोहण करती हुई सुषुम्ना मार्ग से उपर चढ़ती हुई सहस्रार चक्र में पहुँचकर अपने उत्पत्ति केंद्र या स्रोत में मिल जाती है। हठ

²⁶ शास्त्री, केशवलाल. वी., (2014), उपनिषत्सञ्चयनम्: चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 38.

²⁷ शास्त्री, केशवलाल. वी., (2014), उपनिषत्सञ्चयनम्: ईशाद्वयोत्तरशतोपनिषद्: चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, अनुच्छेद- 2, पृष्ठ संख्या- 38.

प्रदीपिका के अनुसार, जब शरीरस्थ नाड़ियाँ निर्मल एवं परिशुद्ध हो जाती हैं तब नाड़ियों के शुद्धि के लक्षण प्रत्यक्ष होने लगते हैं, जैसे साधक का शरीर अवश्य रूप से दुबला-पतला एवं चमक युक्त कांतिमय हो जाता है।²⁸

शिव संहिता में परिशुद्ध नाड़ियों के फलस्वरूप प्राप्त परिणामों का वर्णन किया गया है जिसके अनुसार नाड़ियों के शुद्ध होने पर योगी का शरीर सुगन्धित, संतुलित, कांतिमय एवं स्वर साध्य बन जाता है।²⁹

सुषुम्ना नाड़ी में ध्यानस्थ होना अतिशीघ्र फलदायक होता है। “इस सुषुम्ना नाड़ी में स्थान विशेषों पर सूक्ष्म तन्तुओं के पुंज अनुभव किये गये हैं, जिन्हें ‘चक्र’ कहते हैं। योगदर्शन के रचयिता महर्षि पतंजलि द्वारा भी सुषुम्ना नाड़ी में स्थान विशेषों पर स्थित इन चक्रों में संयम करने के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली विभिन्न सिद्धियों का वर्णन किया गया है।”³⁰

मानव शरीरस्थ नाड़ियों में ध्यान करने का फल योगोपनिषदों के साथ-साथ सामवेद में उत्तमता से व्याख्यायित है। अतः सामवेद एवं ऋग्वेद के अनुसार— “मेधा में तीर्णतम उपासक की पीठ की अस्थियों में इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना नामक तीन प्रमुख नाड़ियाँ हैं जो कि उपासक के लिए सम्पद् रूप हैं। इन नाड़ियों में परमेश्वर धारारूप में प्रेरणाएँ देता है। तदन्तर उत्तम कर्मशील और प्राज्ञ-परमेश्वर इस उपासक की योजनाओं और योग-साधनाओं को विशेष रूप से सिद्ध करता हैं।”

सामवेद में सुषुम्ना नाड़ी को ध्यान करने हेतु प्रमुख नाड़ी माना गया है, क्योंकि मानव शरीर-विज्ञान के आधार पर शरीरस्थ ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों के संदेश का वहन करने वाली नाड़ियाँ इस सुषुम्ना नाड़ी की सहायता से ही निगमित होकर शरीर के कार्यों का संपादन करती हैं। अतएव चक्र एवं कुण्डलिनी साधना में नाड़ियों का विशेष महत्व है।

²⁸“यदा तु नाडीशुद्धिः स्यात्तदा चिह्नानि बाह्यतः।

कायस्य कृशता कान्तिस्तथा जायेत निश्चितम्।।” हठ प्रदीपिका- 2/19.

²⁹“चिह्नानि यागिनो देहे दृश्यन्ते नाडी शुद्धितः।

कथ्यन्ते तव तानि संक्षेपतो मया।

समकायः सुगन्धिश्च सुकान्तिः स्वरसाधकः।।” शिव संहिता- 3/30.

³⁰“त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वैरयद्रयम्।

मिमीते अस्य योजना वि सुकृतुः।।” सामवेद- 1015, ऋग्वेद-9/102/3.

5.1.4 चक्र एवं कुण्डलिनी का प्राण या दश वायु से संबंध

साधारणतः प्राण शब्द को 'श्वास' के रूप में जाना जाता है, संस्कृत शब्द 'प्राण' से तात्पर्य जीवनी शक्ति, श्वास से है। भारतीय दर्शन एवं योग में 'प्राण' निर्जीव वस्तुओं सहित समस्त स्तरों पर वास्तविकता में व्याप्त है। शिव संहिता के अनुसार— “वासनाओं से चित्रित, अनादि या जन्म-जन्मांतरों के कर्म संस्कारों से लिप्त अहंकारभाव से युक्त कहा गया प्राण हृदय कमल में निवास करता है।” शिव संहिता के अनुसार— मानव शरीरस्थ चेतन ऊर्जा स्वरूप 'प्राणतत्व' मुख्य रूप से एक ही है, फिर भी कार्य/वृत्तियों के भेद से इस प्राण के अनेक नाम हैं। मानव के शरीर के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में सक्रिय प्राणतत्व की क्रियाशीलता की बुनियाद पर इसे प्रमुख दस भागों में विभाजित किया गया है। जिन्हें पाँच प्राण एवं पाँच उपप्राण या गौण प्राण कहा जाता है—

पाँच मुख्य प्राण— 1. प्राण, 2. अपान, 3. व्यान, 4. उदान, 5. समान।

पाँच गौण प्राण— 1. नाग, 2. कूर्म, 3. कृकल, 4. देवदत्त, 5. धनञ्जय।³¹

वशिष्टसंहिता में भी प्रमुख नाड़ियों में संचरित वायु की संख्या दस ही वर्णित है, साथ ही इन सभी वायु का शरीर में यथाक्रम स्थान एवं कार्यों का वर्णन भी किया गया है।³² शिव संहिता में, इन दश प्राणों में से प्रथम पाँच (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान) को मुख्य वायु कहा गया है, तथा इन मुख्य पाँच वायु में भी प्राण तथा अपान वायु को श्रेष्ठतम कार्यों का संचालन करने वाले बताये गये हैं। पाँच उपप्राण इन पाँच मुख्य प्राणों से निम्नानुसार जुड़े हुए होते हैं— 1. प्राण—नाग, 2. अपान—कूर्म, 3. समान—कृकल, 4. उदान—देवदत्त, 5. व्यान—धनञ्जय। ये पाँचों उपप्राण अपने निर्धारित कार्यों का संचालन करने के साथ ही मुख्य पाँच प्राणों के कार्यों का नियमन

³¹“प्राणो वसति तत्रैव वासनाभिरलङ्कृतः।

अनादिकर्मसंश्लिष्टः प्रोक्तोऽहंकारसंयुतः।।” शिव संहिता— 3/2.

“प्राणस्य वृत्तिभेदेन नामानि विविधानि च।

वर्तन्ते तानि सर्वाणि कथितुं नैव शक्यते।।” शिव संहिता— 3/3.

“प्राणोऽपानः समानश्चो दानो व्यानश्च पञ्चमः।

नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः।।” शिव संहिता— 3/4.

³² स्वामी महेशानन्द, (2009), *वशिष्टसंहिता योगकाण्ड*, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, पुणे, महाराष्ट्र, पृष्ठ संख्या— 8.

भी करते हैं। इस प्रकार इन दस प्राणों के संयोजन से प्राणमयकोश निर्मित होता है।³³

ब्रह्मविद्योपनिषद्³⁴, बृहदारण्यकोपनिषद्³⁵ तथा छान्दोग्योपनिषद्³⁶, वसिष्ठ संहिता²⁶ एवं शिव संहिता में वायु के क्रम का वर्णन एक सदृश ही किया गया है। इन यौगिक ग्रंथों में मानव के शरीर में इन दश वायु या प्राणों के स्थान तथा कार्यों का वर्णन किया गया है, जो कि प्रमुख चक्र संस्थानों से संबंधित हैं, इन्हें यहाँ निम्न तालिका के माध्यम से दर्शाया जा रहा है—

दशवायु	स्थान एवं संबंधित चक्र ³⁷	कार्य
मुख्य वायु/पंच प्राण		
1. प्राण	हृदयस्थल, अनाहत चक्र	श्वसन, जृम्भण और खँसना।
2. अपान	गुदास्थान, मूलाधार चक्र	मलमूत्र आदि का विसर्जन।
3. समान	नाभिमण्डल, मणिपुर चक्र	हान, उपादान एवं चेष्टा।
4. उदान	कण्ठप्रदेश, विशुद्धि चक्र	शरीर का उन्नयन।
5. व्यान	समस्त शरीर में व्याप्त	वृद्धि, अन्नरस का संपूर्ण शरीर में संचरण व पोषण।
गौण वायु/ पंच उपप्राण		
6. नाग	त्वचा, हड्डी इत्यादि।	डकार।
7. कूर्म	”	पलक झपकाना।
8. कृकल	”	भूख—प्यास।
9. देवदत्त	”	जंभाई।
10. धनञ्जय	”	हिचकी।

³³“अत्रापि वायवः पञ्च मुख्याः स्युर्दशतः पुनः।

तत्रापि श्रेष्ठकर्तारौ प्राणापानौ मयोदितौ।।” शिव संहिता— 3/6.

“दशनामानि मुख्यानि मयोक्तानीह शास्त्रके।

कुर्वन्ति तेऽत्र कार्याणि प्रेरितानि स्वकर्मभिः।।” शिव संहिता— 3/5.

³⁴ शास्त्री, केशवलाल. वी., (2014), उपनिषत्सञ्चयनम्: ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, सूत्र संख्या— 66–68, पृष्ठ संख्या— 346।

³⁵ शास्त्री, केशवलाल. वी., (2014), उपनिषत्सञ्चयनम्: ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, सूत्र संख्या—3/9/26.

³⁶ शास्त्री, केशवलाल. वी., (2014), उपनिषत्सञ्चयनम्: ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, सूत्र संख्या—3/13, 5/19–23.

³⁷“हृदिप्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले।

उदानः कण्ठदेशस्थो व्यानः सर्वशरीरगः।।” शिव संहिता— 3/7.

“नागादिवायवः पञ्च ते कुर्वन्ति च विग्रहे।

उद्गारोन्मीलनं क्षुत्तृजृम्भा हिक्कांच पञ्चमीम्।।” शिव संहिता— 3/8.

इस प्रकार शिव संहिता में वायुसाधना के अंतर्गत यह स्पष्ट रूप से वर्णित है कि मानव शरीरस्थ स्थित इन दस वायु या प्राणों का अपना-अपना एक निश्चित स्थान तथा उस स्थान विशेष से संबंधित कार्य निर्धारित होते हैं। जो साधक या योगी शरीरस्थ प्रमुख चक्र संस्थानों से संबंधित इन दस वायु का ज्ञान प्राप्त कर शरीर के समष्टि रूप को जान लेता है वह साधक इन प्रमुख वायु से संबंधित चक्रों का भेदन करते हुए जाग्रत कुण्डलिनी को अपने उत्पत्ति स्थान में पहुँचाकर निश्चितता के साथ सभी प्रकार के पाप कर्मों से विमुक्त हो जाता है, दुःखों का क्षय हो जाता है, जिससे इस संसारचक्र में निश्चय ही रोग नष्ट हो जाते हैं³⁸ तथा उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।³⁹ “साथ ही वेग से युक्त प्राणवायु, चेतना एवं क्रियाशक्ति को ग्रहण कर तथा समस्त चक्रों का भेदन करके ज्ञानशक्ति में विलीन हो जाता है।⁴⁰

ब्रह्मविद्योपनिषद् के अनुसार, मानव शरीरस्थ स्थित “पाँच प्रमुख प्राणवायु—प्राण, अपान, व्यान, उदान एवं समान पाँच कर्मेन्द्रियाँ के साथ मिलकर क्रियाशक्ति का बल बढ़ा देते हैं, और पाँच उपप्राण— नाग, कुर्म, कृकल, देवदत्त एवं धनञ्जय पाँच ज्ञानेन्द्रियों के साथ मिलकर ज्ञानशक्ति के बल को बढ़ा देते हैं।”⁴¹

5.1.5 चक्र एवं कुण्डलिनी का ग्रन्थियों से संबंध

सामान्यतः चक्रों एवं कुण्डलिनी के अस्तित्व एवं प्राथमिक महत्व को मानसिक स्तर पर स्वीकारा जाता है। किंतु कुछ अनुसंधानकर्ताओं⁴² के मतानुसार इन चक्रों की दैहिक अभिव्यक्ति को भी स्वीकारा गया है। उदाहरण स्वरूप— स्टीफेन स्टुर्गेस द्वारा प्रमुख छह चक्रों को रीढ़ की हड्डी के साथ तंत्रिका तंत्र एवं ग्रंथियों से संबद्ध कर अध्ययन किया गया है।⁴³

³⁸ “इदानीं क्लेशहान्यर्थं वायुसाधनं वक्तव्यं वायुसाधनम्।

योन संसारचक्रेऽस्मिन् रोगहानि भवेद् ध्रुवम्।।” शिव संहिता— 3/79.

³⁹ “अनेन विधिना यो वै ब्रह्माण्डं वेत्ति विग्रहम्।

सर्वपापनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम्।।” शिव संहिता— 3/9

⁴⁰ “गृहीत्वा चेतनां वायुः क्रियाशक्तिं च वेगवान्।

सर्वाश्चक्रा न्विजित्वा च ज्ञानशक्तौ विलीयते।।” शिव संहिता— 3/78.

⁴¹ “प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः।।” ब्रह्मविद्योपनिषद्— 66.

“पञ्चकर्मेन्द्रियैर्युक्ताः क्रियाशक्तिबलोद्यताः।

नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः।। ब्रह्मविद्योपनिषद्— 67.

“पञ्चज्ञानेन्द्रियैर्युक्ता ज्ञानशक्तिबलोद्यताः।।” ब्रह्मविद्योपनिषद्— 68.

⁴² सरस्वती, एम. डी., (2001), *कुण्डलिनी योगा*, टिहरी गढ़वाल, भारत, डिवाइन लाइफ सोसाइटी, फोल्डआउट चार्ट.

⁴³ स्टीफन स्टुर्गेस, (2015), *द योगा बुक*: वाटकिन्स पब्लिशिंग, पृष्ठ संख्या— 19–21.

प्रमुख संदर्भ ग्रंथों के आधार पर चक्र एवं कुण्डलिनी का ग्रन्थियों से संबंध⁴⁴ का संक्षिप्त वर्णन—

क्र.	प्रमुख चक्र	संबंधित ग्रंथियाँ एवं कार्य
1.	मूलाधार चक्र	यह जननेन्द्रिय और अधिवृक्क मज्जा से संबंधित है। यह चक्र शारीरिक स्तर पर काम—वासना, मानसिक स्तर पर स्थायित्व, भावनात्मक स्तर पर इंद्रिय—सुख तथा आध्यात्मिक स्तर पर सुरक्षा की भावना का नियंत्रण करता है।
2.	स्वाधिष्ठान चक्र	यह प्रजनन ग्रंथियों से संबंधित है। जो शारीरिक स्तर पर प्रजनन, मानसिक स्तर पर रचनात्मकता, भावनात्मक स्तर पर खुशी तथा आध्यात्मिक स्तर पर उत्सुकता की भावना का नियंत्रण करता है।
3.	मणिपुर चक्र	यह अधिवृक्क ग्रंथियों एवं पैंक्रियाज से संबंधित है। यह चक्र शारीरिक स्तर पर पाचन, मानसिक स्तर पर स्व—बल, भावनात्मक स्तर पर व्यापकता तथा आध्यात्मिक स्तर पर सभी उपादानों के विकास का नियंत्रण करता है।
4.	अनाहत चक्र	यह थाइमस ग्रंथि से संबंधित है। यह चक्र शारीरिक स्तर पर प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करना, मानसिक स्तर पर आवेश, भावनात्मक स्तर पर प्रेम तथा आध्यात्मिक स्तर पर समर्पण भाव को विकसित एवं नियंत्रित करता है।
5.	विशुद्धि चक्र	यह गलग्रंथि से संबंधित है जो थायरॉइड हार्मोन्स को उत्पन्न करती है। यह चक्र शारीरिक स्तर पर विशुद्ध संप्रेषण, मानसिक स्तर पर उन्मुक्त विचार, भावनात्मक स्तर पर स्वतंत्रता तथा आध्यात्मिक स्तर पर सुरक्षा भाव को नियंत्रित करता है।

⁴⁴ पेट्रीसिया मर्सिएर, (2007), *द चक्र बाइबिल*, ऑक्टोपस पब्लिशिंग ग्रुप लिमिटेड, पृष्ठ संख्या— 91, 127, 167, 199, 233, 302.

6.	आज्ञा चक्र	यह पीनियल ग्रंथि से संबंधित है जो मेलाटोनिन हार्मोन्स को उत्पन्न करती है। यह चक्र शारीरिक स्तर पर सोने व जागने की प्रक्रियाँ को, मानसिक स्तर पर कल्पना, अंतर्ज्ञान, भावनात्मक स्तर पर अहंभाव एवं परिस्थितियों से निपटने का साहस तथा आध्यात्मिक स्तर पर शुद्धता का नियमन करता है।
7.	सहस्रार चक्र	यह पिट्यूटरी या पियुष ग्रंथि से संबंधित है जो एमैन्चुल हार्मोन्स को उत्पन्न कर शारीरिक स्तर पर सभी अंतःस्रावी ग्रंथियों से संपर्क स्थापित करता है, मानसिक स्तर पर सार्वभौमिक चेतना व आंतरिक सौंदर्य, भावनात्मक स्तर पर एकता से जुड़ा होता है।

इस प्रकार प्रस्तुत तालिका से यह स्पष्ट हैं कि मानव शरीर में स्थित प्रमुख चक्र मानसिक या सूक्ष्म स्तर के साथ-साथ भौतिक शरीर से भी संबंधित है। लेखक पेट्रीसिया मर्सिएर द्वारा लिखित ग्रंथ में प्रमुख चक्रों से संबंधित ग्रंथियों, इन ग्रंथियों से स्रावित होने वाले हार्मोन्स तथा शरीर में इन हार्मोन्स के कार्यों की चर्चा शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक स्तर पर अंतः क्रिया के माध्यम से स्पष्ट की गयी है। तदर्थ, चक्र भौतिक शरीर को जीवनी शक्ति प्रदान करते हैं।

5.1.6 चक्र एवं कुण्डलिनी का जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीयावस्था से संबंध

ब्रह्मबिन्दूपनिषद् में साधक की अवस्थाओं का वर्णन करते हुए, 'आत्मा की एकता' के विषय में समझाया गया है। जिसके अनुसार जीवात्मा की निम्न चार अवस्थाएँ वर्णित हैं— जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीयावस्था।⁴⁵ ब्रह्मबिन्दूपनिषद् के अनुसार साधक को चाहिए कि वह अपनी जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति रूपी इन तीनों ही प्रकार की अवस्थाओं में परमात्मा का एक ही अंश 'आत्मा' का अनुभव करें। इस

⁴⁵ "एक एवात्मा मन्तव्यो जाग्रतस्वप्नसुषुप्तिषु।

स्नानत्रयाद्वयतीतस्य पुर्नजन्म न विद्यते।।" ब्रह्मबिन्दूपनिषत्— 11.

"एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः।

एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्।।" ब्रह्मबिन्दूपनिषत्— 12.

प्रकार इन तीनों अवस्थाओं में साधक आत्मा की एकता को समझते हुए इन तीनों अवस्थाओं को पार कर चौथी अवस्था अर्थात् 'तुरीयावस्था' में पहुँचता है, तब साधक भव-बंधन के चक्रव्यूह से विमुक्त होकर मुक्ति को प्राप्त हो जाता है, तथा ऐसे साधक का पुर्नजन्म कभी नहीं होता है।

ध्यानबिन्दुपनिषद् में मनुष्य के शरीर में घूमती हुई एवं विद्यमान हंसरूपी जीवात्मा की तीन अवस्थाओं का वर्णन किया गया है, जिन्हें 'त्रि-स्थान' कहकर भी संबोधित किया गया है।⁴⁶ प्रणव के स्वरूप 'ओंकार' में आठ अंग, पंच देवता इत्यादि के साथ ही इन 'तीन स्थानों' को अन्तर्भूत माना गया है। जीवात्मा की यह तीनों तीन अवस्थाएँ निम्न हैं— जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था। यह तीनों अवस्थाएँ जीवात्मा के इस संसार में आवागमन के तीन मार्ग— 'उत्तरायण या देवयान, दक्षिणायन एवं पुर्नजन्म' हैं।⁴⁷ ध्यानबिन्दुपनिषद् के अनुसार जीवात्मा की तीन अवस्थाएँ/ त्रि-स्थान एवं इन तीनों अवस्थाओं से संबंधित जीवात्मा के इस संसार में आवागमन के तीन मार्ग तथा परिणामों का वर्णन तालिकाबद्ध रूप में अग्रानुसार किया गया है—

जीवात्मा की चार अवस्थाएँ/ स्थान	चारों अवस्थाओं से संबंधित जीवात्मा के इस संसार में आवागमन के मार्ग	परिणाम
1. जाग्रत अवस्था	उत्तरायण या देवयान	मनुष्य देह त्यागने के पश्चात् जो जीवात्मा उत्तरायण मार्ग से जाती है वह जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करती है।
2. स्वप्न अवस्था	दक्षिणायन पितृयान	मनुष्य देह त्यागने के पश्चात् जो जीवात्मा दक्षिणायन मार्ग से जाती है वह जीवात्मा स्वर्ग लोक को पहुँचती है। पुण्यकर्मों के समाप्त होने पर इस जीवात्मा को

⁴⁶“उकारः सात्त्विकः शुक्लो मकारः कृष्ण तामसः।

अष्टांगं च चतुष्पादं त्रिस्थानं पञ्चदैवतम्।।” ध्यानबिन्दुपनिषद्-13.

⁴⁷“त्रिस्थानं च त्रिमार्गं च त्रिब्रह्म च त्रयाक्षरम्।

त्रिमात्रमर्धमात्रं वा यस्तं वेद स वेदवित्।।” ध्यानबिन्दुपनिषद्- 36.

		पुनः शरीर धारण करना पड़ता है।
3. सुषुप्ति अवस्था	पुर्नजन्म	साधारण मनुष्य की आत्मा शरीर को त्याग कर किसी दूसरे शरीर या योनि को प्राप्त करती है। उसे 'जायस्व-म्रयस्व' अर्थात् बार-बार जीने-मरने का मार्ग कहा जाता है।
4. तुरीया अवस्था/ अमात्र रूप	जीवनमुक्त अवस्था	यह जीवात्मा की तीनों अवस्थाओं से परे जीवात्मा तथा ब्रह्म कर तुरीय और निर्गुण या अमात्र रूप होता है। इस प्रकार प्रणव के अमात्रस्वरूप या अर्धमात्रा को जानकर साधक ज्ञानी बन जाता है तथा ब्रह्मनिष्ठ और जीवनमुक्त अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

ध्यानबिन्दुपनिषद् के अनुसार— 'ओंकारग्र विद्योतं तुर्यं तुरीयं' जो साधक प्रणव जप में तन्मय होकर निर्गुण ब्रह्म की अनिर्वचनीय अवस्था— तुरीय स्वरूप जो कि— अदृष्ट, अव्यवहार्य, अचिन्त्य एवं नेति—नेति है, को प्राप्त कर लेता है वह वस्तुतः प्रणव को जान लेता है अर्थात् वह साधक ओंकार के इस वर्णित स्वरूप एवं मर्म को भली-भाँति जान लेता है। इस प्रकार प्रणव के अमात्रस्वरूप या अर्धमात्रा को जानकर साधक ज्ञानी बन जाता है तथा ब्रह्मनिष्ठ और जीवनमुक्त अवस्था को प्राप्त हो जाता है।⁴⁸

⁴⁸ विद्यालंकार सुभाष, (2018), (20 योग उपनिषदों का मूल, विद्यालंकृता हिन्दी व्याख्या एवं श्लोकानुक्रमणिका सहित), प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली पृष्ठ संख्या 233

5.2 आध्यत्मिक प्रगति में चक्र और कुण्डलिनी साधना की उपयोगिता

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सूक्ष्म शरीर स्थित प्राण ऊर्जा के केंद्र रूपी चक्रों का अध्ययन एवं चक्र तथा कुण्डलिनी साधना का प्रयोग अनेकों वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों एवं शिक्षण प्रक्रियाँ के संदर्भ में किया जा रहा है, उदाहरण के लिए—प्राणिक हीलिंग, रेकी, विकिरण चिकित्सा, रंग या प्रकाश चिकित्सा, ध्वनि चिकित्सा, अरोमाथेरेपी, मंत्र और रत्न/मणिभ चिकित्सा, ताई-ची, एक्यूपंचर एवं एक्यूपेशर, ची-कुंग इत्यादि वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों में मानव शरीरस्थ सूक्ष्म ऊर्जा का पता लगाने एवं ऊर्जा के संतुलन हेतु चक्रों का प्रायोगिक अध्ययन किया जा रहा है। चक्रों एवं कुण्डलिनी से संबंधित यौगिक साधना के नियमित अभ्यासों के माध्यम से इन चक्रों को संतुलित किया जाता है और शरीरस्थ प्रणाली को शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्तर पर संतुलित एवं स्थिर रूप से कार्य करने हेतु सुगम बनाया जाता है। भारतीय योग शिक्षा सात प्रमुख चक्रों से संबंधित विशेष गुणों जैसे—

चक्रों के रंग, चक्रों से संबंधित मंत्र उच्चारण, चक्रों का पंच तत्वों से संबंध, चक्र एवं दैहिक ज्ञानेन्द्रियाँ एवं चक्रों का अंतःस्रावी ग्रंथियों से संबंध का निरूपण वर्तमान परिप्रेक्ष्य में करती है, साथ ही इन चक्रों के कार्यों का भी स्पष्ट वर्णन करती है, अतएव प्रस्तुत शोधकार्य के इस अनुच्छेद में वर्तमान परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में आध्यत्मिक प्रगति में चक्र और कुण्डलिनी साधना की उपयोगिता पर सारगर्भित रूप से प्रकाश डाला जा रहा है।

5.2.1 चक्रों का मनोदैहिक पक्ष

स्वामी सत्यानंद सरस्वती के अनुसार घेरण्ड संहिता नामक हठयौगिक ग्रंथ में वर्णित योग के अतीन्द्रिय विज्ञान के अंतर्गत स्पष्ट रूप से चक्रों को धारणा का केंद्र बतलाते हुए यह वर्णित किया गया है कि, “यौगिक अभ्यासों से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए किसी वस्तु पर एकाग्र होना आवश्यक है। मन को शरीर के क्षेत्र विशेष अर्थात् चक्रों या श्वास पर केन्द्रित करने से अभ्यास का प्रभाव बढ़ जाता

हैं।⁴⁹ हठयोग में वर्णित प्रमुख सात चक्रों में प्रत्येक चक्र की अपनी चेतना शक्ति है, जो व्यक्ति के भावनात्मक स्वास्थ्य से संबंधित है।

उदाहरणार्थ— मुख्यरूप से मूलाधार चक्र मेरुदण्ड के आधार पर स्थित होता है, और इस चक्र का संबंध 'सुरक्षा, अस्तित्व, एवं आधारभूत मानव वृत्ति' से होता है। "मूलाधार चक्र का मानव शरीरस्थ जननेन्द्रियों से संबंधित होने के कारण इस चक्र का संबंध यौन-जीवन से होता है। अतः मूलाधार क्षेत्र में मन को एकाग्र कर चक्र के मंत्र का उच्चारण करने से स्पन्दनों का अनुभव होता है, जिससे संबंधित शारीरिक अंग में उद्दीपन होता है एवं क्रियाशीलता बढ़ती है।"⁵⁰

स्वाधिष्ठान चक्र, सैक्रम स्थित होता है तथा इस चक्र का संबंध दैहिक स्तर पर प्रजनन कार्य एवं मानसिक स्तर पर आनन्द से संबंधित होता है। मणिपुर चक्र, उदर प्रदेश में स्थित होता है तथा इस चक्र का संबंध दैहिक स्तर पर पाचन शक्ति एवं मानसिक स्तर पर शौर्यता, हठधर्मिता, आत्मसम्मान, व्यक्तिगत शक्ति एवं भय से संबंधित होता है। अनाहत चक्र वक्ष प्रदेश में स्थित होता है तथा इस चक्र का संबंध दैहिक स्तर पर रक्त संचरण, एवं मानसिक स्तर पर प्यार, मानसिक शांति एवं भक्तिभाव से संबंध है। विशुद्धि चक्र ग्रीवा प्रदेश में स्थित होता है तथा इस चक्र का संबंध दैहिक स्तर पर थाइरॉयड हार्मोन्स के स्राव एवं संतुलन से होता है तथा मानसिक स्तर पर आत्म- अभिव्यक्ति एवं बाह्य वातावरण के प्रति ग्रहणशीलता से है। आज्ञा चक्र का स्थान दोनों भौहों के मध्य है तथा यह मुख्यतः अन्तर्ज्ञान, बौद्धिकता, परिस्थितियों से निपटने की क्षमता, कल्पना एवं दूरबोध क्षमता जैसी सूक्ष्म शक्तियों से संबंधित होता है। अन्तिम चक्र के रूप में शीर्ष प्रदेश स्थित सहस्रार चक्र का संबंध आंतरिक एवं बाह्य सौन्दर्यता, आध्यात्मिक प्रवृत्ति से संबंधित होता है। यौगिक अभ्यासों के माध्यम से इन चक्रों को मनोदैहिक स्तर पर संतुलित कर व्यक्ति की शारीरिक क्रिया प्रणाली और भावनात्मक दोनों ही पक्षों को स्थिर एवं संतुलित रूप से कार्य करने हेतु सक्षम बनाया जाता है।

⁴⁹ सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द. (2012) *घेरण्ड संहिता: कमेंट्री आन द योगा टीचिंग ऑफ महर्षि घेरण्ड*, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— 385.

⁵⁰ सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द, (2002) *कुण्डलिनी योग*, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या—435, 432 433.

चक्रों का ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों से संबंध

सभी चक्रों के दो पक्ष होते हैं— 1. ग्राह्य, 2. सक्रिय। इस प्रकार इन दोनों पक्षों के माध्यम से चक्र ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों से संबंधित होकर क्रियाशील होते हैं। “उदाहरणार्थ— आज्ञा चक्र अतीन्द्रिय एवं अन्तर्प्रज्ञा ऊर्जा को तो ग्रहण करता ही है, वह सूक्ष्म तथा दूरबोध के स्तर पर भी संचारण का कार्य करता है। विशुद्धि चक्र द्वारा उस अन्तर्ज्ञान की अभिव्यक्ति व संचारण होता है। इसके साथ ही इसके माध्यम से अनाहत द्वारा महसूस की गयी करुणा तथा मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र द्वारा हुई अनुभूतियों की भी अभिव्यक्ति होती है।” “चूंकि ऊर्जा सभी चक्रों से होकर गुजरती है, इसलिये किसी एक चक्र की क्रियाशीलता के कारण दूसरे चक्र भी प्रभावित होते हैं। उदाहरणार्थ— अनाहत चक्र के क्रियाशील होने पर मणिपुर तथा स्वाधिष्ठान चक्र भी प्रेम—प्रधान हो जाते हैं। इसके पश्चात् सभी अन्य चक्र उसके सहयोगी के रूप में कार्यरत रहते हैं।”

इसी संदर्भ में वर्तमान में किये गये शोध—अध्ययनों में पाया गया कि यौगिक मन—शरीर उपचारों के अंतर्गत चक्र अनुभव, श्वास चिकित्सा, निर्देशित कल्पना और माइंडफुलनेस मेडिटेशन का उपयोग करके जीवन की गुणवत्ता में सुधार सार्थक रूप से संभव है।⁵¹ चक्र पर आधारित पुस्तकों— ‘शमिज्म एंड तंत्रा इन द हिमालयास’⁵², एवं ‘अ हेण्डबुक ऑफ चक्रा हीलिंग: स्पीरिचुअल प्रेक्टिस फॉर हेल्थ’⁵³, हार्मोनी, एण्ड इनर पीस’⁵⁴, ‘चक्र के रहस्वाद का परिचय’ तथा ‘तंत्र: मुक्ति के लिए एक बहुत गलत समझा पथ’⁵⁵ के समीक्षात्मक अध्ययन में भी चक्रों के रहस्यों को उजागर करने के साथ ही चक्रों का स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया गया है। इसी से संबंधित हिरोशि मोटोयामा द्वारा वर्ष 2014 में लिखित पुस्तक— थ्योरिस ऑफ द

⁵¹ Fernros, L., Furhoff, A. K., & Wändell, P. E. (2008). Improving quality of life using compound mind-body therapies: evaluation of a course intervention with body movement and breath therapy, guided imagery, chakra experiencing and mindfulness meditation. *Quality of life research*, 17(3), 367-376.

⁵² Müller-Ebeling, C., Ratsch, C., & Shahi, S. B. (2002). *Shamanism and Tantra in the Himalayas*. Thames & Hudson.

⁵³ Govinda, K. (2002). *A handbook of chakra healing: Spiritual practice for health, harmony, and inner peace*. Konecky Konecky.

⁵⁴ Krishnakumar, P. R. (1992). An introduction to the mysticism of The Sri Chakra. *Ancient science of life*, 12(1-2), 289.

⁵⁵ Long, J. D. (2016). Tantra: A Much-Misunderstood Path to Liberation. *Prabuddha Bharata*, (January issue), 157-167.

चक्रासः ब्रिज टू हॉयर कॉन्सिअसनेस में उन व्यक्तियों पर किये गए शरीर क्रिया विज्ञान संबंधी एवं शारीरिक प्रयोगों की व्याख्या के साथ विस्तृत परिणाम दिए गए हैं, जिन्होंने सही योग अभ्यास के माध्यम से चक्रों को जगाया है, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन किए हैं और इसके परिणामस्वरूप कुछ असाधारण क्षमताएँ विकसित की हैं, जिसका संक्षिप्त वर्णन निम्नानुसार हैं— ‘चक्र यंत्र परीक्षण’ में उनके मणिपुर और अनाहत चक्रों को माप के लिए चुना गया था। इन चक्रों के सामने विद्युत क्षेत्र के कंपनों की लगातार तीन मिनट तक निगरानी की गयी। जिसे एक-एक मिनट की तीन अलग-अलग अवधियों— चक्र पर एकाग्रता से पहले, एकाग्रता के दौरान और एकाग्रता के बाद में संपन्न किया गया।⁵⁶ यह इस धारणा का समर्थन करने वाले प्रायोगिक साक्ष्य का एक उदाहरण है कि चक्र पर मानसिक एकाग्रता उस चक्र विशेष को इस तरह से सक्रिय करती है कि अंततः उस चक्र पर एकाग्रता के माध्यम से स्वेच्छा से अधिक मात्रा में ऊर्जा का उत्सर्जन करना संभव हो जाता है।

आर. बी. के ए. एम. आई. डाटा इस ऊर्जा की अधिकता को दर्शाता है, और पेट तथा प्लीहा मेरिडियन में दाएं और बाएं के बीच बड़ी अस्थिरता दिखाता है। एक अन्य उदाहरण के रूप में, यहाँ एक योगी के बारे में कुछ जानकारी दी गयी है जो अपने अनाहत चक्र को जगाने और अपने हृदय कार्यो पर स्वैच्छिक नियंत्रण प्राप्त करने का दावा करता है।

5.2.2 चक्रों का आध्यात्मिक पक्ष

चक्रों के आध्यात्मिक पक्ष के अंतर्गत घेरण्ड संहिता नामक योगग्रंथ के अनुसार— प्रत्येक चक्रों के प्रतीकात्मक स्वरूप कमल के दलों की निश्चित संख्या एवं इनका विशेष रंग यह दर्शाता है कि “आध्यात्मिक जीवन में साधक को तीन अवस्थाओं को पार करना होता है— अविद्या, जिज्ञासा एवं प्रबोधन। यह चेतना की निम्नतम अवस्था से उच्चतम अवस्था तक आध्यात्मिक विकास का चित्रण करता है।”

⁵⁶ मोटोयामा, एच., (2014) *थ्योरिस ऑफ द चक्रासः ब्रिज टू हायर कॉन्सिअसनेस*, मोतिलाल बनारसीदास पब्लिकेशन्स, पृष्ठ संख्या— 273–274, 275, 266, 25.

प्रत्येक चक्रों के कमल के दलों पर वर्णित बीजमंत्रों का संबंध चक्रों एवं इन चक्रों से संयुक्त नाड़ियों से संबंधित अतीन्द्रिय ऊर्जा की भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियों को दर्शाते हैं। प्रमुख सात चक्रों में लीन प्राण को नाड़ियों के जाल द्वारा तीनों शरीरों और मनो में उपयुक्त रूप और आयाम में वितरित किया जाता है। यौगिक अभ्यासों के माध्यम से इन चक्रों पर एकाग्रता का अभ्यास करने से चक्रों में तीव्रता से प्राण का प्रवाह होकर ये शरीरस्थ चक्र सक्रिय होते हैं परिणामतः स्थूल शरीर स्थित मस्तिष्क के क्षेत्र विशेषों का जागरण होता है एवं साथ ही सूक्ष्म व कारण शरीर में संगत शक्तियों का जागरण होता है, फलस्वरूप मानव चेतनता के उच्च स्तरों का अनुभव करता है।⁵⁷ जैसे-जैसे चक्र सक्रिय और जागृत होते हैं, मनुष्य न केवल अस्तित्व के उच्च क्षेत्रों के बारे में जागरूक हो जाता है, बल्कि उन क्षेत्रों में प्रवेश करने की शक्ति भी प्राप्त कर लेता है, और फिर निचले आयामों का समर्थन करता है और उन्हें जीवन देता है।¹⁵ सही तरीकों से चक्रों को सक्रिय और जागृत करके, एक व्यक्ति विकसित हो सकता है और अस्तित्व के उच्च स्तर का आनंद ले सकता है।

हिरोशि मोटोयामा द्वारा वर्ष 2014 में लिखित पुस्तक— थ्योरिस ऑफ द चक्रास: ब्रिज टू हॉयर कॉन्सिअसनेस में उन व्यक्तियों पर किये गए शरीर क्रिया विज्ञान संबंधी एवं शारीरिक प्रयोगों की व्याख्या के साथ विस्तृत परिणाम दिए गए हैं, जिन्होंने अभ्यास के माध्यम से चक्रों को जगाया है, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन किए हैं और इसके परिणामस्वरूप कुछ असाधारण क्षमताएँ विकसित की हैं। जिसका वर्णन यहाँ निम्न बिंदुओं के अंतर्गत किया जा रहा है⁵⁸—

(अ) चक्र एवं नाड़ियों की प्रकृति और कार्य

चक्र शरीर की ऊर्जा प्रणालियों के केन्द्र हैं, जो शरीर के तीन अलग-अलग आयामों— स्थूल, सूक्ष्म और कारण में मौजूद हैं। प्रत्येक चक्र के तीन स्तर होते हैं, और चक्र का प्रत्येक स्तर इसी आयाम में कार्य करता है। हालाँकि, ये कार्य एक-दूसरे से निकटता से संबंधित हैं। चक्र भौतिक शरीर और चेतना के बीच, सूक्ष्म

⁵⁷ सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द (2012), *घेरण्ड संहिता: कमेंट्री आन द योगा टीविंग ऑफ महर्षि घेरण्ड*, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या— पृष्ठ संख्या— 385.

⁵⁸ मोटोयामा, एच. (2014), *थ्योरिस ऑफ द चक्रास: ब्रिज टू हायर कांशियसनेस*, मोतिलाल बनारसीदास पब्लिकेशन्स, पृष्ठ संख्या— 281—283.

शरीर और मानस के बीच और कारण शरीर और कारण के बीच, अर्थात् प्रत्येक आयाम के शरीर और मन के बीच मध्यस्थ हैं। इसके अलावा, चक्र तीनों शरीरों और दिमागों के बीच अन्तर्संबंध को समग्र रूप से एकीकृत करने का कार्य करते हैं। प्रत्येक चक्र की अपनी ध्वनियाँ (मंत्र) और ज्यामितीय आकृति (यंत्र) होती हैं, जिन्हें अतीन्द्रिय माना जा सकता है। चक्र, भौतिक शरीर की ऊर्जा प्रणाली के केन्द्रों के रूप में, एक्यूंपंकचर के कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं के अनुरूप प्रतीत होते हैं और ऊर्जा चैनल के रूप में नाड़ियाँ अनिवार्य रूप से मेरिडियन के समान प्रतीत होते हैं। जाग्रत चक्र की आभा अधिक चमकीली होती है और निष्क्रिय चक्र की तुलना में बड़ी होती है। एक ही व्यक्ति में भी, एक जागृत चक्र दूसरे चक्र की तुलना में अधिक चमकीला चमकता है और उस चक्र से निकलने वाली ऊर्जा अधिक मजबूत होती है। एक चक्र के जागरण को उस चक्र से संबंधित समस्त क्षमताओं के जागरण से पहचाना जाता है।

(ब) कर्म और चक्रों के बीच संबंध

प्रत्येक व्यक्ति में एक चक्र दूसरों की तुलना में स्वाभाविक रूप से अधिक सक्रिय होता है, जिसके अनुसार यह व्यक्ति के कर्म और स्वभाव के अनुसार अलग-अलग होता है। योगाभ्यास के माध्यम से सबसे आसानी से कौन से चक्र जाग्रत होता है, यह फिर से कर्म और व्यक्ति के स्वभाव पर निर्भर करता है। इन दो कारकों के कारण जो चक्र सबसे अधिक सक्रिय रूप से काम कर रहा है वह आमतौर पर पहले जागता है।

(स) आध्यात्मिक ज्ञान और चक्र

आत्मज्ञान की ओर आध्यात्मिक उन्नति में चक्रों को जगाने का अत्यधिक महत्व है। चक्रों के जागरण के बिना ज्ञानोदय प्राप्त करना बहुत कठिन है।

(द) अति अभ्यास— एक चक्र का दुरुपयोग

एक चक्र का सीमा से अधिक अभ्यास हानिकारक भी है। उदाहरण के लिए मणिपुर चक्र के अति प्रयोग से पाचन अंगों में रोग होता है और अनाहत के कारण

हृदय रोग होता है। इस तरह के अति प्रयोग को एक निश्चित सीमा से अधिक ले जाने से मृत्यु भी हो सकती है।

आध्यात्मिक प्रगति में चक्रों एवं कुण्डलिनी की उपयोगिता पर आधारित वर्तमान शोधकार्यों की समीक्षा

चेस, सी. आर. (2018)⁵⁹ ने अपने अध्ययन 'द ज्योमेट्री ऑफ इमोशन्स: यूजिंग चक्रा, एक्यूपंकचर, एंड 5-फेज थ्योरी टू डिस्क्राइब पर्सोनालिटी आर्किटोटाइप्स फॉर क्लीनिकल यूज' के अंतर्गत व्यक्तित्व के आदर्शों का वर्णन करने हेतु नैदानिक उपयोग के लिए चक्र, एक्यूपंकचर और पाँच-चरण सिद्धांत का उपयोग किया। परिणामतः चौदह व्यक्तित्व मूलरूप (सात सकारात्मक भावनाओं से बने और सात नकारात्मक भावनाओं से बने) की पहचान की गयी। याद रखने में आसान नाम और भावनाओं के परिचित पैटर्न जो एक पेंटागन (चक्र एक्यूपंकचर के लिए अनुकूलित) के नोड्स में मैप किए जाते हैं का उत्पादन किया गया। नैदानिक मामलों में यह पाया गया कि रोगी के कामकाजी जीवन संघर्षों के परिणामस्वरूप इरिटेबल बाओल सिन्ड्रोम, अनिद्रा, यकृत की बीमारी और पुराने ऑस्टियोअर्थराइटिस की प्रस्तुति के अनुरूप नकारात्मक भावनात्मक पैटर्न का परिणाम है। निष्कर्षतः बीमारी से जुड़ी भावनाओं को समझने के लिए व्यक्तित्व के आदर्शों का नैदानिक मूल्य है।

लिंग, एच. डब्ल्यू. (2020)⁶⁰ ने अपने अध्ययन— 'ओलिगोस्पर्मिया के रोगियों में चक्र और ऊर्जा परिवर्तन' में पाया कि, पहले केस में तीन सत्रों के बाद एक और विट्रो निषेचन प्रक्रिया या आई. वी. एफ. ने स्पर्मेटोजोआ (2 से 20 मिलियन प्रति मिलिलीटर) में आश्चर्यजनक वृद्धि दिखायी, तथा आई.वी.एफ. प्रक्रिया के बाद उसकी पत्नी गर्भवती हो गयी। दूसरा रोगी दंपत्ति आई. वी. एफ. के उपयोग की आवश्यकताके बिना उपचार के एक महीने के भीतर एक प्राकृतिक गर्भावस्था प्राप्त करने में सक्षम था, निष्कर्षतः ओलिगोस्पर्मिया के रोगियों में ऊर्जा परिवर्तन और चक्र

⁵⁹ Chase, C. R. (2018). The geometry of emotions: Using chakra acupuncture and 5-Phase Theory to describe personality archetypes for clinical use. *Medical acupuncture*, 30(4), 167-178.

⁶⁰ Ling, H. W. (2020). Chakras and energy alterations in patients with oligospermia. *Archive of Urological Research*, 4(1), 010-016.

ऊर्जा की कमी होती है और अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए ऊर्जा स्तर पर उपचार महत्वपूर्ण है। वर्तमान में किए गये एक अन्य अध्ययन 'चक्र ध्यान अनुभवी लोगों में चिंता पर आत्म अन्वेषण' के अंतर्गत शोध परिणाम हेतु इस अध्ययन में उत्तरदाताओं के प्रत्येक चर के लिए वर्णनात्मक सांख्यिकी प्रस्तुत की और भावनात्मक स्वास्थ्य स्थिति धारणा के माध्यम से चक्र ध्यान अनुभव प्रेरणा या आत्म-अन्वेषण चिंता के बीच सहसंबंध विश्लेषण किया। इस प्रकार चक्र ध्यान अनुभव प्रेरणा और भावनात्मक स्वास्थ्य स्थिति धारणा और चिंता के बीच संबंधों पर पाथ-मॉडल को सत्यापित करने के साथ ही सुझाव भी दिया गया।⁶¹

अतएव आध्यात्मिक प्रगति में चक्रों एवं कुण्डलिनी की उपयोगिता पर आधारित वर्तमान शोधकार्यों की इस समीक्षा के निष्कर्षों से तथा साथ ही यह विवरण समीक्षा लेखों में वर्णित साक्ष्यों पर ध्यान केंद्रित करके व्यक्ति के समग्र विकास के विभिन्न घटकों पर चक्रों एवं कुण्डलिनी के जागरण के हस्तक्षेप के प्रभावों के वर्तमान साक्ष्य को सारांशित करती है। सामूहिक रूप से ये समीक्षाएँ ऐसे कई क्षेत्रों का सुझाव देती हैं जहाँ चक्र एवं कुण्डलिनी साधना लाभकारी हो सकती है।

⁶¹ Lim, S., & Lee, H. (2020). Self-exploration on anxiety in chakra meditation experienced people: The mediation effect of emotional health state perception. *International Journal of Social Welfare Promotion and Management*, 7(1), 15-22.

उपसंहार

उपसंहार

वैदिक साहित्य में उपनिषदों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सभी उपनिषदें ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन करती हैं। इनमें वेद मन्त्रों के गूढ़ अर्थों की व्याख्या की गई है। प्रत्येक उपनिषद् किसी न किसी वेद से सम्बद्ध है। इसी प्रकार पृथक्-पृथक् योगोपनिषदें भी पृथक्-पृथक् वेदों से सम्बद्ध हैं। प्रस्तुत शोध-अध्ययन में योगोपनिषदों के परिप्रेक्ष्य में चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा का विवेचनात्मक अध्ययन किया गया है। 'योगोपनिषद्' योगदर्शन के प्रकाश स्तम्भ रूपी ज्ञान के भंडारगृह हैं जो निरन्तर मानव जीवन को प्रकाशित करते आ रहे हैं। इन योगोपनिषदों में आत्मज्ञान का प्रकाश समेकित रूप से प्रवाहित होने के कारण इस ज्ञान प्रभा ने मनुष्य को सदा ही आकर्षित किया है। योग तकनीकों के सिद्धांत और अभ्यासों से संबंधित कुल 20 योग उपनिषद् हैं। इन योगोपनिषदों में योग से संबंधित ज्ञान आधारित चर्चा है जिनका मुख्य विषय कर्मयोग, राजयोग की सिद्धियाँ, योगाभ्यास की विधियाँ, आहार-विहार, आसन, नाडीशोधन प्राणायाम, मुद्रा-बन्ध, ध्यान और समाधि आदि का विस्तार से वर्णन मिलता है। इन विषयों के अतिरिक्त प्रत्येक योगोपनिषद् में योग साधना के अंतिम लक्ष्य के रूप में 'चक्र एवं कुण्डलिनी' की अवधारणा उल्लेखित है। परंपरागत रूप से प्रत्येक योगोपनिषद् किसी न किसी एक वैदिक शाखा से संबंधित है।

प्रस्तुत शोधकार्य की शोध परिकल्पना योगोपनिषदों के विशेष परिप्रेक्ष्य में चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा का सैद्धांतिक एवं विवेचनात्मक अध्ययन करना है। जिससे चक्रों एवं कुण्डलिनी के जागरण के संबंध में फैली भ्रांतियाँ दूर होने में मदद मिलेगी तथा चक्र एवं कुण्डलिनी साधना के इच्छुक साधकों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास संभव हो सकेगा। इस हेतु शोधार्थी द्वारा प्रत्येक वैदिक शाखा से संबंधित योगोपनिषदों का गहन अध्ययन कर चक्र एवं कुण्डलिनी के सैद्धांतिक पक्ष का विवेचनात्मक अध्ययन किया है, जिसे इस शोध प्रबंध में विभिन्न अध्यायों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। क्रमशः प्रथम एवं द्वितीय अध्याय में चक्र एवं कुण्डलिनी का सामान्य परिचय देते हुए शाब्दिक अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप को स्पष्ट कर हठयोगिक ग्रंथों में चक्र एवं कुण्डलिनी की अवधारणा व चक्र एवं कुण्डलिनी का नाडियों से

संबंध को वर्णित किया गया है। तृतीय एवं चतुर्थ अध्याय के माध्यम से वैदिक शाखा के कुल बीस योगोपनिषदों के संदर्भ में चक्र एवं कुण्डलिनी की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है। अंतिम पंचम अध्याय वर्तमान परिप्रेक्ष्य में चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा पर आधारित है, जिसमें चक्र और कुण्डलिनी की उपयोगिता के अंतर्गत इनके मनोदैहिक पक्ष व आध्यात्मिक पक्ष पर प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत शोधकार्य चक्र एवं कुण्डलिनी की अवधारणा को स्पष्ट करने हेतु विवेचनात्मक प्रविधि द्वारा प्रमुख योगोपनिषदिक ग्रंथों एवं इन योगोपनिषदों पर लिखे गये भाष्यों एवं टीकाओं के विवेचनात्मक अध्ययन के साथ ही वर्तमान में किये गये मूल्यपरक शोधकार्यों के पुनर्वलोकन से प्राप्त तथ्यों एवं साक्ष्यों का संकलन है। जिसमें शोधकार्य के उद्देश्यानुसार चक्र और कुण्डलिनी को अत्यंत सरलतम एवं व्यवस्थित रूप में समझाते हुए इनके जागरण की प्रक्रिया को उल्लेखित कर इस मार्ग में ध्यान रखने योग्य सावधानियों आदि का अध्ययन कर इनके जागरण के परिणामस्वरूप प्राप्त फलश्रुतियों का अतिस्पष्ट वर्णन किया गया है, जो कि वर्तमान समय में चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा एवं जागरण के नाम पर समाज में फैली विसंगतियों को दूर कर इस ज्ञान को विज्ञान सम्मत एवं तथ्यात्मक रूप से प्रस्तुत करने में सहायक है।

इस प्रकार शोधकार्य की वर्तमान आवश्यकतानुसार इस अध्ययन के द्वारा चक्र और कुण्डलिनी के समुचित स्वरूप को स्थापित करने का प्रयास किया गया है। जो कि इस शोधकार्य के मुख्य उद्देश्यों अर्थात् 'चक्र और कुण्डलिनी को योगोपनिषदों के आधार पर समझना', 'योगोपनिषदों के आधार पर चक्र और कुण्डलिनी की सम्यक् विवेचना करना', 'वर्तमान परिप्रेक्ष्य में चक्र और कुण्डलिनी की साधना के महत्व पर प्रकाश डालना' इन तीनों उद्देश्यों की पूर्ति करता है। संक्षेप में ऋग्वेदीय योगोपनिषदों के अंतर्गत 'नादबिन्दूपनिषद्' में सारगर्भित रूप से एकाग्रता के अभ्यासों में सप्तचक्रों की सम्यक् विवेचना करते हुए कुण्डलिनी के स्वरूप को समझाया गया है।

कृष्णयजुर्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों में मुख्य रूप से 'अमृतनादोपनिषद्', 'ब्रह्मविद्योपनिषद्', 'ध्यानबिन्दूपनिषद्', 'क्षुरिकोपनिषद्' 'योगकुण्डलिन्युपनिषद्', 'वराहोपनिषद्', 'योगशिखोपनिषद्' एवं 'योगतत्त्वोपनिषद्' में से एकमात्र क्षुरिकोपनिषद् 'सप्तचक्रों' का वर्णन करता है। अन्य सभी योगोपनिषदों में षट्चक्रों से संबंधित क्षेत्र तथा इन क्षेत्रों में प्रमुख पाँच वायु आदि की स्थिति का वर्णन किया गया है। साथ ही मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी की स्थिति, कुण्डलिनी संबंधी मुख्य अवधारणा, कुण्डलिनी जागरण के उपाय एवं कुण्डलिनी जागरण से मोक्ष के द्वार को खोलने संबंधी तथ्यों की चर्चा करते हुए षट्चक्रों के भेदन की विस्तृत विवेचना की गई है। योगाभ्यास के उत्कृष्ट फल हेतु शरीरस्थ प्राण वायु षट्चक्रों का भेदन करते हुए शरीर के शीर्ष प्रदेश में स्थित सहस्रार चक्र तक पहुँचने पर ज्ञानरूपी प्रसाद की प्राप्ति का विस्तृत वर्णन किया गया है। जिसका मुख्य उद्देश्य षट्चक्र मण्डल का भेदन होने पर ज्ञानरूपी दीपक को प्रकाशित करना है। कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत होने से प्रमुख तीनों ग्रंथियों का भेदन कर तथा चक्रों का जागरण करके यह शक्ति शिव में मिलकर आनन्द प्राप्त करती है। अंततः योगी ब्रह्म की अनुभूति करता है।

शुक्लयजुर्वेदीय शाखा के योगोपनिषदों के अंतर्गत 'त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्', 'मण्डलब्राह्मणोपनिषद्', 'अद्वयतारकोपनिषद्' एवं 'हंसोपनिषद्' में एकमत से चक्र एवं कुण्डलिनी शक्ति संबंधित अवधारणा, कुण्डलिनी के स्थान एवं कार्य, कुण्डलिनी शक्ति का पथ, कुण्डलिनी जागरण के उपायों एवं कुण्डलिनी के अन्य नामों का वर्णन किया गया है। साथ ही शरीरस्थ मूलाधार चक्र से ब्रह्मरन्ध्र तक जाती हुई सुषुम्ना नाड़ी में स्थित अत्यन्त सूक्ष्म एवं प्रकाशवान कुण्डलिनी शक्ति का वर्णन है। कुण्डलिनी शक्ति का मनोदर्शन मात्र करने पर साधक सभी पापों से मुक्ति प्राप्त कर मोक्षाधिकारी बन जाता है। एकमात्र *मण्डलब्राह्मणोपनिषद्* में नवचक्रों की महिमा का वर्णन है तथा *हंसोपनिषद्* में हंस रूपी जीवात्मा को प्राप्त करने के लिए षट्चक्रों के भेदन की साधना का महत्व वर्णित है।

सामवेदीय शाखा के अंतर्गत 'दर्शनोपनिषद् (जबालदर्शनोपनिषद्)', 'योगचूडामण्युपनिषद्' में षट्चक्रों एवं अजपा गायत्री की अवधारणा, प्रत्याहार हेतु क्षेत्र

विशेष के रूप में चक्रों एवं कुण्डलिनी की चर्चा एवं इस कुण्डलिनी को योनि स्थान (कुण्डलिनी) में परम ज्योति के दर्शन के रूप में वर्णित किया गया है, जैसे कुंजी के द्वारा मकान का ताला खोलते हैं, उसी प्रकार कुण्डलिनी के द्वारा लोग अपने माया रूपी अज्ञान का ज्ञान रूपी शक्ति से मुक्ति का द्वार खोलते हैं। अथर्ववेदीय शाखा के योगोपनिषदों के अंतर्गत एकमात्र 'शाण्डिल्योपनिषद्' में ही चक्रों एवं कुण्डलिनी का वर्णन मिलता है।

फलतः संक्षिप्त रूप में कहा जा सकता है कि उपर्युक्त योगोपनिषदों के गर्भ में चक्र और कुण्डलिनी जैसे गूढ़ विषय अन्तर्विष्ट है। इन योगोपनिषदों में वर्णित चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा हठयोग एवं तंत्रयोग के समान अतिस्पष्ट है, जिसे साधक एवं योगी आसानी से समझकर चक्र और कुण्डलिनी के साधना मार्ग पर सरलता से अग्रसर हो सकता है। इस प्रकार योगोपनिषद् चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा का विशुद्ध स्वरूप मिलता है। निष्कर्षतः प्रस्तुत शोधप्रबंध में योगविषयक 20 उपनिषदों के परिप्रेक्ष्य में चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा का विवेचनात्मक अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन चक्र और कुण्डलिनी की साधना करने वाले साधकों के लिए विशेष महत्व का है। आशा है कि यह अध्ययन न की सिर्फ चक्र और कुण्डलिनी के साधको के लिए महत्व रखता है। अपितु सभी योग साधको के लिए भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

शोध अध्ययन की सीमाएँ

प्रस्तुत शोधकार्य पूर्णतः चक्र और कुण्डलिनी के सैद्धांतिक पक्ष को स्पष्ट करता है, न कि प्रायोगिक पक्ष।

सुझाव एवं भावी संभावनाएँ

प्रस्तुत शोधकार्य योगोपनिषदों के विशेष संदर्भ में चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा का विवेचनात्मक अध्ययन करता है।

भविष्य में प्रत्येक योगोपनिषदों में वर्णित चक्र और कुण्डलिनी के सैद्धान्तिक पक्ष की विश्वसनीयता एवं वैद्यता की जाँच हेतु प्रायोगिक अध्ययन किये जा सकते

हैं। प्रस्तुत अध्ययन से प्राप्त परिणाम के आधार पर चक्र और कुण्डलिनी का समग्र स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का प्रायोगिक अध्ययन किया जा सकता है। योगोपनिषदों में वर्णित चक्र एवं कुण्डलिनी के जागरण से प्राप्त फलश्रुतियों का परीक्षण किया जा सकता है। चक्र एवं कुण्डलिनी जैसे गूढ़ विषयों को जनमानस के लिए सर्वसुलभ बनाने हेतु इन विषयों को विज्ञान की कसौटी पर स्पष्ट किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- आधार ग्रंथ
- सहायक ग्रंथ
- पत्रिकाएँ
- शब्द कोश

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ—

1. शास्त्री, केशवलाल वी. (2014), *उपनिषत्सञ्चयनम्*: चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली.
2. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा, (2015), *108 उपनिषद् (सरल हिन्दी भावार्थ सहित)*, ज्ञानखण्ड, साधनाखण्ड, ब्रह्मविद्याखण्ड, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उ.प्र.)
3. विद्यालंकार सुभाष, (2018) योग उपनिषद् (20 योग उपनिषदों का संस्कृत मूल एवं विद्यालंकृता हिन्दी व्याख्या तथा श्लोकानुक्रमणिका सहित 1, 2) प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली
4. स्वामी दिगम्बर और झा, पीतरम्बर, (2017), *स्वात्माराम-कृतः हठप्रदीपिका*, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, पुणे, महाराष्ट्र.
5. सरस्वती, निरंजनानन्द, (2012), *घेरण्ड संहिता महर्षि घेरण्ड की योग शिक्षा पर भाष्य*, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत.
6. द्वारिकादास शास्त्री, एस. (2014). *महायोगिश्रीगोरक्षनाथविरचिताः सिद्धसिद्धांतपद्धति*, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी.
7. स्वामी कुवल्यानन्द, (2013), *गोरक्षशतकम्*, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, पुणे, महाराष्ट्र.
8. घोरोटे, एम. एल., देवनाथ, पी., और झा, वी. के., (2014), *हठरत्नावली अ ट्रीटाइज ऑन हठयोगा ऑफ श्रीनिवासयोगी*, द लोनावला योग इन्स्टीट्यूट, लोनावला, पुणे,
9. स्वामी महेशानन्द, (2009), *शिवसंहिता एक आलोचनात्मक संस्करण*, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, पुणे, महाराष्ट्र.
10. दिगम्बरजी, स्वामी, झा पीताम्बर, सहाय ज्ञान शंकर (2009), *वसिष्ठसंहिता (योगकाण्ड)*, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, पुणे, महाराष्ट्र.

सहायक ग्रंथ—

1. पुरुषार्थी, डॉ. योगेन्द्र, और सरस्वती, स्वामी शिवानन्द, (1983), *वेदों में योगविद्या*, 'श्रुतिप्रतिपादित अन्नमयकोश की साधना', यैगिक शोध संस्थान, योगधाम, ज्वालापुर, हरिद्वार.
2. मोटोयामा, एच. (2014), *थ्योरिस ऑफ द चक्रास: ब्रीज टू हायर कान्शियस्नेस*, मोतिलाल बनारसीदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली.
3. स्वामी, रामदेव, (2009), *प्राणायाम रहस्य (वैज्ञानिक तथ्यों के साथ)*, दिव्य प्रकाशन दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार.
4. सिंह. आर., (1977), *संत-काव्य में योग का स्वरूप*, अनुपम प्रकाशन, पटना.
5. योगीराज राकेश, कुण्डलिनी शक्ति और जागरण, दुर्गा वॉकेट बुक्स प्रकाशन, मेरठ.
6. सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द, (1993), *तंत्र, क्रिया और योगविद्या*, श्री गोपी कृष्ण केजरीवाल मानद सचिव बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत.
7. सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द, (2002), *कुण्डलिनी योग*, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गंगादर्शन, मुंगेर, बिहार, भारत,
8. सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द, (2006), *आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध*, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गंगादर्शन, मुंगेर, बिहार, भारत,
9. शुक्ल, रमेश चन्द्र, (2016), *चक्र एवं कुण्डलिनी*, पुस्तक महल, नई दिल्ली.
10. आचार्य बालकृष्ण, (2014), *आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य*, दिव्य योग मंदिर ट्रस्ट पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार (उत्तराखण्ड).
11. जयदेव सिंह, (2012), *शिव सुत्रास: द योग ऑफ सुप्रिम आइडेंटिटी*, मोतिलाल बनारसीदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली.
12. जॉन ह्यूजेस, (2010), *शिव सूत्र: द सुप्रिम अवेकनिंग*, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, दिल्ली.
13. फ्रॉवले डेविड. (2009). *इनर तांत्रिक योग: वर्किंग विथ द यूनिवर्सल शक्ति: सिक्रेट्स ऑफ मंत्रास, डीइटीस एंड मेडिटेशन*. लोटस प्रेस,

14. डाइक्जकोवस्की, मार्क, एस. जी. (1989). *द केनॉन ऑफ द शैवागम एंड द कुब्जिका तंत्रास् ऑफ द वेस्टर्न कौला ट्रेडिशन*. मोतिलाल बनारसीदास, नई दिल्ली.
15. मेलिन्सन, जे., (2016). *'शक्तिस्म एंड हठयोगा' इन: गॉडिस ट्रेडिन्स इन तांत्रिक हिन्दुइज्म: हिस्ट्री, प्रेक्टिस एंड डॉक्टराइन*. ऐडिटेड बाइ बर्जने वर्निक—ओलेसन लंदन: राउटलेज,
16. व्हाइट, डी. जी., (2012). *योगा इन प्रेक्टिस*. प्रिंसटन, न्यू जर्सी: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस.
17. मेलिन्सन, जे., (2007). *'द खेचरीविद्यया ऑफ आदिनाथ: अ क्रिटिकल ऐडिशन एंड ऐनोटेटेड ट्रांसलेशन ऑफ एन अर्ली टेक्स्ट ऑफ हठयोगा*. लंदन: राउटलेज.
18. जुडिथ, ए. (2004), *ईस्टर्न बॉडी, वेस्टर्न माइंड: सायकोलॉजी एंड द चक्रा सिस्टम एस ए पाथ टू द सेल्फ; रिवाइज्ड ऐडिशन*. बर्कले, कैलिफोर्निया: सेलेस्टियल आर्ट्स.
19. पॉलसन, जे. ले., (1998), *कुण्डलिनी एंड द चक्रास: ए प्रेक्टिकल मैन्युअल—ईवोल्युशन इन दिस लाईफटाइम, ऐडिशन*. सेंट, पॉल, मिनेसोटा: लेवेलिन पब्लिकेशन्स.
20. सरस्वती, स्वामी शिवानन्द, (2010), *कुण्डलिनी योग*, हिमालयास, इंडिया: द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी.
21. टेलर, के. (2001), *सर जॉन वुडरोफ, तंत्रा एंड बेन्गॉल: 'एन इंडियन सोल इल ए यूरोपियन बॉडी?'*. राउटलेज.
22. वालिस, के. (2017), *रेकग्निशन सूत्रास: इलूमनेटिंग अ 1,000—ईअर—ओल्ड स्पिरिचुअल मैस्टर्पीस मट्टामायुरा प्रेस. इंट्रोडक्शन।*
23. डाले, एस., (2011), *कुण्डलिनी: डिवाइन ऐनर्जी, डिवाइन लाईफ (I ऐडिशन)*. वुडबरी, मिनेसोटा: लेवेलिन पब्लिकेशन्स.
24. व्हाइट, डी. जी., (2004), *किस ऑफ द योगिनि: 'तांत्रिक सेक्स' इन इट्स साउथ ऐशियन कन्टेक्स्ट (पेपरबैक ऐडिशन)*. द यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस.

25. द अलकेमिकल बॉडी: सिद्धा ट्रेडिशनस इन मीडिईवल इंडिया. द यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस.
26. सैविज्म, के. एस., (1990), वाक: द कन्सेप्ट ऑफ द वर्ड इन सेलेक्टेड हिन्दू तंत्रास. श्री सदगुरु पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली.
27. व्हाइट, डी., जी., (2004), किस ऑफ द योगिनि: "तांत्रिक सेक्स" इन इट्स साउथ ऐशियन कन्टेक्स्ट (पेपरबैक एडिशन). द यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस.
28. विलियम्स, डब्ल्यू. एफ. (2000), 'कुण्डलिनी'. इन्साइक्लोपीडीआ ऑफ स्यूडोसाइंस: फ्रॉम ऐलीअन एब्डक्शन्स टू जोन थेरेपी. राउटलेज.
29. स्वामी विवेकानंद, (1998), राज योगा: कन्वेरिंग द इन्टर्नल नेचर. कलकत्ता: अद्वैत आश्रम.
30. शमदासानी, एस., (2012), द सायकोलॉजी ऑफ कुण्डलिनी योगा: नोट्स ऑफ द सेमिनार गिवन इन 1932 बाइ सी. जी. जुंग (न्यू एडिशन). प्रिंसटन, एन. जे. प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस
31. मॉरिसन, डी., (1977), अ ग्लोसरी ऑफ संस्कृत फ्राम द स्पिरिटुअल ट्रेडिशन ऑफ इंडिया. नीलगिरी प्रेस.
32. फ्लड, जी., (2006), द तांत्रिक बॉडी: द सिक्रेट ट्रेडिशन ऑफ हिन्दू रिलिजन. आई. बी. टॉरिस.
33. आयंगर, टी, आर, श्रीनिवास, (1938), 'योग उपनिषद्', द अड्यार लाइब्रेरी.
34. रुबिक, बी., (2004), साइंटिफिक एनालिसिस ऑफ ह्यूमन औरा, मेशरिंग एनर्जी फिल्ड्स स्टेट ऑफ द साईंस, फेअर लॉन, एन. जे., बेकबोन.
35. जुडिथ, ए., (2012), व्हील्स ऑफ लाइफ: अ युजर्स गाइड टू द चक्रा सिस्टम, लेवेलिन वर्ल्डवाइड पब्लिकेशन्स।
36. लोरेंजी, ई, ए., (1999), काम्प्लेमेंट्री/अल्टरनेटिव थिरेपीस: सो मेनी च्वाइसेस, जेरिएट्रिक नर्सिंग.
37. शर्मा, ए., (2006), अ प्राइमल पर्सपेक्टिव ऑन द फिलॉसफी ऑफ रिलिजन, स्प्रिंगर.

38. सैमुअल, ज्योफ्री और जॉनसन, जे., (2013), *रीलिजन एन्ड द सटल बॉडी इन एशिया एन्ड द वेस्ट: बीटवीन माइंड एन्ड बॉडी*, राउटलेज,
39. मोटोयामा, एच., (2014), *थ्योरिस ऑफ द चक्रास: ब्रीज टू हायर कान्शियस्नेस*, मोतिलाल बनारसीदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली.
40. सरस्वती, एम. डी., (2001), *कुंडलिनी योगा*, टिहरी गढ़वाल, भारत, डिवाइन लाइफ सोसाइटी, फोल्डआउट चार्ट.
41. स्टीफन स्टुर्गेस, (2015), *द योगा बुक: ए प्रेक्टिकल एंड स्प्रिचुअल गाइड टू सेल्फ रियलाइजेशन*, वाटकिन्स पब्लिशिंग,
42. पेट्रीसिया मर्सिएर, (2007), *द चक्र बाइबिल*, ऑक्टोपस पब्लिशिंग ग्रुप लिमिटेड,
43. Saraswati, Swami Satyanand. (2013) *A Systematic Course in the Ancient Tantrik Techniques of Yoga and Kriya*, Yoga Publication Trust, Munger, Bihar, India.
44. Woollacott, M. H., Kason, Y., & Park, R. D. (2020). Investigation of the phenomenology, physiology and impact of spiritually transformative experiences—kundalini awakening. *EXPLORE*.
45. Selby, J., & Selig, Z. (2009). *Kundalini awakening: a gentle guide to Chakra activation and spiritual growth*. Bantam.
46. Paradkar, A., & Chaturvedi, S. K. (2010). Physio-kundalini syndrome with neurocognitive deficits. *International Journal of Culture and Mental Health*, 3(1), 25-33.
47. PS, J., Gopal, U. B., & Simon, R. K. (2021). Neurological Understanding Of Shad Chakra With Special Reference To Vata Dosha. *International Journal of Ayurveda and Pharma Research*, 93-97.
48. Fernros, L., Furhoff, A. K., & Wändell, P. E. (2008). Improving quality of life using compound mind-body therapies: evaluation of a course intervention with body movement and breath therapy, guided imagery, chakra experiencing and mindfulness meditation. *Quality of life research*,
49. Muller-Ebeling, C., Ratsch, C., & Shahi, S. B. (2002). *Shamanism and Tantra in the Himalayas*. Thames & Hudson.
50. Govinda, K. (2002). *A handbook of chakra healing: Spiritual practice for health, harmony, and inner peace*. Konecky Konecky.

51. Krishnakumar, P. R. (1992). An introduction to the mysticism of The Sri Chakra. *Ancient science of life*,
52. Long, J. D. (2016). Tantra: A Much-Misunderstood Path to Liberation. *Prabuddha Bharata*, (January issue),
53. Ling, H. W. (2020). Chakras and energy alterations in patients with oligospermia. *Archive of Urological Research*,
54. Hara Suchandra, H., Bojappen, N., Rajmohan, P., Phurailatpan, S., Murali, L. P., Ok, A. S., ... & Thirthalli, J. (2020). Kundalini-like Experience as Psychopathology: A Case Series and Brief Review. *Complementary Therapies in Clinical Practice*, 101285.
55. Valanciute, A., & Thampy, L. A. (2011). Physio Kundalini syndrome and mental health. *Mental Health, Religion & Culture*, 14(8), 839-842.
56. Fernros, L., Furhoff, A. K., & Wändell, P. E. (2008). Improving quality of life using compound mind-body therapies: evaluation of a course intervention with body movement and breath therapy, guided imagery, chakra experiencing and mindfulness meditation. *Quality of life research*, 17(3), 367-376.
57. Müller-Ebeling, C., Ratsch, C., & Shahi, S. B. (2002). *Shamanism and Tantra in the Himalayas*. Thames & Hudson.
58. Govinda, K. (2002). *A handbook of chakra healing: Spiritual practice for health, harmony, and inner peace*. Konecky Konecky.
59. Krishnakumar, P. R. (1992). An introduction to the mysticism of The Sri Chakra. *Ancient science of life*, 12(1-2), 289.
60. Long, J. D. (2016). Tantra: A Much-Misunderstood Path to Liberation. *Prabuddha Bharata*, (January issue), 157-167.
61. Hara Suchandra, H., Bojappen, N., Rajmohan, P., Phurailatpan, S., Murali, L. P., Ok, A. S., ... & Thirthalli, J. (2020). Kundalini-like Experience as Psychopathology: A Case Series and Brief Review. *Complementary Therapies in Clinical Practice*, 101285.
62. Chase, C. R. (2018). The geometry of emotions: Using chakra acupuncture and 5-Phase Theory to describe personality archetypes for clinical use. *Medical acupuncture*, 30 (4), 167-178.
63. Ling, H. W. (2020). Chakras and energy alterations in patients with oligospermia. *Archive of Urological Research*, 4(1), 010-016.

64. Lim, S., & Lee, H. (2020). Self-exploration on anxiety in chakra meditation experienced people: The mediation effect of emotional health state perception. *International Journal of Social Welfare Promotion and Management*, 7(1), 15-22.

पत्रिकाएँ—

1. 'योगविद्या', पत्रिका, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट: मुंगेर, भारत
2. 'अखण्ड ज्योति', पत्रिका, ऋषिकेश, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)
3. 'आरोग्य', गोरखपुर, (उत्तरप्रदेश)
4. 'योग संदेश', पत्रिका, पतंजलि योगपीठ ट्रस्ट: हरिद्वार (उत्तराखण्ड)
5. 'दिव्य जीवन संघ', ऋषिकेश (उत्तराखण्ड)
6. 'निरर्गोपचार वार्ता', राष्ट्रीय प्राकृतिक चिकित्सा संस्थान, पुणे (महाराष्ट्र)
7. YOGA, Sivanand Math, Munger, Bihar, India
8. Yoga Mimansa. Kavailyadhama, Lonavla, Pune (M.H.)

शब्द कोश—

1. शास्त्री, हरगोबिन्द (1932), अमरकोश, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
2. शास्त्री, प्रो. ज्ञानप्रकाश (2014), प्रस्थानत्रयी—पदानुक्रम—कोश; परिमल पब्लिकेशन्सदिल्ली
3. आप्टे, वामन शिवराम (2012), संस्कृत—हिन्दी—कोश, छात्र—संस्करण, नाग पब्लिशर्स
4. दीक्षित, कृष्ण कान्त एवं उपाध्याय, सूर्य नारायण, मानक हिन्दी शब्दकोश, कमल प्रकाशन
5. जैन, डॉ. उदय चन्द्र (2011) संस्कृत—प्राकृत—हिन्दी एवं अंग्रेजी शब्द कोश (खण्ड— 3), न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन (भारत)
6. देव, राजा राधाकान्त (2015) शब्द कल्पद्रुम: वाराणसी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

क्र. सं. : 33 दिनांक : 31-08-2021

ISSN - 0975-4520

Impact Factor - 4.015

Regd. No. : 46269-87

कला एवं धर्म शोध संस्थान, वाराणसी द्वारा संचालित



IMPACT FACTOR : 4.015



कला सरोवर (त्रैमासिक)

(Kala Sarovar Quarterly Journal Approved by UGC Care List)

भारतीय कला एवं संस्कृति की विशिष्ट शोध पत्रिका

प्रिय महोदय / महोदया,

रचना के लिए धन्यवाद! सुविधानुसार शीघ्र ही अंक वर्ष 25 संख्या-1-2022 में प्रकाशित करने की व्यवस्था करूंगा। इसे इस विश्वास पर स्वीकृत किया गया है कि यह आपकी अपनी मौलिक रचना है और कहीं अन्यत्र प्रकाशित नहीं हुई है।

आपकी रचना..... योग उपनिषदों में वर्णित चक्र एवं कुण्डलिनी के अभ्यास से मानव चेतना का विकास

रंजीत सिंह, डॉ. शाम गनपत तिखे

की स्वीकृति संख्या कला

सरोवर वर्ष 25/33 है। पत्र व्यवहार करते समय इसका उल्लेख अवश्य करें।

कला सरोवर

भवदीय : प्रधान सम्पादक :
कला सरोवर (त्रैमासिक), वाराणसी

गुनिमि ठिले

डॉ. प्रेमशंकर सिंघवी



आफिस - कला सरोवर (त्रैमासिक) बी. 33/33 ए-1, न्यू साकेत कालोनी, बी.एच.यू., वाराणसी-5 दूरभाष : 0542-2310682

योग उपनिषदों में वर्णित चक्र एवं कुण्डलिनी के अभ्यास से मानव चेतना का विकास

★ रंजीत सिंह ★ डॉ० शाम गनपत तिखे

सारांश

योग विज्ञान एक चेतना का विज्ञान है। चेतना ब्रह्माण्डीय बुद्धि का अव्यक्त स्वरूप है, इसमें ज्ञान, सृष्टि और अभिव्यक्ति की क्षमता निहित है, इन योग उपनिषदों महाशक्ति कुण्डलिनी उस परमेश्वरी की ही चेतना शक्ति है। उपनिषदों में वर्णित अभ्यास चक्र और कुण्डलिनी के अभ्यास से शक्ति-केन्द्रों और नाडियों की जागृति के उद्देश्य से किये जाते हैं तथा चक्र जो सूक्ष्म शरीर में ऊर्जा केन्द्र के रूप में हैं, तथा कुण्डलिनी शक्ति परम शक्ति या आत्म शक्ति के रूप में उक्त यौगिक ग्रंथों में वर्णित है कि 'कुण्डलिनी मानव की उच्च चेतना का प्रतीक है'। अध्यात्म के मार्ग पर अपने जीवन में अनुभूतियाँ एवं सिद्धियाँ प्राप्त करना जीवन का लक्ष्य नहीं है, बल्कि अध्यात्मिक मार्ग की साधना द्वारा सूक्ष्म शरीर में अवस्थित चक्रों या ऊर्जा केन्द्रों में संयम करके जन्म मरण के चक्र से मुक्ति प्राप्त करना है। योग मार्ग को अपना कर मनुष्य शारीरिक, मानसिक, समाजिक तथा अध्यात्मिक जीवन में उन्नति को प्राप्त कर सकता है। जिससे व्यक्तित्व के आन्तरिक पक्ष उजागर होते हैं। जो कर्मठता, शक्ति, आत्मचिंतन, अनुसंधान की शक्ति प्रदान करता है। नाडियों में प्राण ऊर्जा के रूप में चेतना शक्ति या आत्म शक्ति के संयमित गति के प्रवाह से सभी जीव मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

कूट शब्द—अध्यात्म, जीवन, योग, प्राण ऊर्जा, चेतना, चक्र एवं कुण्डलिनी।

प्रस्तावना

इन उपनिषदों ने भारतीय संस्कृति और समाज को हजारों वर्षों से प्रेरण दी है और सांस्कृतिक पोषण दिया है। करोड़ों लोगों को प्रभावित किया है। जड़ प्रकृति के चैतन्य की अन्तिम विजय की घोषणा करके इन उपनिषदों ने भारत और बाहर भी आध्यात्मिकता की ज्योति जलती ही रखी है। योग उपनिषदों की यह महान आध्यात्मिक परम्परा विश्व को भारत की बहुमूल्य देन है। जड़ प्रकृति पर चैतन्य की, भौतिकता पर मानव की इस विजय घोषणा ने भारत के लोगों में ऊर्जा भर दी है। योग उपनिषदों में अष्टांगयोग तथा षडंगयोग की चर्चा है। चक्र और कुण्डलिनी के अभ्यास से शक्ति-केन्द्रों और नाडियों की जागृति उद्देश्य से किये जाते हैं। जब कुण्डलिनी एवं चक्र का जागरण होता है तो मानव की चेतना का विकास होता है और वह अपनी उच्चतम की स्थिति को प्राप्त करता है।

तंत्रशास्त्र एवं योगशास्त्रों में चक्रों को चेतन ऊर्जा केन्द्रों के नाम से संबोधित किया गया है। प्राण ऊर्जा का सूक्ष्म ढाँचा प्रत्येक नाडी का एक निश्चित मार्ग होता है। जिनका विशिष्ट बिन्दु पर संगम होता है। प्राण अथवा आत्मिक ऊर्जा के केन्द्र नाडियों एवं तंत्रिकाओं के समान किन्तु उनसे अधिक सूक्ष्म होते हैं। चक्रों को प्रतीकात्मक रूप से कमल की पंखुडियों के रूप में दर्शाया जाता है। प्रत्येक चक्र की पंखुडियों की संख्या, रंग प्रतीक, देवता, बीज मंत्र, वाहन भी उस चक्र विशेष से सम्बद्ध अन्य अतीन्द्रिय पक्षों को दर्शाते हैं। चक्रों का शाब्दिक अर्थ है—पहिया या वृत्त। किन्तु यौगिक संदर्भ में संस्कृत शब्द चक्र का अर्थ चक्रवात अथवा भँवर से है। चक्र अतीन्द्रिय शक्ति के पुंजप्रकाश होते हैं जिन्हें ऐसी विशेष तरंगों के रूप में देखा या अनुभव किया जा सकता है जो गोलाकार रूप में चलायमान रहती हैं। चक्र शरीर के विशेष भागों में स्थित प्राण-शक्ति के केन्द्र हैं, जो सम्पूर्ण मानव शरीर में व्याप्त प्राण के प्रवाह को नियन्त्रित करते हैं।

कुण्डलिनी का स्वरूप

कुण्डलिनी समय और स्थान से परे एक अनुभवातीत अवस्था है। कुण्डलिनी मानव विकास की चरम अवस्था है, यह मनुष्य को आत्मज्ञान की प्राप्ति कराती है। पारम्परिक मान्यता के अनुसार कुण्डलिनी शब्द 'कुण्डल' से बना है। संस्कृत में 'कुण्डल' शब्द का अर्थ कुण्डली है। परन्तु वास्तविक रूप में कुण्डलिनी शब्द कुन्द्र नामक शब्द से उद्गमित हुआ है जिसका अर्थ है गुफा या गहरा स्थान। क्योंकि कुण्डलिनी मानव चेतना का गहनतम क्षेत्र या स्त्रोत है, अतएव इसका नाम कुण्डलिनी है। जो इस शरीर में सबसे प्रधान कार्यकारिणी शक्ति है। यह विश्व

★ पी०एच०डी०, शोधार्थी, योग एवं आयुर्वेद विभाग, साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, रायसेन, मध्यप्रदेश।

★★ सहायक प्राध्यापक, योग एवं आयुर्वेद विभाग, साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, रायसेन, मध्यप्रदेश।

ब्रह्माण्ड में प्रत्याप्त महा कुण्डलिनी का ही पिण्डगत स्वरूप है। हटप्रदीपिका के तृतीय उपदेश में कुण्डलिनी को कुण्डली कहा है और चक्र को पद्य कहा है। योग के सभी अभ्यासों की मूल जड़ कुण्डलिनी को कहते हैं। किन्तु शिव संहिता में टेढ़ी आकार वाली परमदेवता स्वरूप कुण्डलिनी सुषुम्ना के मार्ग में अवस्थित है। तांत्रिक ग्रंथों में कुण्डलिनी को आदि शक्ति माना गया है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार इसे मानव में निहित अचेतन शक्ति कहा जा सकता है। पुराणों में कुण्डलिनी की समानता काली से की जाती है। शैव दर्शन में कुण्डलिनी को चारों तरफ से लिपटे शिवलिंग के माध्यम से प्रकट किया जाता है। कुण्डलिनी को विभिन्न ग्रन्थों व विद्वतजनों ने अलग-अलग नामों से पुकारा है।

पं श्रीराम शर्मा आचार्य के शब्दों में यह जीवन ऊर्जा या जीवन अग्नि है जो सामान्य क्रम में सुप्त अथवा अर्धचेतनावस्था में रहती है। यौगिक सिद्धांत एवं साहित्य का विषय अत्यन्त गूढ़ और विस्तृत है। मानवीय सत्ता का कण-कण दिव्यता से परिपूर्ण है, अदभूत है, अनन्त है। चक्र और कुण्डलिनी की साधना द्वारा परम सत्ता तक पहुँचने पर जीवात्म का आत्म से मिलन हो जाता है। जो सम्पूर्ण जीवन शक्ति का लय होता है जो चेतना के रूप में शरीर में विद्यमान है। चेतना ब्रह्माण्डीय बुद्धि का अव्यक्त भाग है, इसमें ज्ञान, सृष्टि और अभिव्यक्ति की क्षमता निहित है। इस भौतिक शरीर में एकाग्रता, सजगता, तीव्रता और मानस दर्शन की क्षमता विकसित करता है। जब यह मानसिक और आध्यात्मिक में सर्वोत्तम रूप में यह विद्यमान रहता है।

मानव चेतना के रूप में योग उपनिषदों में चक्र एवं कुण्डलिनी की आवधारण

योग उपनिषदों के अनुसार चक्र एवं कुण्डलिनी का अभ्यास —ध्यानबिन्दु उपनिषद में कहा गया है कि अच्छी तरह से पद्यासन लगाकर हाथों को संपुटित करके छाती पर चिबुक को दृढ़ता से स्थापित कर चित्त में आत्म स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार अभ्यास करने वाला योगी उस कुण्डलिनी शक्ति के प्रभाव से चेतान का बोध करता है। ध्यान करते समय बार बार नीचे की ओर प्रवाहित अपान वायु को ऊपर की ओर प्रवाहित करना चाहिए। योगकुण्डलिनी उपनिषद के अनुसार तीसरे अध्याय में षट् चक्रों का नाम एवं उनके स्थान बातते हुए मूलाधार, स्वाधिष्ठान, अनाहत, विशुद्ध, और आज्ञा ये छः चक्र कहा गया है। गुदास्थान के समीप मूलाधार, लिंग के समीप स्वाधिष्ठान, नाभिमण्डल में मणिपूर, हृदय में अनाहत, कण्ठमूल में विशुद्धचक्र एवं मस्तक में आज्ञाचक्र स्थित है। इन षट् को जानकार तथा में प्राणा को आकर्षित करके सुख मण्डल परम अनन्द देने वाली सहस्रार चक्र स्थित में प्रवेश करे और उसे ऊर्ध्वगामी दिशा में नियोजित करे। इस तरह से अभ्यास करने से प्राण ब्रह्माण्ड में स्थित हो जाता है तथा चित्त की शुद्ध, प्राण-वायु, बिन्दु एवं चक्र का अभ्यास हो जाने से योगी को परमात्म से मिलन होकर समाधि अवस्था में पहुँच कर अमृत-तत्त्व की प्राप्ति हो जाती है।

योगचूडामण्युनिषत् के अनुसार काह कि आत्मशक्ति जगाने की विधी बताई गई हैं। और कहा गया है। कि जो साधक अपनी देह के भीतर छः चक्रों को, सोलह आधरो को, तीन लक्ष्यों को और पाँच आकाशों को नहीं पहचान पाता उसे सिद्धि भला कहीं से मिल सकती है। शरीर में स्थित छः चक्रों में जो आधार चक्र (मूलाधारचक्र) है, वह चार दलों वाला है। और जो स्वाधिष्ठान चक्र है, उसमें छः दल है। नाभि में स्थित पद्म दश दलों वाला है और हृदय में अवस्थित पद्म चक्र बारह दलों वाला है। जो विशुद्ध चक्र है, वह सोलह दल वाला है और भ्रमध्य में जो आज्ञाचक्र है। वह दो दलों वाला है। ब्रह्मरन्ध्र के महापथ में आया हुआ पद्मचक्र हजार दलवाला है। नाभि के नजदीक नीचे और ऊपर के भाग में कुण्डलिनीका स्थान है। वह कुण्डलिनी आठ प्रकार की प्रकृति से युक्त है और आवृतियों युक्त होकर वहाँ अवस्थित है। योग की स्थिति में यह कुण्डलिनी शक्ति वायु —संचार को व्यवस्थित करके और अन्न—जलादि को चारों ओर से कन्धों के पार्श्वभाग में स्थित करके उसे पुनः मुहँ से लेकर अपान और अग्नि के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र तक जाग्रत होती है। हृदयाकाश में वह महा उज्ज्वल और ज्ञान रूप हो जाती है। मध्य में अवस्थित उस कुण्डलिनी का आश्रय करके चौदह मुख्य नाड़ियों अवस्थित है। इडा, पिंगला, सुषुम्ना, सरस्वती, वारूणी, पूषा, हस्तिजिह्वा, यशस्विनी, विश्वोदरी, कुहू, शंखिनी, प्यस्विनी, अलम्बुसा, और गान्धारी के द्वारा प्राण का संचार करने से चेतना का विकास होता है जो प्राणायाम एवं मुद्रों के अभ्यास से होता है।

हंसोपनिषत् के अनुसार —उस आत्मा की प्राप्ति के लिए षट्चक्रभेदन की साधना करनी पड़ती है। इस हंस ज्ञाना की साधना सर्वप्रथम गुदा को खींचकर, आधार से वायु को ऊपर उठाकर स्वाधिष्ठान चक्र की तीन प्रदक्षिणाएँ करनी चाहिए। इसके बाद, मणिपूर चक्र में प्रवेश करके, अनाहत चक्र को लोंघकर बाद में विशुद्ध चक्र में प्राणों को निरुद्ध करके आज्ञा चक्र का ध्यान करना चाहिए। और उसके बाद फिर ब्रह्मरन्ध्र का ध्यान करना चाहिए। 'मैं त्रिमात्र ब्रह्म हूँ' — ऐसा ध्यान करते हुए योगी हमेशा निराकार ब्रह्म को देखता हुआ स्वयं अनाकार जैस हो जाता है। वह चेतना में लय हो जाता है।

मानव जीवन में चक्र और कुण्डलिनी को ऊर्जा और चेतना के उच्चतम रूप में देख गया है तथा भौतिक सजगता के साथ शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक रूप से देख गया है। चेतना ब्रह्माण्डीय बुद्धि का वह स्वरूप है, इसमें ज्ञान, सृष्टि और अभिव्यक्ति की क्षमता निहित है योग के मध्यम से आपको इन्द्रियों अनुभूति, पंच महाभूत, अन्नमयकोश, चक्र, कुण्डलिनी, शक्ति की अभिव्यक्ति के द्वारा चेतना योग का लक्ष्य व्यक्ति को उस अवस्था में इच्छा सकारात्मक, रचनात्मक तथा आत्मोन्नति का कारण है।

मानव जीवन के विकास के लिए अंतरंग और बहिरंग क्षेत्र में चक्र एवं कुण्डलिनी की साधना का अभ्यास करना चाहिए जिससे मानव जीवन में चक्र और कुण्डलिनी को ऊर्जा और चेतना के उच्चतम रूप में देख गया है तथा भौतिक सजगता के साथ विचारों, भावनाएँ रूप से देख गया है। चक्र और कुण्डलिनी के जागरण के माध्यम से प्रकृति के नियमों का पालन करते हैं तो शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक विकास के रूप में अभिहित किया गया है।

निष्कर्ष

कुण्डलिनी शक्ति को जीवनी शक्ति का मुख्य स्रोत के रूप में जाना जाता है। उसकी अभिवृद्धि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग ढंग से होती है। शरीर में आरोग्य के रूप में मन में संतुलित विवेकशीलता के रूप में देखा जा सकता है। शारीरिक अवस्था में बलिष्ठता, निरोगिता, स्फुटि, क्रियाशीलता, उत्साह, तत्परता के रूप में दिखायी देती है। मस्तिष्क में उसका परिचय तीव्र बुद्धि, दूरदर्शिता, स्मरण शक्ति, सुझाव, कल्पना, निर्णय क्षमता, कुशलता, व्यवस्था आदि के रूप में देखा जा सकता है। भावना क्षेत्र में वही श्रद्धा, निष्ठा, आस्थाभाव, संवेदना, करुणा, आत्मीयता, सौंदर्यानुभूति के रूप में उभरती है। सब मिलाकर उसे उच्च स्तरीय उत्कृष्टता की दिशा में जीव चेतना को अग्रसर कराते हैं।

सामान्यतः मानव चेतना अपने इस अविकसित रूप में शरीराध्यास में डूबी रहती है। इसी वस्तुस्थिति का चित्रण कुण्डलिनी ज्ञान में इस प्रकार किया गया है कि यह मूलाधार में सोयी हुई है। उसका मुख नीचे की ओर है और उससे विष झरता रहता है। मानव चेतना सर्पिणी है। यह कुण्डलिनी प्राण का भण्डार है। इसकी साधना द्वारा प्रसुप्त अचेतन स्थिति से जगाकर मानव चेतना का विकास किया जा सकता है। कुण्डलिनी जब जाग्रत होती है तो षड्चक्रों का भेदन करते हुए सहस्रत्रार में परम चेतना से जाकर एकाकार हो जाती है। मानव चेतना के विकास में चक्र एवं कुण्डलिनी का महत्व पूर्ण आयाम है।

संदर्भ सूची

1. शर्मा, पं श्री राम आचार्य (2016), 108 उपनिषद् (सरल हिन्दी भावार्थ सहित), ज्ञानखंड, प्रकाशक गायत्री तपोभूमि, मथुरा।
2. शर्मा, पं श्री राम आचार्य (2015), 108 उपनिषद् (सरल हिन्दी भावार्थ सहित), साधनाखण्ड, प्रकाशक गायत्री तपोभूमि, मथुरा।
3. शर्मा, पं श्री राम आचार्य (2015), 108 उपनिषद् (सरल हिन्दी भावार्थ सहित), ब्रह्मविद्याखण्ड, प्रकाशक गायत्री तपोभूमि, मथुरा।
4. शास्त्री आचार्य केशव (2014), उपनिषद् संचयन भाग- 1, 2, 3 चौखम्मा संस्कृत प्रतिष्ठान।
5. भारद्वाज, प्रो. ईश्वर (2014), मानव चेतना, सत्यम पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
6. सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द, (2005), कुण्डलिनी योग, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत।
7. सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द, (2001), धारणा दर्शन, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत।
8. सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द, (2006), आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत।
9. सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द, (2011), घेरण्ड संहिता, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत।
10. सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द, (2012), प्राण एवं प्राणायाम, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत।



सितंबर : 2021

ISSN 2278 - 6880
UGC Care - List Sr. No. 305 (177)

संग्रथन



हिन्दी विद्यापीठ (केरल) तिरुवनन्तपुरम

योग उपनिषद् में वर्णित कुण्डलिनी जागरण में प्राणायाम की भूमिका



रंजीत सिंह

सारांश

योग विद्या बहुत प्राचीन विद्या है, जो वैदिक काल से भारतीय संस्कृति एवं मानव जाति को अविद्या से मुक्त करने के लिए आविष्कृत हुई है। तंत्र साधना में कुण्डलिनी शक्ति का मुख्य स्थान है। मानव को महामानव बनने के लिए कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करना चाहिए। यौगिक अभ्यास के बिना यह असंभव है। यौगिक अभ्यास से शरीर की शुद्धि, नाड़ियों, चक्रों की शुद्धि एवं कुण्डलिनी का जागरण होता है। इस कुण्डलिनी शक्ति का 'प्राणायाम' से बड़ा, निकट का सम्बन्ध है। कुण्डलिनी को जगाने में सर्वाधिक सहायता प्राणायाम से मिलती है। प्राणायाम के द्वारा ही 'प्राण और अपान' का मिलन होता है जिससे कुण्डलिनी शक्ति का

जागरण हो सकता है। प्राणायाम के अभ्यास से शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक शुद्धि होती है तथा प्राणायाम के अभ्यास से मन एवं विचारों में एकाग्रता आ जाती है। इससे प्राण शक्ति यानि कुण्डलिनी शक्ति को उर्ध्व गति प्राप्त होती है। जिससे मानव को अधिभौतिक, अधिदैविक तथा आध्यात्मिक दुखों से मुक्ति मिल जाती है। शिव एवं शक्ति का मिलन संभव हो जाता है। मुख्य बिन्दु - योग, कुण्डलिनी, प्राणायाम, नाड़ियाँ, चक्र।

प्रस्तावना

वैदिक काल को भारतीय संस्कृति एवं मानव जाति के विकास का उत्पत्ति-काल माना जाता है।^१ उस समय अनेकों ग्रंथों, संहिताओं, उपनिषद् एवं पुराणों में योग विद्या का विस्तार से वर्णन मिलता है,

जिसमें कुण्डलिनी-जागरण के लिए अनेक योग विधियों का उल्लेख किया गया है जिनमें मुख्य रूप हैं - मंत्रयोग, लययोग, हठयोग, राजयोग आदि। कुण्डलिनी के जागरण में प्राणायाम महत्वपूर्ण है जो योग-उपनिषद् में कुम्भक के रूप में देखा जा सकता है। प्राणायाम दो शब्दों से मिलकर बना है 'प्राण' और 'आयाम'। प्राण तो श्वास-प्रश्वास की क्रिया को कहा जाता है तथा आयाम का अर्थ है प्राणों का विस्तार करना या उन्हें वश में करके रोकना या चलाना।^२ प्राणायाम को समझने के लिए हमें श्वास-प्रश्वास क्रिया को समझना अति महत्वपूर्ण है। शरीर श्वास-प्रश्वास पर निर्भर है। शरीर को सबल, स्वस्थ,

१. योगिराज पं.राकेश, कुण्डलिनी शक्ति और जागरण, प्रकाशक दुर्गा पॉकेट बुक्स

२. आचार्य भगवान देव प्राणायाम - कुण्डलिनी और हठयोग, प्रकाशक डायमंड पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली।

नीरोग और दीर्घायु बनाने के लिए 'हठयोग', 'राजयोग' एवं 'प्राणायाम' अत्यंत सहायक होता है' क्योंकि श्वास-विज्ञान का ज्ञान ही प्राणायाम का ज्ञान है। श्वास-विज्ञान जानने पर ही प्राण का लाभ उठाया जा सकता है। प्राण ही जीवन है। शरीर का रक्त परिभ्रमण, जीवनी शक्ति, ज्ञान तंतु सब प्राण पर आधारित है। योग-साधना के द्वारा साधक अपनी अलौकिक शक्ति प्राप्त कर लेता है। ऐसी शक्ति जिन्हें देखकर सामान्य लोग तो उसे अवतार मान बैठते हैं। कोई उसे महामानव, महापुरुष तो कोई सिद्ध कहकर पूजने लगते हैं। कुण्डलिनी या 'कुण्डल' को संस्कृत में 'घेरा' या 'गोला' कहा गया है।

कुण्डलिनी का स्वरूप

कुण्डलिनी शब्द 'कुण्ड' से बना है, जिसका अर्थ कोई छेद या गड्ढा और गहरा स्थान है। योगशास्त्र में कुण्डलिनी शब्द का तात्पर्य उस शक्ति से है जो गुप्त एवं निष्क्रिय अवस्था में है। इस अलौकिक और अद्भुत चमत्कार प्रस्तुत करने वाली शक्ति को ही योगियों और तपस्वियों

ने 'कुण्डलिनी' नाम दिया है और इसे जीवन चेतना का आधार बताया है।^१ कुण्डलिनी एक अद्भुत शक्ति है। कुण्डलिनी साधक को अपार शक्तियों का स्वामी बना देती है। हठ प्रदीपिका^२ में इसके अनेक पर्यायवाची नाम हैं जैसे कुण्डली, भुजंगनी, अरुंधती^३, महाशक्ति, सर्पनी, दुर्गा, ईश्वरी, बालराणी आदि। शास्त्रों में कुण्डलिनी को अनेक शक्तियों और सिद्धियों का प्राण कहा है।^४ प्राणायाम करने से नाड़ियों का निरोध किया जाता है। जिससे वह शरीर में उपस्थित ७२ हज़ार नाड़ियों के मल को निर्मल बनाता है। नाड़ियों के द्वारा ही प्राणों का संचार होता है। मेरुदण्ड के मध्य में सुषुम्ना नाड़ी का स्थान है। इस नाड़ी के अंदर अन्य तीन नाड़ियाँ हैं। इनके सहारे शरीर के चक्रों का ज्ञान होता है। मानव शरीर में अनेक चक्रों का स्थान बताया गया है। लेकिन मुख्य रूप से सप्त-चक्रों का उल्लेखन हुआ है, जबकि शरीर में षट् चक्रों के स्थान का वर्णन देखने को मिलता है। योगकुण्डल्योपनिषद् के अनुसार

चक्रों की संख्या छः है - मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा ये छह चक्र शरीर में हैं। चक्रों का स्थूल शरीर में स्थान आधार चक्र (मूलाधार चक्र) गुदा के पास, स्वाधिष्ठान चक्र लिंग या मूत्रेन्द्रिय के पास, मणिपूर चक्र नाभि में है, अनाहत चक्र हृदय में है, कण्ठ में विशुद्धि चक्र है और भूमध्य में आज्ञाचक्र है। प्राणायाम के अभ्यास से इनको जाग्रत किया जाता है। चक्रों का जागरण होने से मनुष्य के अन्दर अपार ऊर्जा का प्रादुर्भाव होता है। जिससे वह अपने जीवन में शारीरिक एवं मानसिक द्वन्द्वों से मुक्त हो जाता है। कुण्डलिनी समस्त विश्व की जननी है। वराहोपनिषद्^५ में कुण्डलिनी को पराशक्ति या सर्वश्रेष्ठ शक्ति बताया गया है। इस शक्ति से प्राणवायु और शरीर की गर्मी उत्पन्न होती है। इसे प्राण-शक्ति भी कहते हैं। यह शक्ति शरीर में ऊँकार रूप नाद सदा उत्पन्न करती है। यह शक्ति 'साढ़े तीन' अक्षर की भाँति सुषुम्ना में रहती है। मानव को अपने मन की चंचलता को वश में करने के

१. आचार्य भगवान देव प्राणायाम - कुण्डलिनी और हठयोग, प्रकाशक डायमंड पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली।

२. आचार्य पं. श्रीराम शर्मा, कुण्डलिनी महाशक्ति और उसकी संसद्धि, पृ.सं. १२।

३. दिगंबर स्वामी (२००१) स्वात्माराम कृत हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम, श्रीमन्नाथद्व, योगमन्दिर समिति, लोनावाला।

४. योग कुण्डलिन्युपनिषद्, पृ.सं. ३५४ ५. आचार्य पं. श्रीराम शर्मा, कुण्डलिनी महाशक्ति और उसकी संसद्धि।

६. यत्र कुण्डलिनी नाम परा शक्तिः प्रतिष्ठिता। वराहोपनिषद् ५१ मंत्र।

लिए योग की विधियों का उपयोग करना पड़ता है। अपने संस्कार एवं प्राण को निरुद्ध करने के लिए प्राणायाम की आवश्यकता होती है। सिद्ध-सिद्धांत पद्धति के अनुसार सिद्ध पुरुषों की कुण्डलिनी सब सिद्धियों के आधार होती है। कुण्डलिनी की दो स्थितियाँ होती हैं। प्रबुद्ध कुण्डलिनी और अप्रबुद्ध कुण्डलिनी। अप्रबुद्ध कुण्डलिनी भिन्न-भिन्न पिण्डों में अनेक चिन्ता व्यापारों प्रपंचों से युक्त कुटिल स्वभाव वाली होती है। योगियों की प्रबुद्ध कुण्डलिनी विकार प्रपंचों का निवारण करती हुई ऊर्ध्वगामी होती है। वस्तुतः उसकी तीन स्थितियाँ होती हैं, जिन्हें 'अधः शक्ति, मध्य शक्ति और ऊर्ध्व शक्ति' कह सकते हैं। जो बाहरी विविध इन्द्रियों के व्यापारों में प्रवृत्त है उसे अधः शक्ति कहते हैं। जो तरंगित स्वभाव वाली भ्रमणशील जीवात्मा को अपने स्वरूप से धारण करने में समर्थ होती है उसे मध्य शक्ति कुण्डलिनी कहते हैं। इन दोनों से भिन्न स्वरूप में स्थूल सूक्ष्म कुण्डलिनी की चर्चा गोरक्षनाथ ने की है। स्थूल कुण्डलिनी शब्दात्मक स्थूल जगत् की सृष्टि में होने के कारण साकार कही जाती है। यह

रूप आदि विषयों से भ्रमणशील रहती है किन्तु साधना के फलस्वरूप सम्बन्धों को त्यागकर ऊर्ध्वगामी होती है तब अपने चैतन्य स्वरूपा कुण्डलिनी आकार रहित होती है। ऐसा महासिद्धजन मानते हैं। इसका केन्द्र शरीर के मध्य में नाभि है अतः इसे मध्या कहा जाता है। गुरु मुख से प्राप्त साधना विधि द्वारा साधक इसे जाग्रत करके सिद्ध हो जाते हैं। जब यह कुण्डलिनी जाग्रत होकर सहस्रार चक्र तक पहुँचती है तो उसे ऊर्ध्व शक्तिनिपात कहते हैं और इस ऊर्ध्व शक्ति निपात से महासिद्ध योगी परमपद प्राप्त कर लेते हैं।

प्राणायाम से कुण्डलिनी जागरण योगकुण्डलिन्युपनिषद्^१ में कहा गया है कि मानव को पहले अपने प्राणों पर विजय प्राप्त करना चाहिए। प्राणायाम को सिद्ध करने के लिए पहले मिताहार, आसन तथा मुद्राओं का अभ्यास करना चाहिए, शरीर में स्थित वायु को प्राण कहा जाता है। उस वायु का विस्तार हो जाने पर उसे कुम्भक कहा जाता है। कुम्भक के भी दो प्रकार हैं। प्राण और अपान के संयोग से महा अग्निदीपवान होती है और

कुण्डलिनी जगती है। प्राणवायु में तीव्रता आने से वह अग्नि भी तीव्र होती जाती है और अपना क्षेत्र विस्तार करती है।^२ जिस मार्ग से ब्रह्मस्थान तक सुगमता से जाया जा सकता है, उस मार्ग का द्वार परमेश्वरी कुण्डलिनी अपने मुँह से ढँक्के सोई हुई है। अग्नि तथा मन द्वारा प्रेरित प्राणवायु के सम्मिलित योग से वह जाग्रत होती है जैसे सुई के साथ धागा जाता है उसी प्रकार प्राणवायु के साथ वह कुण्डलिनी सुषुम्ना-पथ से ऊपर जाती है। जैसे ही दरवाजे में लगा ताला कुंजी से खोल दिया जाता है, वैसे ही योगी कुण्डलिनी से मोक्षद्वार को वेधते हैं। शाण्डिल्योपनिषद्^३ के अनुसार नाभि के नीचे कुण्डलिनी का स्थान है। यह आठ प्रकृति वाली है। इसके आठ कुंडल हैं यह प्राणवायु को यथावत् व्यवस्थित करती है। अन्न और जल को व्यवस्थित करती है। मुख तथा ब्रह्मरंध्र की अग्नि को प्रकाशित करती है।^४ यह गायत्री कुण्डलिनी से उत्पन्न हुई, यह प्राणों को धारण करने वाली है, यह प्राणविद्या और महाविद्या है - इस प्रकार जो जान लेता है, वही वेद को सही रूप से जानता है।

१. योग कुण्डलिन्युपनिषद्, पृ.सं.३५३

३. ध्यानविन्दुपनिषद्, पृ.सं.६५-६८

२. योगकुण्डलिन्युपनिषद्, पृ.सं.६३,६६

४. शाण्डिल्योपनिषद्, पृ.सं.४/५

कुण्डलिनी शक्ति कुन्द के ऊर्ध्वभाग में आठ कुण्डलों के आकार में व्याप्त होकर सुषुम्ना नामक ब्रह्मद्वार के मुख को अपने मुख से ढँककर ही रहती है। जिस मनोमय ब्रह्मद्वार-सुषुम्ना में प्रवेश किया जाता है, उसी द्वार को अपने मुख से ढँककर वह कुण्डलिनी सोई रहती है। अग्नियोग के द्वारा वह जाग्रत होती है और फिर प्रकाश के रूप में मन और प्राणवायु के साथ सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करती है। जिस तरह चाभी से घर के किवाड़ का ताला खोला जाता है, वैसे ही कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा योगी-जन मुक्ति का द्वार खोल लेते हैं। लेकिन आठ कुण्डलों वाली कुन्द के ऊपर के भाग में जो कुण्डलिनी शक्ति है, वह योगियों के लिए मोक्ष देने वाली है। तथा अज्ञानियों के लिए बन्धन कारक भी कही गई है।^१ नाभि के नीचे कुण्डलिनी का निवास है। यह आठ कुण्डल वाला है। यह प्राण- वायु को यथावत संचालित करती है, अन्न और जल को व्यवस्थित करती है। मुख तथा ब्रह्म-रन्ध्र की अग्नि को प्रकाशित करती है^२ और मानव के चित्तवृत्तियों को शुद्ध करती है। घेरण्ड संहिता^३ के अनुसार कहा गया है

कि सूर्य भेदन प्राणायाम के अभ्यास से कुण्डलिनी का जागरण तथा अग्नि प्रदीप्त होती है और रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। साधक को संकल्प-विकल्पों को छोड़ कर मूलाधार, उड्डीयन और जलन्धर इन तीनों के बन्धों के साथ प्राणायाम का अभ्यास करने से सूर्य(पिंगला), चन्द्र (इडा) और अग्नि (जठराग्नि) का संगम भूमध्य में स्थित आज्ञा-चक्र में स्थित सूर्य और चन्द्र नाड़ियों में सहस्रार से निकले अमृत रस के आने पर मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी अग्नि की गर्मी से चंचल हो उठती है। ऐसी स्थिति में योगी को जानना चाहिए कि कुण्डलिनी के जागरण से प्राणवायु के और मन के लीन हो जाने से योगी अमरत्व प्राप्त करता है। शाण्डिल्योपनिषद्^४ में कुम्भकों के दो प्रकार कहे गये हैं - 'सहित कुम्भक' तथा दूसरा 'केवल कुम्भक'। इन कुम्भकों के अभ्यास से योगी के लिये तीनों लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता। 'केवल कुम्भक' का अभ्यास करने से कुण्डलिनी शक्ति जाग जाती है। केवल कुम्भक के अभ्यास से योगी का शरीर हल्का हो जाता है। उसके मुख पर प्रसन्नता रहती है। उसकी

आँखें निर्मल हो जाती है। उसके कानों में अनाहत नाद सुनाई देने लगता है। उसके शरीर के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। उसका वीर्यपात नहीं होता और उसके शरीर की उष्णता या जीवनी शक्ति बढ़ जाती है। जब कोई साधक प्राणायाम का अभ्यास करता है तो वह शरीर में गर्मी का अनुभव करता है। जिससे प्राण-शक्ति यानी कुण्डलिनी का जागरण होता है। कुण्डलिनी के जागरण से ही मनुष्य के सभी रोगों का नाश हो जाता है। वह कुण्डलिनी मनुष्य में अदृश्य आध्यात्मिक शक्ति का रूप है। यह मेरुदण्ड के आधार पर साढ़े तीन फेरे मारे हुए अधोमुखी सर्प के रूप में चित्रित किया गया है। जब कुण्डलिनी का जागरण होता है तो यह छड़ी से पीटे हुए सर्प की भाँति फुफ्फुकारती हुई सुषुम्ना के मुख में प्रवेश करती है और एक चक्र से दूसरे चक्र की यात्रा करती जाती है। कुण्डलिनी का यह संचार मूलाधार से सहस्रार तक चेतना के क्रम में होता है। अन्त में इस पराशक्ति का सहस्रार-चक्र में परमशिव के साथ संयोग होता है। प्राणायाम द्वारा कुण्डलिनी को जगाने से पहले, नाड़ियों तथा चक्रों

१. शाण्डिल्योपनिषद्, पृ.सं.४५९

२. वही, पृ.सं.७/८

३. सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द, (२०११) महर्षि घेरण्ड संहिता।

४. शाण्डिल्योपनिषद्, पृ.सं.१३/५

का ज्ञान होना आवश्यक है। साथ ही साधक को पूरी तरह से वासना रहित तथा अनासक्त होना चाहिए। योगतत्वोपनिषद्^१ में कहते कि जब योग साधक अपने हठयोग के अभ्यास के बाद परिचयावस्था में प्राणवायु और अपान वायु को एक करके इन्हे मूलाधार की कालाग्नि के साथ यत्न पूर्वक मिलाकर और कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर प्राणवायु को कुण्डलिनी शक्ति के साथ सुषुम्ना नाड़ी में प्रविष्ट कराया जाता है और इस अवस्था में प्राणवायु कुण्डलिनी को साथ लेकर किसी रुकावट के बिना सुषुम्ना में प्रविष्ट हो जाती है और प्राणवायु के साथ चित्त भी सुषुम्ना के महापथ में प्रवेश कर जाता है। योगबीज में कहा गया है कि जिसने प्राणायाम के द्वारा अपने प्राणों को जीत लिया है उस गुरु की उपासना करके सूर्यभेदी, उज्जायी आदि प्राणायामों और तीनों बन्धों का सुस्पष्ट परिचय और लाभ की चर्चा करके कुण्डलिनी साधना हेतु आभ्यन्तर कुम्भक करते हुए विधि पूर्वक शक्ति चालन करते हुए, आठ फेरे युक्त कुण्डलिनी को जाग्रत कर लेता है उसे मृत्यु का

भय कभी नहीं होता है। इसी साधना के क्रम में ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि का भेद हो जाने पर गुण के बन्धन से मुक्ति तथा शिव और शक्ति का मिलन हो जाता है और साधक को परमगति प्राप्त हो जाती है।

कुण्डलिनी जागरण के लाभ

“कुण्डलीबोधकं पुण्यं पापघ्नं शुभदं सुखम्।” सुषुम्ना नाड़ी के मुख पर जो बाधक कफ जान विकार आदि होते हैं। वह अभ्यास करने से नष्ट हो जाते हैं कुण्डली बोध से तीन गुणों से उत्पन्न हुई ग्रन्थियों का नाश होता है। इस लिए भस्त्रिक प्राणायाम का विशेष अभ्यास करना चाहिए जो सुख दुःख, पुण्यशाली और पापनाशक है। योगशिखोपनिषत् में प्राणायाम को ‘कुम्भक’^२ कहा है। तथा कुम्भक के चार प्रकार भी बताये गये हैं जिनमें ‘उज्जयी कुम्भक’ का लक्षण दोनों सूर्य-चन्द्र नाड़ियों से वायु को भीतर खींच लेना कहा गया है।^३ भस्त्रिक कुम्भक के अभ्यास से वात, पित्त, और कफ को नियंत्रित करता है, और शरीर की उष्णता को बढ़ाने का काम करता है। मुख के दुर्गन्धादि दोषों को भी दूर करता है। और

यह तीनों ग्रन्थियों का भेदन करती है। ऐसा भस्त्रिक कुम्भक का विशेष ध्यान से अभ्यास करना चाहिए।^४ योगचूडामण्ड्युपनिषत् के अनुसार योग के साधक को एकान्त में बद्धयद्यासन को लगा कर शिवस्वरूप गुरुदेव का नमस्कार करके नासिक के अग्रभाग पर दृष्टि को गड़ाकर ओंकार प्राणायाम^५ का अभ्यास करना चाहिए। जिन नव द्वारों से वायु का आवागमन हुआ करता है, उनका निरोध करके वायु को रोकना चाहिए। और अपान वायु को अग्नि से संयुक्त कर, ऊर्ध्वगामी बनाकर, शक्तिचालिनी मुद्रा में कुण्डलिनी के मार्ग से दृढ़तापूर्वक मस्तिष्क में स्थापित करना चाहिए। जब तक वह स्थिर रहे, तब तक वह महापुरुष की संगति नहीं चाहता, अर्थात् वह स्वयं सर्वश्रेष्ठ हो जाता है। संसार सागर से मुक्ति पाने के लिए यह प्राणायाम सेतु के समान है, और पापरूपी ईधन को जलाने के लिए अग्नि के समान है। प्राणायाम से पापों का नाश इस प्रकार होता है। प्राणायाम के अभ्यास से जहाँ शरीर में प्राणशक्ति बढ़ती है वहाँ कुण्डलिनी-जागरण के लिए

१. योगतत्वोपनिषद् ८१/८२ मंत्र।

२. योगशिखोपनिषद् १/८८ मंत्र, पृ.सं. ११२

३. वही, पृ.सं. १२४

४. योग कुण्डलिन्युपनिषद् मंत्र ३८।

५. वही, पृ.सं. ११३

६. योगचूडामण्ड्युपनिषद् १०३ मंत्र, पृ.सं. ४६६

आवश्यक साहस और आत्मबल भी प्राप्त होता है। आत्मबल के अभाव में कठिन साधनाएँ लोग स्वल्प समय में ही छोड़ बैठते हैं। किंतु प्राणायाम से शारीरिक और मानसिक लाभ तुरंत मिलते हैं। इससे मनोबल बढ़ता है और आगे का मार्ग साफ होता चला जाता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए मनुष्य के अस्तित्व को हम तीन विभागों में कर सकते हैं। कुण्डलिनी की प्रचण्ड क्षमता स्थूल शरीर में ओजस, सूक्ष्म शरीर में तेजस और कारण शरीर में वर्चस्व के रूप में प्रकट एवं परिलक्षित होती है। समग्र तेजस्विता को इन तीनों भागों में दृष्टिगोचर होते देखा जा सकता है। शरीर स्तर में चक्र एवं कुण्डलिनी का सम्बन्ध शरीर में स्थित प्रमुख तन्त्रिका-जालकों एवं अन्तः स्नायी ग्रन्थियों से होता है।^१ कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत होने से शरीर में बलिष्ठता, नीरोगिता, स्फूर्ति, क्रियाशीलता, उत्साह, तत्परता दृष्टिगोचर होती है।^२ मानसिक रूप से मस्तिष्क में उसका परिचय तीव्र बुद्धि, दूरदर्शिता, स्मरण शक्ति, सूझबूझ, कल्पना, निर्णय क्षमता,

कुशलता, व्यवस्था आदि के रूप में देखा जा सकता है।^३ भावनात्मक रूप से बड़ी श्रद्धा, निष्ठा, आस्था भाव, संवेदना आत्मीयता, सौन्दर्यानुभूति के रूप में यह शक्ति उभरती है।^४ आध्यात्मिक एकाग्रता के लिए इसको जगाना ज़रूरी है। चेतना की निम्नतम अवस्था से उच्चतम अवस्था में पहुँचाने में भी यह सहायक है।^५

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से ऐसा जान पड़ता है कि यह एक असाधारण अद्भुत शक्ति है जिसके बिना आत्मा क्रियाशील नहीं होती है। क्योंकि यह आत्म चेतना से संबद्ध है। साधारणतया यह शक्ति जीव-शरीर में सुप्त अवस्था में रहते हुए शरीर को क्रियाशील बनाती है। यह शक्ति अग्नि के समान है। इस अग्नि के समान साधक के सभी विकार भस्म कर देती है। परिणाम स्वरूप साधक जन्म-जन्मान्तर के संस्कार से मुक्त हो कर परम पद प्राप्त कर लेता है। जब कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है तब योगी संसार के सुख-दुःख से मुक्त हो जाता है। और कर्म-संस्कारों से उसे मुक्ति मिल जाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. आचार्य केशवलाल वी.शास्त्री (२०१४), उपनिषत्संख्यनम् चैखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
२. आचार्य पं.श्रीराम शर्मा, कुण्डलिनी महाशक्ति और उसकी संसक्ति, प्रकाशक युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि, मथुरा, पृ.१२।
३. योगिराज पं.राकेश, कुण्डलिनी शक्ति और जागरण, प्रकाशक दुर्गा पॉकेट बुक्स ४२८/२४ ईश्वरी, नियर ओडियन सिनेमा, जैन मंदिर वाली गली मेरठ-२।
४. आचार्य भगवान देव, प्राणायाम - कुण्डलिनी और हठयोग, प्रकाशक डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा)लि-३०, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-२, नई दिल्ली - ११० ०२०।
५. सरस्वती, सत्यानंद स्वामी, कुण्डलिनी योग (२००५), योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत।

पी.एच.डी. शोधार्थी,
योग एवं आयुर्वेद विभाग,
सॉची बौद्ध-भारतीय ज्ञान
अध्ययन विश्वविद्यालय,
रायसन, मध्यप्रदेश।



१. सरस्वती स्वामी सत्यानन्द, (२००६) आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध।
२. गिरी डॉ.राकेश, (२०११), कुण्डलिनी योग, पृ.सं.५९।
३. वही
४. सरस्वती स्वामी सत्यानन्द, (२००६) आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध।



PUBLICATION CERTIFICATE

This publication certificate has been issued to

RANJEET SINGH

For publication of research paper titled

योग दर्शन में चक्रों की अवधारणा : एक विवेचनात्मक अध्ययन

Published in

Sahitya Samhita (साहित्य संहिता) ISSN 2454 2695

Vol:7 Issue: 7 Month: August Year: 2021

Impact factor:6.113

The journal is indexed, peer reviewed and listed in Google Scholar

Editor

Sahitya Samhita (साहित्य संहिता) ISSN 2454 2695

Note: This eCertificate is valid with published papers and the paper must be available online at
<https://www.sahityasamhita.org/index.php/ss>

योग दर्शन में चक्रों की अवधारणा : एक विवेचनात्मक अध्ययन

रंजीत सिंह पीएच. डी. शोधार्थी

योग एवं आयुर्वेद विभाग

सॉची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, रायसेन %म.प्र.%

सारांश

चक्र वे ऊर्जा के केन्द्र हैं, जिसके माध्यम से अंतरिक्ष ब्रह्माण्ड की ऊर्जा मानवीय शरीर में निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। व्यावहारिक जीवन को और अधिक कुशलता प्रदान करने में इन चक्रों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। चक्र ऊर्जा के वे केन्द्र हैं जो प्रत्येक मनुष्य के अन्दर विद्यमान होते हैं जिनकी संख्या विभिन्न विद्वानों के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। मुख्यतः अधिकांश विद्वानों द्वारा चक्रों की संख्या सात बताई गई है यथा- मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आजा और सहस्रार। इन चक्रों का स्वरूप, रंग, स्थिति, गुण, स्वभाव आदि भिन्न-भिन्न होते हैं। परन्तु आवश्यकता मात्र इन चक्रों की साधना की होती है। चक्र जागरण की प्रक्रिया के साथ-साथ ही चेतना का विकास होता है। चेतना का विकास ही सिद्धियों की परिणति में फलित होता है जिनका वर्णन पतंजलि योग दर्शन के तृतीय पाद 'विभूतिपाद' में किया गया है। योग दर्शन में चक्रों की साधना या चक्र जागरण की यात्रा यम, नियम आदि अष्टांग योग के द्वारा बताई है। धारणा, ध्यान और समाधि के सम्मिलित रूप को संयम कहते हैं। जिस स्थान पर संयम किया जाता है अर्थात् जहाँ चेतना को घनीभूत किया जाता है वहाँ सिद्धि का प्रतिफल प्राप्त होता है।

उक्त शोध पत्र पतंजलि योगदर्शन में चक्रों के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए मानवीय चेतना का चक्रों के साथ घनिष्ठ संबंध को स्थापित करने का प्रयास करेगा।

मुख्य बिंदु- योग दर्शन, अष्टांग योग, चक्र, चेतना, सिद्धियाँ

प्रस्तावना

महर्षि पतंजलि द्वारा अपने योग सूत्र में विभिन्न चक्रों को क्रमबद्ध और साफ ढंग से समझाया है। जिससे योग साधन के अभ्यास में क्रम में कोई भी पथ अधूरा न रह जाए।¹ सप्तचक्र का ध्यान साधना विशेष रूप से मानसिक और शारीरिक रोगों से बचाने, रोग प्रतिरोधक क्षमता में सुधार लाने तथा तनाव पूर्ण स्थितियों को दूर करने में अधिक लाभकारी हैं।¹ महर्षि पतंजलि के अपने योग दर्शन शास्त्र में मौजूद सात चक्रों पर ध्यान करने अर्थात् मन को लगाने से आध्यात्मिक व अलौकिक ज्ञान की प्राप्ति होती है। सूक्ष्म शरीर के इन सप्तचक्र का नाम इस प्रकार है।

-मूलाधार चक्र- यह जननेन्द्रिय और गुदा के बीच स्थित है।

-स्वाधिष्ठान चक्र- यह उपस्थ में स्थित है।

-मणिपूर चक्र- यह नाभिमंडल में स्थित है।

-अनाहद चक्र- यह हृदय के पास स्थित है।

-विशुद्धि चक्र- कंठकूप में स्थित है।

-आज्ञा चक्र- यह भ्रमध्यम में स्थित है।

-सहस्रार चक्र- यह मस्तिष्क में स्थित है।

योग शास्त्रों में मनुष्य के अन्दर मौजूद षट्चक्रों का वर्णन किया गया है। यह चक्र शरीर के अलग-अलग अंगों में स्थित हैं तथा इनके नाम भी भिन्न हैं शरीर में सप्तचक्र होते हैं। जिनका ध्यान करने से दिव्य शक्ति, दिव्य दृष्टि और दिव्य ज्ञान की प्राप्ति होती है। इसके ध्यान से साधक मन और आत्मा परमात्मा अर्थात् भगवाना का दर्शन करता है। इन चक्रों का ध्यान आसन में बैठ कर किया जाता है। अतः आसन में बैठकर एक-एक करके इन चक्रों का ध्यान करें। योग दर्शन में मानवीय चेतना के विकास के लिए महर्षि पतंजलि ने चित्त शुद्धि के अनेक आयामों का वर्णन किया है। इसमें साधक की स्थिति के आधार पर योग साधनाओं का वर्णन मिलता है। जैसे उच्चस्तर के साधकों के लिए अभ्यास-वैराग्य की साधना, मध्यम स्तर के साधकों के लिए क्रियायोग की साधना और निम्नस्तर अथवा सांसारिक मनुष्यों के लिए अष्टांगयोग की साधना बतायी है। महर्षि पतंजलि विभूतियों के रूप में चक्र आदि का वर्णन कर साधना मार्ग की उपलब्धियों का वर्णन भी करते हैं। इसमें राजयोग को आठ अंगों में विभक्त किया है, इसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार बहिरंग योग है, तथा धारणा, ध्यान, और समाधि अन्तरंग योग में आते हैं। जब इन तीनों अन्तरंग साधनों का

¹ <https://m.facebook.com/veadsupanishads/posts/1091685644201939>

किसी ध्येय वस्तु या उसके गुण आदि में पूर्णतः संयम हो जाने पर उस वस्तु का पूर्ण ज्ञान हो जाता है और जब साधक संयम करता है, तो विभूतियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। जो मानव की चेतना के रूप में घनिभूत होती है। प्राप्त वर्णन के अनुसार प्राणिक शरीर को चक्रों से ऊर्जा प्राप्त होती है, जबकि चक्र शरीर के अन्दर ऊर्जा के सूक्ष्म एवं शक्तिशाली स्रोत होते हैं। ये ब्रह्माण्डीय प्राण को ग्रहण कर उसे एकत्रित कर रखते हैं और एक ट्रांसफॉर्मर की भाँती ऊर्जा के स्तर को कम कर देते हैं ताकि शरीर के विभिन्न अवयव एवं भगा उसका उपयोग कर सकें। ये चेतना की उच्च क्षमताओं और आयामों को प्रकाशित करने के लिये स्विच की तरह कार्य करते हैं। स्वामी सत्यानंद सरस्वती जी के अनुसार "चक्र का सामान्य अर्थ 'पहिया' या 'वृत्त' होता है। लेकिन योग के संदर्भ में इसका अर्थ भ्रंश या चक्रवात भी होता है। चक्र शरीर के विशेष भागों में स्थित प्राण-शक्ति के केन्द्र हैं जो सम्पूर्ण मानव शरीर में व्याप्त प्राण के प्रवाह को नियन्त्रित करते हैं।² जो अपने-अपने केन्द्र में विशेष गुणों जैसे काम-वासना, इच्छा तथा आत्मशक्ति के रूप में देखी जा सकती है।

चक्रों का स्वरूप

मानव शरीर में चक्रों को मेरुदण्ड के मध्य से होकर जाने वाली सुषुम्ना नाड़ी में स्थित हैं। सुषुम्ना मूलाधार से होते हुये सिर के शीर्ष पर समाप्त होती है। चक्रों का सम्बन्ध नाड़ियों के जाल से हैं। ये नाड़ियाँ तात्रिकाओं के समान, किन्तु उनसे अधिक सूक्ष्म होती हैं। चक्रों को प्रतीकात्मक रूप से कमल की पंखुडियों के रूप में दर्शाया जाता है। प्रत्येक चक्र की पंखुडियों की संख्या और रंग निर्धारित होता है। कमल आध्यात्मिक जीवन की उन तीन अवस्थाओं का प्रतीक हैं, जिनसे होकर साधक को गुजरना पड़ता है। ये तीन अवस्थायें हैं- अज्ञान, जिज्ञास और आत्म-साक्षात्कार। यह चेतना की निम्नतम अवस्था से उच्चतम अवस्था तक के आध्यात्मिक विकास का परिचायक है। बीज मंत्रों के साथ अंकित कमल-दल चक्रों एवं नाड़ियों से सम्बद्ध अतीन्द्रिय शक्ति के विविध रूपों को दर्शते हैं। प्रत्येक चक्र के भीतर एक यन्त्र होता है, जो उससे सम्बद्ध तत्त्व एवं बीज-मंत्र का ज्यामितीय प्रतीक होता है। यन्त्र के भीतर उसका एक इष्ट देवता होता है। जो दैवी सत्ता के एक वाहन भी होता है, जो उस चक्र विशेष से सम्बद्ध अन्य अतीन्द्रिय पक्षों को दर्शाता है।³

योगदर्शन में चक्रों की अवधारणा

² सत्यानंद, सरस्वती, (2005) कुण्डलिनी योग, बिहार योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर, पृष्ठ- 16

³ सत्यानंद, सरस्वती, (2006) आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, बिहार योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर, पृष्ठ- 546

महर्षि पतंजलि के मतानुसार योग दर्शन में चित शुद्धि या मानसिक स्थिरता के बाद जब मानव की चेतना का किसी विशेष स्थान अथवा वस् पर संयम किया जाता है तो उस स्थान पर प्राण ऊर्जा काम करना शुरू करती जिसके कारण वह स्थान जाग्रत हो जाता है और विभूतियों के रूप सामने प्रकाट होने लगती है। उदरीय प्रदेश में स्थित नाभि कमल का ध्यान करने पर काया अर्थात् सम्पूर्ण शरीर का पूर्ण ज्ञान हो जाता है।⁴ जिसके नाभि में स्थित चक्र (मणिपुर) है। जिसमें शरीर की समस्त नाडियों एक साथ गुथी हुई हैं। उसमें संयम करने से स्थूल शरीर के विषय में ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यह चक्र अधिकतम शुद्ध तथा जाग्रत हो जाता है तो शरीर रोगों से रहित हो जाता है व कान्तिमय हो जाता है। तथा योगी की चेतना का फिर काम नहीं हो सकती है। हृदय कमल में ध्यान करने पर चित के स्वरूप बोध हो जाता है।⁵ हृदय का समान अर्थ, कमल से है। जिसे अनाहत चक्र कहते हैं। अनाहत चक्र पर ध्यान या संयम करने से साधक अपने मन की प्रकृति का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। जब पदार्थ और मन सम्बन्ध हो जाते हैं तब उस चेतना को चितसंवित् कहते हैं। अपने चित में प्रविष्ट सब वासनाओं तथा दूसरों के चित में प्रविष्ट रागा आदि को जान लेता है।⁶ अभ्यास हो जाने पर साधक को शौकरहित ज्योतिष्यमति में प्रवृत्त होने में भी मन की स्थिति का ज्ञान हो जाता है। स्वामी विवेकानन्द राजयोग को एक और की समाधि है। जिसका ध्यान हृदय में मानो एक कमल है, उसकी पंखुडियाँ नीचे की ओर हैं। उसके भीतर से सुषुम्ना के मध्यम से पूरक करके रेचक करते समय सोचो कि वह कमल पंखुडियों सहित उर्ध्वमुख हो गया है और कमल के भीतर एक महाज्योति विद्यमान है। उस ज्योति का ध्यान करो।⁷ मूर्धा का अर्थ सहस्वार है। प्रकाश का सम्बन्ध निश्चित रूप से आज्ञा चक्र से है। जो भूमध्य पर स्थित है। आज्ञा चक्र पर संयम से सफलता अपेक्षाकृत शीघ्रता से प्राप्त होती है। जब मन प्रकाशित होता है, तो आध्यात्मिक दृश्य प्रकट होने लगते हैं। जिसमें साधक को योग की विभूतियों के साक्ष्य दर्शन होते हैं। ये विभूतियाँ बिना शरीर के भी रह सकती हैं। क्योंकि उन्हें ऐच्छिक और अनैच्छिक मानसिक अतीन्द्रिय क्रियाओं पर पूर्ण नियंत्रण होता है। अतः वे बिना भौतिक शरीर के भी रह सकते हैं। अतः उन्हें सिद्ध कहा जाता है। हम सामान्य रूप से उन्हें देख नहीं सकते क्योंकि हमारे समान उनका भौतिक शरीर नहीं होता परन्तु जब आज्ञा चक्र या सहस्वार चक्र पर संयम किया जाता है। तब योगी उनसे मिल सकता है। बातें कर सकता है ताकि वह उनसे मार्ग दर्शन एवं प्रेरणा प्राप्त कर सके। चक्रों का व्यक्तिगत जीवन में निरन्तर परिवर्तन होता है। जिससे

⁴ नाभिचक्रे कायव्यूजानम्। योगसूत्र- 3/29

⁵ हृदये चितसंवित्। योगसूत्र- 3/34

⁶ पातञ्जलयोगप्रदीप पृष्ठ 605

⁷ मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् योगसूत्र-3/32

चेतना के स्तर को उन्नत बनाता है। इसके लिए योग दर्शन में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान, समाधि का वर्णन किया गया है। पतांजलि योग दर्शन में वर्णित समस्त विभूति, परिचित ज्ञान, पूर्ण जन्म का ज्ञान, दूर स्थित वस्तुओं के बारे में जानने वाला, भविष्य को जानने वाला ज्ञान, सभी लोकों का ज्ञान, तारा - ग्रहों का ज्ञान, भूख- प्यास को रोकना तथा हवा में उड़ना आदि का ज्ञान, साधना पाद में वर्णित अहिंसा भाव, पृथ्वी के रत्नों का प्रकट होना, मैत्री, इष्ट साक्षात्कार तथा समाधि आदि योग साधना अपने आप प्राप्त हो जाता है। महर्षि पतांजलि के अनुसार सिद्धियाँ पाँच प्रकार की हो सकती हैं-

जन्मोपधिमन्त्रः तपः समाधिजाः सिद्धयः॥ 4/1

जन्म से, औषधि से, मंत्र से, तप और समाधि से सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। पतांजलि 'योग दर्शन' में कहा गया है कि योगियों को सिद्धियों के पीछे नहीं पड़ना चाहिए। सिद्धियों का अपना कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं रखती है। ध्यान के अभ्यास में जब व्यक्ति का मन ध्यान करता है, तब उसके पिछले संस्कार स्वभाविक रूप से उत्पन्न होता है। अतः बिना डरे निर्भय होकर उसका ध्यान करते रहें। यदि कोई अभ्यास करने वाला अपने पिछले संस्कार के कारण इनको वास्तविक रूप से ही अनुभव करे और अपना अनिष्ट समझकर उसे हटाना चाहे तो उसके हटाने की इच्छा करते ही अथवा 'ओम' के जप से तुरन्त वे अदृश्य ध्यान के अभ्यास में जब व्यक्ति का मन ध्यान करता है, तब उसके पिछले संस्कार स्वभाविक रूप से उत्पन्न होता है। अतः बिना डरे निर्भय होकर उसका ध्यान करते रहें। यदि कोई अभ्यास करने वाला अपने पिछले संस्कार के कारण इनको वास्तविक रूप से ही अनुभव करे और अपना अनिष्ट समझकर उसे हटाना चाहे तो उसके हटाने की इच्छा करते ही अथवा ओम के जप से तुरन्त वे अदृश्य हो जाएंगे। फिर भी यदि अभ्यासी सिद्धियों तथा शक्तियों को प्राप्त करने के उद्देश्य से साधना करना चाहे तो चक्रों में दी गई विभिन्न बातों को विभिन्न चक्रों पर ध्यान करने से सिद्धियाँ मिल सकती हैं। इन सिद्धियों को प्राप्त करने के लिए मार्ग तंत्रिका है, जो अधिक लम्बा रास्ता है।

योग विद्या के द्वारा मनुष्य अपनी आन्तरिक ऊर्जा के केन्द्र को संयम के द्वारा जगात करके वह अपने शारीरिक, मानसिक, भावात्मक और आध्यात्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ता है।⁵ जिससे को सुख शांति तथा परम आनंद की प्राप्ति हो जाती है। आध्यात्मिक उन्नति तथा आलौकिक शक्ति को प्राप्त करने के लिए इन बातों पर ध्यान नहीं देकर केवल इन स्थानों को

⁵ निरंजनानन्द सरस्वती, %2004% योग दर्शन, बिहार योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर

केन्द्र बनाकर अन्दर प्रवेश करना चाहिए। तथा साधक को जो दिखाई में आता है। उसमें इष्टि रूप से देखना होता है। क्योंकि उनका लक्ष्य परमात्मा प्राप्ति है।

उपसंहार

महर्षि पतंजलि द्वारा संयम के रूप में चक्रों के स्थान पर से अनेक प्रकार की सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं जो ऊर्जा के रूप में शरीर के विशेष स्थान पर संयम करने से चक्रों का जागरण हो जाता है व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है और वह संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास करता है जिससे वह परमधाम को प्राप्त करता है और इस संसार सागर से मुक्त हो जाता है।



65 वां राष्ट्रीय अधिवेशन

दिनांक : 17 से 21 अगस्त, 2021

www.abdpindia.net

SE/1070/Distt South-East/2016



अखिल भारतीय दर्शन-परिषद्
(A member of FISP)



प्रमाण-पत्र / Certificate

♦ केन्द्रीय विषय - सर्वोदयी चिन्तन परम्परा ♦

प्रमाणित किया जाता है कि श्री/सुश्री/श्रीमती/डॉ. प्रो. **रंजित सिंह, सांचा**

..... ने महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वरधा (महाराष्ट्र) के दर्शन एवं संस्कृति विभाग

द्वारा आयोजित पंच दिवसीय राष्ट्रीय अधिवेशन में सहभागिता की तथा ऑनलाइन दार्शनिक विमर्श किया। संग्रेष्ठी /

व्याख्यानप्रस्ता / विभागीय पुत्र वाचन में प्रस्तुत आपके शोध-पत्र का शीर्षक था **कोश उपनिषदों में**

‘‘वर्तित-यज्ञ एवं बुद्धात्तिनी के अभ्यास से मानव-चेतना का विकास।’’



ज्योति २०१२५
महामंत्री
अखिल भारतीय दर्शन-परिषद्

Thyagaraj
आयोजन सचिव
65 वां अधिवेशन

